प्रार्थना और ध्यान

श्रीमातृवाणी

प्रार्थना और ध्यान
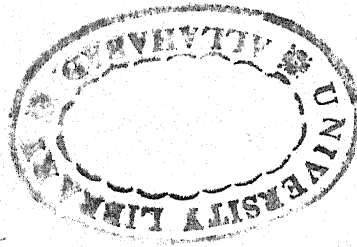
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

सर्वप्रथम 'अदिति सह भारत माता' त्रैमासिक पत्रिकाके
फरवरी १९५४ और अगस्त, नवंबर १९५८ के अंकों में प्रकाशित
पुस्तकाकार प्रथम संस्करण १९६१
द्वितीय संस्करण १९७५, तृतीय संस्करण १९७५
मूल फ्रेंच भाषामें 'प्रिएर ए मेदितासिओं द ला मैर' के नामसे १९३२ में प्रकाशित

मूल्य : रु० २५.००

खंड १

श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्टकी ओरसे
श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी द्वारा भारतमें मुद्रित
वितरक :
शब्द : श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी, पांडिचेरी-६०५००२

प्रकाशकका वक्तव्य

'प्रिऐर ए मेदितासियों द ला मैर' ('माताजीकी प्रार्थनाएं और ध्यान') पुस्तकके सन् १९३२ के प्रथम संस्करणमें ३०० से अधिक प्रार्थनाएं और ध्यान थे जिनका चुनाव माताजीने सन् १९१२ से १९१९ तककी अपनी दैनन्दिनीमेंसे किया था, और बादकी चार अतिरिक्त प्रार्थनाएं भी थीं। सन् १९४४ में प्रकाशित दूसरे संस्करणमें माताजीने भूमिकास्वरूप एक टिप्पणी तथा एक और प्रार्थना जोड़ दी। ये दोनों संस्करण केवल वैयक्तिक रूपसे वितरित करनेके लिये थे। तीसरा संस्करण १९५२ में और चौथा १९७३ में प्रकाशित हुआ, दोनोंमें पुस्तकका नाम छोटा करके 'प्रिऐर ए मेदितासियों' कर दिया गया। इनमेंसे कुछ प्रार्थनाओं और ध्यानोंका अनुवाद श्रीअरविंदने अंग्रेजीमें किया और उनके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं।

सबसे पहले पूरी फ्रेंच पुस्तकका हिंदी अनुवाद 'अदिति सह भारत माता' त्रैमासिकके १९५४ और १९५८ के तीन अंकोंमें प्रकाशित हुआ। उसके बाद इस पुस्तकका पहला संस्करण १९६१ में और दूसरा संस्करण १९७५ में प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद और पुनरीक्षण श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रके हिंदी-विभागने किया था। वर्तमान (तृतीय) संस्करणमें, जो 'श्रीमातृवाणी' शीर्षक माताजीके ग्रंथ-संग्रहके प्रथम ग्रंथके रूपमें प्रकाशित हो रहा है, वही पहलेका अनुवाद लिया गया है। इसमें प्रारंभमें माताजीकी फ्रेंच और अंग्रेजी संस्करणोंमें दी गयी भूमिकास्वरूप टिप्पणीको जोड़ दिया गया है। इसके अंतिम विभागमें इन प्रार्थनाओंके संबंधमें लिखे गये श्रीअरविंद और माताजीके कुछ पत्र दिये गये हैं। माताजीके पत्र एक युवक-शिष्यके प्रश्नोंके उत्तरमें लिखे गये थे।

यूं भी माताजी और श्रीअरविंदकी कृतियोंका अनुवाद करना असंभव है फिर इस पुस्तकका तो प्रत्येक वाक्य मंत्र है। मूल फ्रेंचमें एक छंद और लय है जिसका अपना मूल्य है और जिसे किसी अनुवादमें लाना असंभव है। जो लोग फ्रेंच नहीं पढ़ सकते उनके लिये यह अनुवाद प्रस्तुत है।
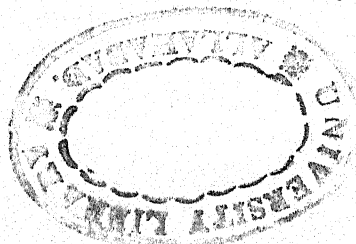
श्रीमाताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारतमें आगमन

२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३
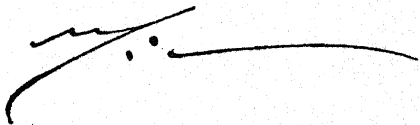
शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८

Some give their soul to the Divine, some their life, some offer their work, some their money. A few consecrate all of themselves and all they have — soul, life, work, wealth; these are the true children of God. Others give nothing. these whatever their position, power and riches are for the Divine purpose valueless cyphers.

This book is meant for those who aspire for an utter consecration to the Divine

M.

1941 – 1948.

कुछ लोग भगवान्‌को अपनी आत्मा देते हैं और कुछ लोग अपना जीवन, कुछ लोग अपना काम अर्पित करते हैं और कुछ लोग धन। कुछ थोड़े-से अपना सब कुछ और जो कुछ उनके पास है — आत्मा, जीवन, कर्म, धन — भगवान्‌के अर्पण कर देते हैं। ये भगवान्‌के सच्चे बालक हैं। कुछ दूसरे लोग कुछ भी नहीं देते। ये लोग, उनका पद, उनकी शक्ति और उनका धन चाहे जितना भी क्यों न हो, भगवान्‌के प्रयोजनके लिये निरर्थक शून्य हैं।

यह पुस्तक उनके लिये है जो भगवान्‌के प्रति संपूर्ण समर्पण करनेकी अभीप्सा करते हैं।

— श्रीमां

(१९४१ — १९४८)

★

इस पुस्तकमें तीव्र योग-साधनाके वर्षोंमें लिखी गयी दैनन्दिनीके उद्धरण हैं। यह मुख्य रूपसे तीन प्रकारके जिज्ञासुओंका आध्यात्मिक पथप्रदर्शन कर सकती है: जिन्होंने आत्म-संयमको अपनाया है, जो भगवान्‌की ओर ले जानेवाले मार्गकी खोजमें हैं, जो अपने-आपको अधिकाधिक रूपमें भगवान्‌के कार्यके लिये समर्पित करना चाहते हैं।

— श्रीमां

२ नवंबर, १९१२

हे परम स्वामी! तू ही सब चीजोंका जीवन है, तू ही सबकी ज्योति है और तू ही सर्वव्यापी प्रेम है। यद्यपि मेरा सारा अस्तित्व सिद्धांत-रूपमें तुझे समर्पित है फिर भी मैं इस समर्पणका प्रयोग छोटी-बड़ी चीजोंमें मुश्किलसे कर पाती हूं। मुझे यह जाननेमें कई सप्ताह लग गये हैं कि इस लिखित ध्यानका उद्देश्य, इसकी सार्थकता, वास्तवमें इसे प्रतिदिन तेरे सम्मुख रखनेमें ही है। इस प्रकार तेरे साथ जो मेरी अनेक बार बात-चीत होती है उसके कुछ अंशको मैं प्रतिदिन स्थूल रूप दे पाऊंगी। मैं तेरे सामने अपना भाव यथाशक्ति पूरी तरह निवेदित करूंगी; इसलिये नहीं कि मैं समझती हूं कि मैं तुझे कुछ बता सकती हूं — तू तो स्वयं सब कुछ है — बल्कि इसलिये कि संभवतः हमारा समझने तथा अनुभव करने-का ढंग तेरे ढंगसे भिन्न है, या यह कह सकते हैं कि तेरी प्रकृतिसे उलटा है। फिर भी तेरी ओर अभिमुख होकर, तेरे प्रकाशमें स्नान करते हुए इन वस्तुओंको देख पाऊंगी तो वे क्रमागत अपने सच्चे स्वरूपमें दिखायी देंगी। फिर एक दिन तेरे साथ तादात्म्य हो जानेके कारण मुझे तुझसे कुछ कहनेको नहीं होगा, क्योंकि मैं 'तू' हो जाऊंगी। यही है वह उद्देश्य जिसे मैं प्राप्त करना चाहती हूं, इसी विजयकी ओर मेरे सब प्रयत्न अधिकाधिक मुड़ रहे हैं। मैं उस दिनके लिये अभीप्सा करती हूं जब कि मैं 'मैं' न कह पाऊंगी क्योंकि तब मैं 'तू' हो जाऊंगी।

अब भी दिनमें कितनी ही बार मैं ऐसे कर्म करती हूं जो 'तुझे' समर्पित नहीं होते। परिणाममें मैं एक विचित्र-सी विकलता महसूस करती हूं जो शारीरिक अनुभवमें हृदयकी पीड़ाके रूपमें प्रकट होती है। तब मैं अपना कर्म अपनेसे अलग करके देखती हूं और वह मुझे हास्यास्पद, तुच्छ और दोष-युक्त प्रतीत होता है। मैं उसके लिये खेद अनुभव करती हूं, एक क्षणके लिये मुझे दुःख होता है, वास्तवमें तबतक जबतक मैं बालवत् विश्वासके साथ तुझमें प्रवेश नहीं करती, तुझमें अपने-आपको खो नहीं देती और तुझसे प्रेरणा और आवश्यक शक्ति पानेके लिये प्रतीक्षा नहीं करने लग जाती, ताकि जो भूल मुझमें है तथा मेरे परिपार्श्वमें है — और यह सब एक ही है — ठीक न हो जाय, कारण अब तो मुझे लगातार और सुनिश्चित रूपमें एक वैश्व एकताका अनुभव होता है जो कर्मोंकी सब पारस्परिक निर्भरताको निर्धारित करती है।

★

३ नवंबर, १९१२

...तेरा प्रकाश मेरे अंदर एक जीवनदायी अग्निशिखाके समान उपस्थित हो और तेरा दिव्य प्रेम मेरे अंदर प्रवेश करे। मेरी समस्त सत्ता इस बातके लिये अभीप्सा करती है कि तू इस शरीरमें, उस शरीरमें जो तेरा आज्ञाकारी यंत्र और विश्वस्त सेवक बनना चाहता है — एकछत्र राज्य करे।

१९ नवंबर, १९१२

कल मैंने उस अंग्रेज युवकसे, जो तुझे इतनी सच्ची लगनसे खोज रहा है, कहा था कि मैंने निश्चित रूपमें तुझे पा लिया है और तेरे साथ मेरा एकत्व निरंतर बना रहता है। वास्तवमें, जहांतक मैं सचेतन हूं, अवस्था ऐसी ही है। मेरे सब विचार तेरी ओर जा रहे हैं, मेरे समस्त कार्य तुझे समर्पित हैं; तेरी उपस्थिति मेरे लिये एक सुनिश्चित, अपरिवर्तनशील और स्थायी वस्तु है और तेरी शांति मेरे हृदयमें सर्वदा निवास करती है। फिर भी मैं जानती हूं कि मिलनकी यह अवस्था उस अवस्थाकी तुलनामें, जिसे मेरे लिये कल चरितार्थ करना संभव होगा, तुच्छ और अनिश्चित है। मैं यह भी जानती हूं कि वह 'एकात्मता', जिसमें मैं अपने 'मैं'के विचारसे पूर्णतया मुक्त हो जाऊंगी, अभी दूर, निःसंदेह बड़ी दूर है — पर यह 'मैं' जिसे मैं अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये अभीतक प्रयोगमें लाती हूं, प्रत्येक बार बाधा साबित होता है मानों यह व्यंजनीय भावके लिये अनुपयुक्त शब्द है। मुझे ऐसा लगता है कि मानवीय संभाषणकी आवश्यकताकी दृष्टिसे यह अनिवार्य है, पर सब कुछ निर्भर इसपर करेगा कि इस 'मैं' से क्या अभिव्यक्त होता है, और अब भी कितनी बार जब कि मैं इसका उच्चारण करती हूं तब तू ही मेरे अंदरसे बोलता है, क्योंकि मैं पृथक्त्वकी भावना ही खो चुकी हूं।

पर यह सब अभी भ्रूणावस्थामें है और उत्तरोत्तर ही पूर्णताको प्राप्त होगा। तेरी सर्वशक्तिमत्तामें अचल विश्वास हमें कितना शांतिप्रद ढाढ़स देता है!

तू ही सब कुछ है, सब जगह है, और सबमें है। यह शरीर जो कर्म करता है तेरा अपना शरीर है, जैसे कि यह संपूर्ण दृश्य जगत् भी तेरा है। वह तू ही है जो इस शरीरमें श्वास लेता, चिंतन करता और प्रेम करता

है। यह स्वयं 'तू' होते हुए तेरा आज्ञाकारी सेवक बननेकी अभिलाषा रखता है।

२६ नवंबर, १९१२

हर क्षण ही, तेरे प्रति कैसी कृतज्ञताका गीत गानेकी इच्छा करती है! तू मेरे चारों ओर सभी जगह सभी वस्तुओंमें अपने-आपको प्रकाशित कर रहा है। मेरे अंदर तेरी चेतना और इच्छा अधिकाधिक स्पष्ट रूपमें प्रकट हो रही है, यहांतक कि 'मैं' और 'मेरे' का यह स्थूल भ्रम भी लगभग पूरी तरह लुप्त हो गया है। यदि अब भी तुझे अभिव्यक्त करनेवाले महत् प्रकाशमें कुछ परछाइयां, कुछ दोष दिखायी पड़ रहे हैं तो वे तेरे अनुपम प्रेमके अद्भुत प्रकाशमें अधिक देरतक कैसे टिक सकेंगे? आज प्रातः मुझे, तू जो मेरी इस सत्ताको रूप दे रहा है उसका दर्शन प्राप्त हुआ और उसे प्रधानतः एक बृहत् नियमित ज्यामितिक आकारोंमें कटे हुए हीरेकी उपमा दी जा सकती है। वह रूप दृढ़ता, सुघड़ता, शुद्ध स्वच्छता, पारदर्शकतामें हीरेके समान ही था, परंतु अपने प्रगाढ़ तथा प्रगतिशील जीवन-तत्त्वमें वह एक प्रदीप्त तथा ज्वलंत दीपशिखा था। वस्तुतः वह इस सबसे अधिक तथा श्रेष्ठ था क्योंकि वह बाह्य तथा आंतरिक संवेदनोंसे परेका अनुभव था और यह रूपक केवल तभी और उसी मात्रामें मनके सामने प्रकट हुआ जब कि मैं बाह्य जगत्से सजग संबंधमें आयी।

तू ही अनुभवको सृजनशील बनाता है, तू ही जीवनको प्रगतिशील बनाता है और तू ही अपने प्रकाशद्वारा अंधकारको एक क्षणमें छिन्न-भिन्न कर देता है, तू ही तो है जो प्रेमको उसका समस्त बल प्रदान करता है और तू ही जड़तत्त्वमें यह अद्भुत और उत्कट अभीप्सा तथा शाश्वतके लिये यह पवित्र पिपासा जाग्रत् करता है।

'तू' ही सर्वत्र और सर्वदा है। तुझे छोड़ और कुछ भी नहीं... इस साररूप सत्तामें तथा संपूर्ण अभिव्यक्तिमें।

ओ अंधकार, ओ भ्रम, दूर हटो। ओ दुःख-कष्ट, तुम लुप्त हो जाओ। परम प्रभु, क्या तुम यहां उपस्थित नहीं हो!

२८ नवंबर, १९१२

क्या यह बाह्य जीवन, प्रति दिन और प्रति क्षणका कर्म, चिंतन और ध्यानके समयका अनिवार्य पूरक नहीं है? फिर जो समय एकमें अथवा दूसरेमें लगता है क्या उनका आपसी अनुपात तैयारी तथा उपलब्धिके प्रयासोंके अनुपातका ठीक प्रतिरूप नहीं है? वस्तुतः ध्यान, धारणा, भागवत मिलन उपलब्ध परिणाम हैं, खिला हुआ फूल है। इसके विपरीत, दैनिक कर्म-व्यवहार अहरन है, जिसपर सब तत्त्वोंको आना पड़ता है ताकि वे नरम, शुद्ध और सुसंस्कृत होकर ध्यानके दिये हुए प्रकाशको धारण करनेके लिये परिपक्व हो जायं। परंतु जबतक बाह्य कर्म सर्वांगीण विकासके लिये अनावश्यक नहीं हो जाता, यह जरूरी है कि ये सब तत्त्व बारी-बारीसे इस प्रकार तपती कड़ाहीमेंसे गुजरा करें। उस समय यह कर्म-व्यवहार तुझे अभिव्यक्त करनेका साधन बन जायगा जिसका उद्देश्य होगा चेतनाके दूसरे केंद्रोंको गलाने और उद्भासित करनेके द्विविध कार्यके लिये जाग्रत् करना — तभी तो अभिमान और अहंतुष्टि सबसे भयंकर विघ्न हैं। बहुत ही विनीत भावमें हमें सब छोटे-छोटे अवसरोंका लाभ उठाना चाहिये और इन अनगिनत अंगोंमेंसे कुछको गूंधकर शुद्ध करना चाहिये, उन्हें नम-नीय और निर्वैयक्तिक बनाना चाहिये तथा उन्हें स्वविस्मृति, त्याग, भक्ति, सद्भाव और कोमलताका पाठ पढ़ाना चाहिये। और जब ये गुण सामान्य अभ्यास बन जायेंगे तब ये अंग चिंतनमें सम्मिलित होनेके लिये तथा परा एकाग्रतामें तेरे साथ एकात्म होनेके लिये तैयार हो जायेंगे। मैं समझती हूं, इसी कारण यह कार्य, उच्च कोटिके साधकोंके लिये भी, लंबा और धीमा होना अनिवार्य है तथा आकस्मिक रूपांतर सर्वांगीण नहीं हो सकते। ये व्यक्तिके दृष्टिकोणको बदल देते हैं, उसे निश्चित रूपमें सीधे रास्तेपर डाल देते हैं, परंतु लक्ष्यको वास्तविक रूपमें प्राप्त करनेके लिये कोई व्यक्ति इन सब प्रकारके तथा हर क्षणके अनगिनत अनुभवोंको छोड़ नहीं सकता।

...हे परम गुरु, तू ही मुझमें तथा सब वस्तुओंमें उद्भासित हो रहा है। ऐसा कर कि तेरा प्रकाश प्रकट हो तथा तेरी शांतिका राज्य सबके लिये स्थापित हो।

२ दिसंबर, १९१२

जबतक हमारी सत्ताका एक भी अंग, हमारे चिंतनकी एक भी क्रिया किसी बाहरी प्रभावके अधीन है, अर्थात् एकमात्र तेरे प्रभावके अधीन नहीं है, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि तेरे साथ हमारा सच्चा एकत्व स्थापित हो गया है; अभीतक हमारी सत्ता व्यवस्था और ज्योतिसे हीन एक विकट सम्मिश्रण है, क्योंकि यह वस्तु, यह गति अपने-आपमें एक जगत् है, यह असंगति और अंधकारका एक जगत् है वैसे ही जैसे कि यह समूची पृथ्वी भौतिक जगत्के अंदर एक जगत् है और यह भौतिक जगत् समग्र विश्वके अंदर...।

३ दिसंबर, १९१२

कल शामको मैंने अनुभव किया कि तेरा पथप्रदर्शन प्राप्त करनेके लिये विश्वासपूर्ण आत्मसमर्पण कितना सफल होता है। जब किसी बातको जानना आवश्यक होता है तब मनुष्य उसे जान ही लेता है और उस समय मन जितना तेरे प्रकाशके प्रति निष्क्रिय हो उतने ही अधिक पर्याप्त और स्पष्ट रूपमें तेरा प्रकाश व्यक्त होता है।

मैंने तुझे अपने अंदर बोलते हुए सुना तो मेरी इच्छा हुई कि जो कुछ तूने कहा है उसे लिख लूं जिससे वह सम्यक् सूत्र कहीं खो न जाय—वस्तुतः जो तूने कहा था उसे मैं अब शायद ही दुहरा सकूं। पर मैंने अनुभव किया कि यह सुरक्षित रखनेकी चिंता भी तेरे प्रति विश्वासकी अपमानजनक कमीकी द्योतक है। मुझे जो कुछ बनना चाहिये वह तू मुझे, जहांतक मेरा आंतरिक भाव तुझे मुझपर तथा मेरे अंदर कार्य करनेकी अनुमति देता है, निश्चय ही बना सकता है। तेरी सर्वशक्तिमत्ता असीम है। यह जानने योग्य है कि जो तुझे सब जगह और सब चीजोंमें देखना जानते हैं उनके लिये प्रति क्षण जो होना चाहिये वह यथासंभव पूर्णताके साथ होता जा रहा है। अब और भय नहीं, विकलता नहीं, क्षोभ नहीं; है केवल पूर्ण आत्मप्रसाद, अखंड विश्वास, परम अचल शांति!

५ दिसंबर, १९१२

शांति और निश्चल-नीरवताके अंदर ही शाश्वत प्रभु आत्मप्रकाश करते हैं; किसी भी बातसे अपने-आपको उद्विग्न मत होने दो और तुम देखोगे कि शाश्वत प्रभु अभिव्यक्त होंगे; सब अवस्थाओंमें पूर्ण समत्व बनाये रखो और शाश्वत प्रभु विद्यमान होंगे . . .। हां, तुझे खोजनेके लिये न तो हमें बहुत अधिक उत्कण्ठा होनी चाहिये और न बहुत अधिक प्रयास ही करना चाहिये, यह उत्कण्ठा और यह प्रयास तुझे ढकनेवाले पर्देका काम करते हैं; तेरे दर्शनकी भी इच्छा नहीं करनी चाहियें, यह भी एक प्रकारकी मानसिक चंचलता है, जो तेरी शाश्वत उपस्थितिको धुंधला बना देती है। केवल पूर्णतम शांति, आत्मप्रसाद और समताके अंदर ही सब कुछ 'तू' हो जाता है जैसे कि तू 'सब कुछ' है ही, और इस पूर्ण शुद्ध और शांत वातावरणमें यदि तनिक भी कंपन हो तो वह तेरे आत्मप्रकाशमें बाधा पहुंचाता है। जरा भी जल्दबाजी नहीं होनी चाहिये, जरा भी अशांति नहीं, जरा भी खींचतान नहीं, तू और केवल तू ही अपेक्षित हो, बिना किसी विश्लेषण या विषयीकरणके, और तब तू वहां, बिना किसी संभवनीय संदेहके उपस्थित हो जाता है क्योंकि तब सब कुछ पावन शांति और पवित्र नीरवतामें परिणत हो जाता है।

यह अवस्था सब ध्यानोंसे श्रेष्ठ होती है।

७ दिसंबर, १९१२

शांत भावसे जलनेवाली दीपशिखाकी भांति, बिना हिले-डुले सीधे ऊपरकी ओर उठनेवाले सुगंधित धुंएकी भांति मेरा प्रेम तेरी ओर प्रवाहित हो रहा है; और एक बच्चेकी भांति, जो न तो तर्क-वितर्क करता और न किसी तरहकी चिंता ही करता है, मैं पूर्ण रूपसे तेरे ऊपर निर्भर करती हूं जिससे तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी ज्योति प्रकट हो, तेरी शांति चारों ओर विकीर्ण हो जाय और तेरा प्रेम सारे जगत्को आच्छादित कर दे। जब तू चाहेगा तभी मैं तुझे प्राप्त करूंगी, तेरे साथ एक हो जाऊंगी, बिना किसी भेदभावके 'तू' ही बन जाऊंगी। और मैं बिना किसी प्रकारकी अधीरताके उस शुभ घड़ीकी प्रतीक्षा करती हूं तथा अबाध रूपसे अपने-आपको उसकी ओर प्रवाहित होने देती हूं जैसे कोई शांत जलधारा असीम समुद्रकी ओर बढ़ती है।

तेरी शांति मेरे अंदर वर्तमान है और उस शांतिमें मैं 'शाश्वत' की स्थिरताके साथ केवल तुझे ही सब वस्तुओंमें उपस्थित देखती हूं।

१० दिसंबर, १९१२

हे परम स्वामी, सनातन गुरु, तेरे पथप्रदर्शनमें पूर्ण विश्वास होनेकी अद्वितीय सफलताका पुष्टिप्रद अनुभव फिर मुझे मिला। कल मेरे मुखसे तेरा प्रकाश — मेरे अंदर बिना किसी प्रतिरोधके — व्यक्त हुआ; यह यंत्र अनुगत, नमनीय तथा तीक्ष्ण था।

सब वस्तुओंमें, सब प्राणियोंमें कर्ता तू ही है और जो तेरे इतना समीप है कि वह सब क्रियाओंमें बिना अपवादके तुझे देख सकता है, वह प्रत्येक कर्मको आशीर्वादमें बदलना जानता है।

सदा तुझमें ही निवास करना, बस यही महत्त्वपूर्ण है, तुझमें ही सर्वदा और नित्य अधिकाधिक, मानसिक भ्रमों और इंद्रियजन्य मायाजालसे बाहर, परंतु कर्मोंसे विरक्त होकर नहीं, उनसे मुंह मोड़कर तथा उन्हें त्यागकर नहीं — यह संघर्ष तो व्यर्थ तथा हानिकारक है— बल्कि हर कर्म, जो भी हो वह, सदा-सर्वदा तुझमें ही निवास करते हुए करना। तब भ्रम दूर हो जाते हैं, इंद्रियजन्य मायाजाल खंडित हो जाते हैं, कर्मबंधन टूट जाते हैं और सब कुछ रूपांतरित हो जाता है तेरी सनातन सत्ताकी ओजपूर्ण अभिव्यक्तिमें।

बस, ऐसा ही हो।

११ दिसंबर, १९१२

. . . बिना अधीर और अशांत हुए मैं प्रतीक्षा करती हूं कि एक नया आवरण दूर हो जाय और तेरे साथ मेरा मिलन पूर्णतर हो जाय। मैं जानती हूं कि यह आवरण छोटी-छोटी त्रुटियों तथा अनगिनत मोहबंधनोंके एक पूरे समूहसे बना हुआ है। . . . यह समूह कैसे दूर होगा? धीरे-धीरे अनगिनत छोटे-छोटे प्रयासोंसे तथा ऐसी सजगतासे जो कभी क्षणभरके लिये भी नहीं चूकती, या यह दूर होगा कभी एकाएक ही तेरे सर्वशक्तिमान् प्रेमके एक बृहत् प्रकाशसे? मैं नहीं जानती और न मैं इसके

विषयमें कोई प्रश्न ही करती हूं। मैं शक्तिभर सजग रहते हुए प्रतीक्षा करती हूं। मुझे निश्चय है कि केवल तेरी इच्छा ही सत् है, एकमात्र तू ही कर्ता है और मैं केवल एक यंत्र हूं; और यह यंत्र जब पूर्णतर अभिव्यक्तिके लिये तैयार हो जायगा तब अभिव्यक्ति स्वभावतः ही घटित होगी।

इस समय भी आवरणके पीछेसे आनंदकी एक मौन स्वर-लहरी सुनायी पड़ रही है जो तेरे ओजस्वी अस्तित्वका परिचय दे रही है।

५ फरवरी, १९१३

तेरी ध्वनि मेरे हृदयकी नीरवतामें एक मधुर संगीतके समान सुनायी देती है और मेरे मस्तिष्कमें कुछ अपूर्ण शब्दोंके रूपमें अनूदित होती है जो अपूर्ण होते हुए भी तेरे भावसे भरपूर हैं। ये शब्द पृथ्वीको संबोधित करके कहते हैं: ओ गरीब दुखिया धरती, याद रख, मैं तेरे अंदर बैठा हूं, आशा न छोड़; तेरा प्रत्येक प्रयत्न, प्रत्येक दुःख, प्रत्येक हर्ष और प्रत्येक शोक, तेरे हृदयकी प्रत्येक याचना, तेरी आत्माकी प्रत्येक अभीप्सा, तेरी ऋतुओंका प्रत्येक पुनरावर्तन, सभी, बिना अपवादके, जो सब तुझे बुरा लगता है या भला, जो तुझे असुन्दर प्रतीत होता है या सुन्दर, सभी तुझे अचूक रूपसे मेरी ओर लाते हैं। मैं वह शांति हूं जिसकी सीमा नहीं, वह प्रकाश हूं जिसमें अंधकार नहीं, मैं पूर्ण समस्वरता, निश्चयात्मक भाव, विश्राम और परम आशीर्वाद हूं।

सुनो धरती, उठती हुई इस पवित्र ध्वनिको सुनो।

सुनो और फिरसे साहस करो।

८ फरवरी, १९१३

हे नाथ! तू ही मेरा आश्रय और मेरा कल्याण है, तू ही मेरी शक्ति, मेरा स्वास्थ्य, मेरी आशा और मेरा साहस है। तू परम शांति, अमिश्रित आनंद और पूर्ण आत्मप्रसाद है। मेरी सारी सत्ता अनंत कृतज्ञता तथा अविच्छिन्न श्रद्धा-भक्तिके साथ तेरे चरणोंमें लोट रही है; और यह श्रद्धा-भक्ति मेरे हृदय और मनसे उठकर तेरी ओर वैसे ही जा रही है

जैसे भारतके सुगंधित द्रव्योंका पवित्र धुआं ऊपरकी ओर उठता है।

हे प्रभु ! ऐसी कृपा कर कि मैं मनुष्योंके बीच तेरी अग्रदूत बन सकूं जिससे कि वे सब लोग जो तैयार हैं, उस परम आनंदका आस्वाद पा सकें जिसे तू अपनी असीम करुणावश मुझे प्रदान कर रहा है, तथा ऐसी कृपा कर कि इस पृथ्वीपर तेरी शांतिका राज्य स्थापित हो।

१० फरवरी, १९१३

हे भगवान्, कृतज्ञतामें मेरी सत्तामात्र तुझे "धन्य धन्य" कहती है। इसलिये नहीं कि तू अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये इस दुर्बल तथा अपूर्ण शरीरको उपयोगमें ला रहा है बल्कि इसलिये कि "तू अपने-आपको अभिव्यक्त तो कर रहा है", और यह, वास्तवमें वैभवोंका वैभव है, आनंदोंका आनंद और आश्चर्योंका आश्चर्य है। तेरे सब उत्कट जिज्ञासुओंको यह पता होना चाहिये कि जहां तेरे प्रकट होनेकी आवश्यकता होती है वहां तू प्रकट हो जाता है। यदि वे इस चरम श्रद्धामें तुझे ढूंढ़नेकी अपेक्षा हर क्षण अपने-आपको समग्र रूपमें तेरी सेवामें अर्पण करके प्रतीक्षा करना अंगीकार करें तो, निश्चय ही, जब आवश्यकता होगी तू प्रकट हो जायगा। और, वास्तवमें, अभिव्यक्तिके रूप चाहे कितने भी विभिन्न तथा प्रायः अप्रत्याशित ही क्यों न हों, क्या हमेशा ही तेरे अभिव्यक्त होनेकी आवश्यकता नहीं है !

प्रभु, तेरी महिमा उद्घोषित हो,
मानव-जीवन उससे पवित्र बने,
हमारे हृदय रूपांतरित हों,
और सारी धरतीपर तेरी शांतिका राज्य हो।

१२ फरवरी, १९१३

ज्यों ही किसी अभिव्यक्तिमेंसे प्रयत्नमात्रका लोप हो जाता है त्यों ही वह एक अत्यंत सरल क्रिया बन जाती है, वैसे ही सरल जैसे कि एक फूल, बिना किसी कोलाहल और आवेगके, सहज ही खिलता है तथा अपने सौंदर्य-

को व्यक्त करता है और अपनी सुगंधि फैलाता है। इसी सरलतामें अधिकतम बलका निवास होता है, कम-से-कम मिलावट होती है और इसकी क्रिया कम-से-कम हानिकारक होती है। प्राणशक्तिका विश्वास नहीं करना चाहिये, यह कर्म-मार्गमें प्रलोभक है। इसके जालमें फंसनेका डर सदा ही रहता है, क्योंकि इसमें तुरत परिणाम पानेका आवेग होता है। अच्छे ढंगसे कार्य करनेके प्रथम उत्साहमें हम इसे प्रयोगमें लानेके लिये बलात् आकर्षित हो जाते हैं। परंतु शीघ्र ही यह कर्मको विपथपर डाल देती है, और फिर जो कुछ हम करते हैं उसमें यह भ्रांति और मृत्युका बीज समाविष्ट कर देती है।

सरलता, सरलता ! तेरी उपस्थितिकी पवित्रता कितनी मधुर है...।

१३ मार्च, १९१३

हे प्रभु, पवित्रीकरणकी धूप सदा जलती रहे और उसका पवित्र सुगंधित धुआं अधिकाधिक ऊंचा तथा सीधा उठता रहे, वैसे ही जैसे हमारी समग्र सत्तासे तेरे साथ युक्त होने तथा तुझे अभिव्यक्त करनेके लिये प्रार्थना अनवरत उठा करती है।

११ मई, १९१३

जैसे ही सांसारिक दायित्व खत्म हो जाते हैं वैसे ही इन सब चीजोंसे संबंध रखनेवाले विचार मुझसे कोसों दूर भाग जाते हैं और मैं अपने-आपको एकमात्र और पूर्ण रूपमें तेरे ही चिंतन तथा तेरी ही सेवामें तल्लीन पाती हूं। और तब पूर्ण शांति और निस्तब्धताके अंदर मैं अपनी इच्छाको तेरी इच्छाके साथ एक कर देती हूं और उस सर्वांगपूर्ण निश्चल-नीरवताके भीतर मैं तेरे सत्यको प्रकट करनेवाली वाणी सुनती हूं।

तेरी दिव्य इच्छासे सज्ञान होने तथा तेरी इच्छाके साथ अपनी इच्छाको एकाकार कर देनेसे ही सच्ची स्वतंत्रता और सर्वशक्तिमत्ताका रहस्य, शक्तियोंको पुनः जागरित करने और सत्ताको रूपांतरित करनेका रहस्य ज्ञात होता है।

तेरे साथ निरंतर सर्वांगीण रूपसे सम्मत होना ही इस बातका अटल निश्चय है कि सारी बाधाएं पार हो जायेंगी तथा बाहरी और भीतरी सभी कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त होगी।

प्रभु! हे प्रभु! असीम आनंद मेरे हृदयमें भर रहा है, आनंद-गानकी अद्भुत तरंगें मेरे मस्तिष्कमें लहरा रही हैं और तेरी ध्रुव विजयमें पूर्ण विश्वास होनेके कारण मैं चरम शांति और अजेय शक्ति प्राप्त कर रही हूं। तू मेरी सत्ताके अंदर ओतप्रोत होकर विराजमान है, तू इसे संजीवित कर रहा है, इसके प्रसुप्त शक्ति-स्रोतोंको गतिशील बना रहा है; इसकी बुद्धिको आलोकित कर रहा है, इसके जीवनको तीव्रता प्रदान कर रहा है, इसके प्रेमको दसगुना बढ़ा रहा है, और अब मैं यह समझनेमें असमर्थ हूं कि मैं यह विश्व हूं या यह विश्व 'मैं' है, तू मेरे अंदर है या मैं तेरे अंदर हूं। एकमात्र तू ही विद्यमान है और सब कुछ 'तू' ही 'तू' है। तेरी अनंत कृपाकी लहरें जगत्में व्याप्त हो रही हैं, उसे परिप्लावित कर रही हैं।

गाओ, गाओ, देशो, जातियो, मनुष्यो, गाओ,
भागवत सामंजस्य उपस्थित है!

१५ जून, १९१३

जो एकांत और नीरवतामें पूर्ण ध्यानावस्था प्राप्त कर भी लेते हैं, वे अपने-आपको शरीरसे अलग करके मानों उससे तोड़कर ही यह पाते हैं। फलतः वह तत्त्व जिसका यह शरीर बना हुआ है पहले जैसा ही अपवित्र तथा अपूर्ण बना रहता है क्योंकि इसे तो वे अपने हालपर ही छोड़ देते हैं। वे एक भटके हुए गुह्यवादसे प्रेरित होकर अतिभौतिक वैभवोंके प्रलोभनसे तथा व्यक्तिगत संतोषके लिये तुझे पानेकी अहंमूलक इच्छासे अपने पार्थिव जीवनके मूल कारणकी ओरसे मुंह फेर लेते हैं। वे कायरता-के भावमें जड़तत्त्वके उद्धार और उसके पवित्रीकरणके अपने उद्देश्यकी पूर्तिसे इंकार करते हैं। यह जानना कि हमारी सत्ताका एक भाग पूर्णतया पवित्र है, उस पवित्र अंशसे आंतरिक संबंध स्थापित करना तथा उससे एकत्व प्राप्त करना तभी उपयोगी हो सकता है जब कि मनुष्य इस ज्ञानको पार्थिव रूपांतरको द्रुततर वेग देने तथा तेरे पवित्र कार्यको पूरा करनेमें काममें लाये।

१७ जून, १९१३

हे प्रभु, वर दे कि मैं वह अग्नि बनूं जो प्रकाश देती है और गर्मी पहुंचाती है, वह स्रोत बनूं जो प्यास बुझाता है, वह वृक्ष बनूं जो छाया तथा आश्रय देता है... मनुष्य इतने दुःखी हैं, इतने अज्ञानमें हैं कि उन्हें सहायताकी बहुत आवश्यकता है।

तेरे ऊपर मेरा विश्वास और भरोसा, मेरी आंतरिक निश्चयता दिन-दिन बढ़ रही है। और दिन-दिन ही तेरा प्रेम मेरे हृदयमें अधिक सजग हो रहा है, तेरा प्रकाश अधिक उज्ज्वल तथा कोमल बन रहा है। मैं अधिकाधिक 'तेरे कर्म' और अपने जीवनमें तथा अपने व्यक्तित्व और संपूर्ण पृथ्वीमें भेद नहीं कर पा रही।

प्रभु, हे प्रभु, तेरा तेज अनंत है, तेरा सत्य अद्‌भुत है। तेरा परम शक्तिशाली प्रेम संसारका उद्धार करेगा।

१८ जून, १९१३

तेरी ओर अभिमुख होना, तुझसे एकत्व प्राप्त करना, तुझमें तेरे लिये ही जीना, — यह है परम आनंद, विशुद्ध प्रसन्नता और विकाररहित शांति। यह है 'अनंत' में श्वास लेना, नित्यतामें उड़ना और अपनी सीमाओंसे मुक्त हो जाना, देश और कालसे परे पहुंच जाना। क्यों मनुष्य इस सौभाग्यसे ऐसे भागते हैं मानों उन्हें इससे डर लगता हो? यह अविद्या भी कैसी विचित्र वस्तु है? यही अविद्या सब दुःखोंका कारण है! कितना दुःख है! यही अज्ञान मनुष्योंको उससे दूर रखता है जो उनका परम सौभाग्य-दाता है तथा निरे संघर्ष और दुःखसे बने इस सामान्य जीवनको दुःखमय नियममें जकड़े रखता है।

२७ जून, १९१३

हे प्रभु! तेरी ध्वनि इतनी नम्र, इतनी समदर्शी तथा दया और धैर्यमें इतनी उत्कृष्ट होती है कि उसमें अधिकार, सत्ता अथवा स्वेच्छाका संस्कार लेशमात्र भी नहीं होता। वह अभिनव समीरके समान कोमल और पवित्र

है अथवा उस स्फटिक-स्वच्छ कोमल शब्दके समान है जो अनेक वाद्योंके बेसुरे वादनमें समस्वरता प्रदान करता है। जो उस शब्दको सुनना जानते हैं तथा उस समीरमें श्वास लेना जानते हैं, केवल उन्हींको तेरी वह ध्वनि ऐसी अपूर्व सौन्दर्य-राशि, ऐसा पवित्र प्रसाद और महान् विशालताकी अपूर्व सुगंधि प्रतीत होती है। तब सब मूर्खतापूर्ण भ्रम नष्ट हो जाते हैं अथवा वे सब उस आभासित अद्भुत् सत्यकी आनंदमयी स्वीकृतिमें रूपांतरित हो जाते हैं।

२१ जुलाई, १९१३

. . . परंतु कितना धैर्य चाहिये ! उन्नति तो दिखायीतक नहीं देती ! . . . अहा ! किस प्रकार अपने हृदयकी गहराईसे मैं तुझे पुकारती हूं, हे सच्चा प्रकाश, महत्तर प्रेम, दिव्य गुरु ! तू ही तो हमें जीवन प्रदान करता है और प्रकाश देता है, तू ही हमें मार्ग दिखाता और हमारी रक्षा करता है। तू ही हमारी आत्माकी आत्मा है, हमारे जीवनका जीवन है तथा हमारे अस्तित्वका आधारभूत 'कारण' है। तू परम ज्ञान है, निर्विकार शांति है !

२३ जुलाई, १९१३

हे प्रभु, हे अचिंत्य तेजपुंज, वर दे कि तेरा सौन्दर्य पृथ्वीपर फैल जाय, तेरा प्रेम सब हृदयोंमें प्रज्ज्वलित हो उठे, तेरी शांति सबपर छा जाय।

हे प्रभु, मेरे हृदयसे एक गहरा, गंभीर प्रसन्नतापूर्ण और सूक्ष्म गीत उठता है। पता नहीं कि यह मुझसे उठकर तेरी ओर जा रहा है अथवा तू, मैं और समस्त संसार यह अद्भुत गीत बने हुए हैं जिसका मुझे अब ज्ञान हो रहा है . . . निश्चय ही अब न तू है, न मैं हूं और न कोई अलग संसार है। है केवल एक बृहत् अनंत तथा उदात्त समस्वरता जिसमें सब कुछ समाविष्ट है और जिसका एक दिन सबको ज्ञान हो जायगा। यह समस्वरता उस असीम प्रेमकी समस्वरता है जो सब दुःख तथा अंधकारको जीत लेगा।

मैं अब इस प्रेमके नियम, तेरे ही नियम, के अनुसार अधिकाधिक

सर्वांगपूर्ण रूपमें जीना चाहती हूं। इसके प्रति मैं बिना संकोचके अपने-आपको समर्पित करती हूं।

और मेरी सत्ता अनिर्वचनीय शांतिमें आनंद मना रही है।

२ अगस्त, १९१३

हे प्रभु! आज प्रातःकाल जैसे ही मैंने इस प्रारंभ होनेवाले मासकी ओर दृष्टि डाली और अपने-आपसे पूछा कि तेरी सेवा करनेका सर्वोत्तम साधन क्या होगा, वैसे ही मैंने धीमी आंतरिक ध्वनिको मानों नीरवतामें अस्फुट गुंजनकी तरह सुना। इसने मुझसे कहा: "देखो, बाह्य अवस्थाओं-का महत्त्व कितना कम होता है! तुम 'सत्य'-विषयक अपनी कल्पनाको चरितार्थ करनेके लिये क्यों आयासपूर्ण परिश्रम करती हो तथा अपने-आपको कठोर बनाती हो। अधिक नमनशील बनो, अधिक विश्वासपूर्ण बनो। तुम्हारा एकमात्र कर्तव्य है किसी कारण भी अपने-आपको व्याकुल न होने देना। शुभ काम करनेके लिये चिंतित होनेसे वैसे ही बुरे परिणाम निकलते हैं जैसे कि बुरी नीयतसे। 'सत्य-सेवा' गंभीर जल जैसी शांत अवस्थामें ही संभव हो सकती है।"

यह उत्तर इतना तेजपूर्ण तथा इतना पवित्र था, इसकी सत्ता इतनी प्रभावपूर्ण थी कि इसमें वर्णित अवस्था बिना कठिनाईके मुझे प्राप्त हो गयी। मुझे लगा मानों मैं शांत गंभीर जलपर तैर रही हूं; मैं समझ गयी मैंने स्पष्ट देख लिया कि सर्वोत्तम मनोभाव क्या है। हे महान् देव! हे परम गुरु! अब मैं तुझसे केवल वह आवश्यक शक्ति और दृष्टि मांगती हूं जिससे मैं सदा इस अवस्थामें रह सकूं।

"वत्स! दुःखी मत हो, नीरवता, शांति, शांति।"

८ अगस्त, १९१३

सभी वस्तुओंमें निवास करनेवाली हे मधुछंदा, हे मेरे हृदयमें समायी हुई समस्वरता, तू जीवनके बाह्यतम रूपोंमें, इसकी सभी भावनाओंमें, इसके सभी विचारोंमें, इसके सभी कर्मोंमें अपने-आपको अभिव्यक्त कर।

बाहर कोलाहल होते हुए भी मुझे सब कुछ सुन्दर, समस्वर तथा नीरव लगता है। इस नीरवतामें, हे प्रभु! मैं तुझे ही देखती हूं और तुझे मैं ऐसे देखती हूं कि उसका वर्णन केवल "एकरस मंद स्मित" ही हो सकता है। मैं तुझे देखकर जो अनुभव करती हूं उसकी तुलनामें सारभूत मधुरतम, शांततम तथा करुणतम मंद हास्यका श्रेष्ठ अनुभव भी एक हीन उपमा है।

हे प्रभु! तेरी शांति सभीको प्राप्त हो।

१५ अगस्त, १९१३

यह जो सांझ हो रही है इसमें तेरी शांति अधिक गंभीर तथा अधिक मधर होती जा रही है और तेरी ध्वनि मेरी सत्ताकी व्यापक नीरवतामें अधिक स्पष्ट रूपमें सुनायी दे रही है।

हे दिव्य स्वामी! हमारा जीवन, हमारा चिंतन, हमारा प्रेम, हमारा सारा अस्तित्व तुझे समर्पित है। अपनी वस्तुको तू पुनः अपने अधिकारमें कर, क्योंकि वास्तविक सत्तामें हम 'तू' ही तो हैं।

१६ अगस्त, १९१३

ओ प्रेम! दिव्य प्रेम! तू मेरी सत्तामात्रको परिपूर्ण कर रहा है और सब ओरसे उमड़ रहा है। मैं 'तू' हूं और 'तू' मैं; मैं सब जीवों-में, सब वस्तुओंमें — पवनके हल्के झोंकेसे लेकर उस तेजपुंज सूर्यतकमें जो हमें प्रकाश देता है और तेरा प्रतीक है — तुझे देखती हूं।

ओ तू जिसे मैं समझ नहीं सकती, मैं अत्यंत पवित्र भक्तिकी नीरवता-में तेरी पूजा करती हूं।

१७ अगस्त, १९१३

हे प्रभु, हमारे जीवनके स्वामी, हमें बहुत ऊंची उड़ान लेने दे, शरीर-रक्षाकी चिंतामात्रसे बहुत ऊपर। सदा शरीरकी रक्षाके सोच-विचारमें पड़े रहना, अपने स्वास्थ्य और जीविकामें, अपने जीवनके ढांचेमें व्यस्त रहना — इससे बढ़कर दीन-हीन अवस्था और कोई नहीं हो सकती ...। कैसी तुच्छ हैं ये चीजें, छितरा धुआं जो फूंक मारनेसे उड़ जाता है, तेरी ओर मुड़े हुए एक ही विचारके आगे निःसार मृगतृष्णाकी तरह लुप्त हो जाता है।

जो इस दासतामें रहते हैं उन्हें मुक्त कर, और उन्हें भी जो अपनी विषय-वासनाओंकी दासतामें रहते हैं। तेरी ओर ले जानेवाले पथकी ये बाधाएं एक साथ ही भयानक भी हैं और क्षुद्र भी; भयानक उनके लिये जो अभीतक इनमें फंसे हैं, क्षुद्र उसके लिये जो इन्हें पार कर चुका है।

कैसी अकथनीय है वह पूर्ण विश्रांति, वह मधुर हल्कापन जिसे हम तब अनुभव करते हैं जब हम अपने-आपकी, अपने जीवनकी, अपने स्वास्थ्यकी, अपनी सुख-संपदाकी और यहांतक कि अपनी उन्नतिकी आतुर चिंतामात्रसे मुक्त हो जाते हैं।

यह विश्रांति, यह मुक्ति मुझे तूने प्रदान की है, ओ तू, दिव्य स्वामी, मेरे जीवनके जीवन, मेरी ज्योतिकी ज्योति, तू जो मुझे सदैव प्रेमका पाठ सिखाता है और जिसने मुझे मेरे अस्तित्वका कारण समझा दिया है।

तू ही है जो मुझमें निवास करता है, केवल तू ही; तो फिर मैं स्वयं अपने विषयमें और मुझे जो कुछ भी हो उस विषयमें क्यों व्यस्त रहूं? तेरे बिना यह मिट्टीका पुतला जो तुझे व्यक्त करनेका प्रयत्न कर रहा है, चूर्ण-विचूर्ण होकर आकारविहीन और निश्चेतन हो जायगा; तेरे बिना यह इंद्रियगत बोध जो अभिव्यक्तिके इन सब अन्य केंद्रोंके साथ हमारे संबंधोंका द्वार खोल देता है, अंध जड़तामें विलीन हो जायगा; तेरे बिना यह विचार जो समन्वयको अनुप्राणित करता और उसपर प्रकाश डालता है, विक्षिप्त, निस्तेज और असिद्ध रह जायगा; तेरे बिना यह उदात्त प्रेम जो जीवन देता है, जो सुसंगत करता है, जो सबको उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करता है, अजाग्रत् संभावना ही रह जायगा। तेरे बिना सब कुछ जड़, पशुवत् या अचेतन है। जो भी हमें प्रकाश और उल्लाससे भरता है वह बस तू ही है, हमारे अस्तित्वमें रहनेका एकमात्र कारण और हमारा संपूर्ण लक्ष्य तू ही है। क्या यही हमें सब वैयक्तिक विचारोंसे मुक्त करनेके लिये काफी नहीं है, क्या हम इसके भरोसे अपने पंख फैलाकर, स्थूल

जीवनकी घटनाओंसे ऊपर उठकर ऐसी उड़ान नहीं भर सकते जिससे हम तेरे दिव्य वातावरणमें पहुंच जायं और हममें यह शक्ति भी बनी रहे कि हम तेरा संदेश लेकर पृथ्वीपर लौट आयें और तेरे आसन्न आगमनका श्रेष्ठ समाचार सुना सकें ?

हे दिव्य प्रभु, महामहिम सखा, अद्‌भुत गुरु, उर्वर नीरवतामें मैं तुझे प्रणाम करती हूं।

७ अक्तूबर, १९१३

हे प्रभु, इस घरमें, जो तुझे समर्पित है, आज तीन महीनेकी अनुपस्थिति-के बाद लौटनेपर मुझे दो अनुभवोंको प्राप्त करनेका सुअवसर मिला है। पहला यह कि अपनी बाह्य सत्तामें, अपनी ऊपरी चेतनामें मुझे अब ऐसा जरा भी प्रतीत नहीं होता कि मैं अपने घरमें हूं या किसी भी वस्तुकी स्वामिनी हूं। मैं एक अपरिचित देशमें परदेशी हूं, उससे भी कहीं अधिक परदेशी जितनी कि वृक्षोंके बीच खुले खेतमें होती हूं; और अब जो मैं पहले नहीं जानती थी उसे जान गयी हूं तो मुझे हंसी आती है, प्रस्थानसे पहले मेरे अंदर "घरकी स्वामिनी" होनेका जो अनुभव था, उसका विचार करके ही मुझे हंसी आती है। यह आवश्यक था कि यह सारा अभिमान निश्चित रूपसे टूट जाय, चकनाचूर तथा पददलित हो जाय जिससे कि मैं वस्तुओंका सच्चा स्वरूप समझ सकूं, उसे देख तथा अनुभव कर सकूं। मैंने तुझे यह घर अर्पित किया था, हे प्रभु, मानों यह मेरे लिये संभव भी हो सकता है कि मेरा किसी चीजपर स्वत्व है और इस नाते मैं वह तुझे समर्पित कर सकती हूं। सब कुछ तेरा है, हे नाथ, तू ही हमें हर चीज प्रयोगके लिये देता है; पर कितनी बड़ी होती है हमारी अंधता, जब हम यह समझने लगते हैं कि हम किसी चीजके स्वामी भी हो सकते हैं! यहां तथा और सब जगह भी मैं एक अतिथि हूं, भूतलपर तेरी संदेशवाहिका तथा सेविका हूं, मनुष्योंके बीच परदेशी, पर फिर भी उनके जीवनकी असली आत्मा, उनके हृदयका प्रेम....।

दूसरा अनुभव यह है कि घरका सारा वातावरण एक पवित्र गंभीरतासे ओतप्रोत हो गया है; यहां मनुष्य एकदम गहराइयोंमें जा पैठता है; ध्यान अधिक समाहित तथा गभीर होता है; विक्षेप दूर होकर एकाग्रताको स्थान देता है; मुझे अनुभव होता है कि मेरे हृदयमें प्रवेश करनेके लिये यह एकाग्रता वस्तुतः मेरे मस्तिष्कसे उतर रही है, और मेरा हृदय उस

गहराईमें पहुंच गया प्रतीत होता है जो मेरे मस्तिष्ककी गहराईसे अधिक महान् है। ऐसा लगता है मानों तीन महीनेसे मैं अपने मस्तिष्कद्वारा प्रेम करती आ रही थी और अब मैं अपने हृदयद्वारा प्रेम करने लगी हूं; और इससे अनुभवमें अतुलनीय गंभीरता तथा मधुरता आ गयी है।

मेरी सत्तामें एक नया द्वार खुल गया है और बृहत्ता मेरे सामने प्रकट हो उठी है।

मैं भक्तिपूर्वक देहरी पार करती हूं यद्यपि प्रस्तुत गुप्त पथपर पदार्पण करनेमें अभी अपनेको अयोग्य ही अनुभव करती हूं। यह पथ दृष्टिसे ओझल है पर भीतर मानों अदृश्य रूपमें प्रकाशमान है।

सब कुछ बदल गया है, सब नया है, पुराने चोले उतर गये हैं और नवजात शिशु अधखुली आंखोंसे उषाके प्रकाशकी ओर हेर रहा है।

२२ नवंबर, १९१३

तेरे सामने नीरवतामें बीते कुछ ही क्षण सुखकी सदियोंके समान होते हैं...।

प्रभु, ऐसी कृपा कर कि सब अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाय और मैं, अधिकाधिक स्थिरता और प्रसन्नताके साथ तेरी सच्ची सेविका बन सकूं; मेरा हृदय तेरे सामने स्वच्छ स्फटिक-सा निर्मल रहे जिससे यह सारे-का-सारा तुझे पूर्ण रूपसे प्रतिबिंबित कर सके।

ओह, कैसा मधुर है तेरे सम्मुख नीरवतामें रहना...।

२५ नवंबर, १९१३

निश्चय ही तेरे विषयमें मौन चिंतनका सबसे बड़ा शत्रु है अवचेतनाका उन अनेकों वस्तुओंको निरंतर अंकित करते रहना जिनके संपर्कमें हम आते हैं। जबतक हम मस्तिष्कसंबंधी चेष्टामें निरत रहते हैं हमारा चेतन विचार हमसे इस अवचेतन ग्रहणशीलताकी अमित क्रियाको छिपाये रखता है। हमारी संवेदनशील सत्ताका एक अच्छा-खासा भाग — और यह संभवतः सबसे छोटा भाग नहीं है — सिनेमा-चित्र दिखानेवाले यंत्रकी भांति कार्य

करता है; यह कार्य हमारे अनजानमें तो होता ही है साथ ही हमें हानि भी पहुंचाता है। जब हम अपने सक्रिय विचारको नीरव बना देते हैं — जो अपेक्षाकृत सरल है — तभी हम उन अंकित किये गये अनेक तुच्छ अवचेतन विचारोंको चारों ओरसे ऊपर उठते हुए देखते हैं। ये प्रायः ही हमें अपनी उमड़ती हुई धारामें डुबा देते हैं। यही कारण है कि ज्यों ही हम नीरवतामें गंभीर चिंतनका प्रयास करते हैं हम इन असंख्य विचारोंसे — अगर ये विचार कहे जा सकते हैं — आक्रांत हो जाते हैं जिनमें हमें तनिक भी रुचि नहीं होती; किसी सक्रिय इच्छा या चेतन अभिरुचिके प्रतीक भी ये नहीं होते; ये तो केवल हमारी यह अयोग्यता सिद्ध करते हैं कि हम अपनी अवचेतन सत्ताकी ग्रहणशीलतापर नियंत्रण रख सकनेमें समर्थ नहीं हैं — उस ग्रहणशीलतापर जिसे हम मशीनकी भांति कार्य करनेवाली कह सकते हैं। इस समस्त व्यर्थके शोरगुलको शांत करनेके लिये, इन यंत्रोंको थका देनेवाले तांतेको रोकनेके लिये, मनको इन सहस्रों बोझिल, निरर्थक और असत्य तुच्छताओंसे मुक्त करनेके लिये हमें अत्यंत परिश्रम करना पड़ेगा। यह कितने ही समयकी व्यर्थ हानि होगी, एक भयंकर क्षति होगी।

इसका उपाय? कुछ तप-वैराग्यकी विधियां, सीधे-से रूपमें, एकांत और निष्क्रियताको इसका उपाय बताती हैं; इस प्रकार अवचेतनको सब संभवनीय प्रभावोंसे सुरक्षित कर दिया जाता है। पर यह उपाय मुझे एक बच्चेका-सा उपाय प्रतीत होता है, क्योंकि यह वैरागीको पहले आक्रमण-की दयापर ही छोड़ देता है। जब वैरागी समझता है कि वह अपने ऊपर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर चुका है और, यदि वह कभी अपने भाइयोंकी सहायता करनेके लिये उनके बीच वापस आना चाहता है, तब उसकी अवचेतन सत्ता, जो इतने दिनसे अपनी ग्रहणशील क्रियासे रुकी पड़ी थी, जरा-सा अवसर पाते ही अत्यधिक वेगसे उसमें प्रवृत्त हो जाती है।

निश्चय ही इसका एक उपाय और भी है। क्या? हमें निःसंदेह अपने अवचेतन मनके ऊपर उसी प्रकार नियंत्रण रखना सीखना चाहिये जैसा हम अपने चेतन विचारके ऊपर रखते हैं। इस बातको सीखनेकी अनेक विधियां हैं। बौद्ध तरीकेसे नियमपूर्वक अंतर्निरीक्षण करना तथा अपने स्वप्नोंका विधिपूर्वक विश्लेषण करना — जो प्रायः सदा ही अवचेतनके अंकित संस्कारोंसे गठित होते हैं — उस ज्ञातव्य विधिके अंग हैं। परंतु निश्चय ही कोई शीघ्रतर फल लानेवाला उपाय भी होगा ही ...।

हे नाथ, सनातन प्रभु, तू ही मेरा शिक्षक मेरा प्रेरक बनेगा; तू ही मुझे सिखायेगा कि मुझे क्या करना चाहिये जिससे कि जो कुछ मैं

तुझसे सीखूं उसका अपने ऊपर आवश्यक प्रयोग कर लेनेके बाद मैं दूसरोंको उससे लाभ पहुंचा सकूं।

एक मृदुल और विश्वासपूर्ण भक्तिके साथ मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

२८ नवंबर, १९१३

हे हमारी सत्ताके स्वामी, प्रभातकालीन एकाग्र ध्यानकी इस शांतिमें, अन्य किसी भी समयकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह, मेरे विचार उत्सुक प्रार्थनाके रूपमें तेरी ओर उठते हैं।

मैं प्रार्थना करती हूं कि यह दिन जो शुरू होनेवाला है पृथ्वी तथा मनुष्योंके लिये थोड़ा और पवित्र प्रकाश तथा सच्ची शांति लाये; तेरी अभिव्यक्ति अधिक पूर्ण हो सके तथा तेरा मधुर विधान अधिक स्वीकृत; कोई वस्तु अधिक उच्च, अधिक उदात्त, अधिक सत्य, मानवजातिपर प्रकट हो; अधिक विस्तृत तथा अधिक गंभीर प्रेम फैले जिससे कि दुःखदायी व्रण भर जायं; तथा सूर्यकी जो यह प्रथम किरण फूटने जा रही है वह आनंद और सामंजस्यकी घोषणा करे तथा उस ओजस्वी तेजपुंजकी संज्ञा बने जो कि जीवनके सारतत्त्वमें प्रच्छन्न है।

हे दिव्य स्वामी, प्रदान कर कि यह दिन हमारे लिये तेरे विधानके प्रति अधिक पूर्ण आत्मनिवेदनका, तेरे कर्मके प्रति अधिक सर्वांगीण समर्पणका, अधिक समग्र आत्म-विस्मृतिका, अधिक विशाल प्रकाशका तथा अधिक पवित्र प्रेमका अवसर बने; और यह भी प्रदान कर कि तेरे साथ अधिकाधिक गंभीर और अटूट अंतर्मिलनद्वारा हम उत्तरोत्तर अधिक अच्छी तरह तेरे योग्य सेवक बननेके लिये अपने-आपको तेरे साथ एकीभूत करें। हमसे समग्र अहंता, तुच्छ अभिमान, सारा लोभ और सारा अंधकार दूर कर ताकि तेरे दिव्य प्रेमसे पूर्णतया प्रज्ज्वलित होकर संसारमें हम तेरी दीपिकाएं बनें।

पूर्वके सुवासित धूपके सफेद धुएंके समान मेरे हृदयसे एकाग्र मौन गीत उठता है।

और पूर्ण समर्पणके प्रशांत भावमें इस दिनोदयके समय मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

२९ नवंबर, १९१३

यह सब कोलाहल किसलिये, यह दौड़-धूप, यह व्यर्थकी थोथी हलचल किसलिये? यह बवंडर किसलिये जो मनुष्योंको झंझावातमें फंसे हुए मक्खियोंके दलकी भांति उड़ा ले जाता है? यह समस्त व्यर्थमें नष्ट हुई शक्ति, ये सब असफल प्रयत्न कितना शोकप्रद दृश्य उपस्थित करते हैं! लोग रस्सियोंके सिरेपर कठपुतलियोंकी भांति नाचना कब बंद करेंगे? वे यह भी नहीं जानते कि कौन या क्या वस्तु उनकी रस्सियोंको पकड़े उनको नचा रही है। उनको कब समय मिलेगा शांतिसे बैठकर अपने-आपमें समाहित होनेका, अपने-आपको एकाग्र करनेका, उस आंतरिक द्वार-को खोलनेका जो तेरे अमूल्य खजाने, तेरे असीम वरदानपर पर्दा डाल रहा है? ...

अज्ञान और अंधकारसे भरा हुआ, मूढ़ हलचल तथा निरर्थक विक्षेप-वाला उनका जीवन मुझे कितना कष्टप्रद और दीन-हीन लगता है जब कि तेरे उत्कृष्ट प्रकाशकी एक किरण, तेरे दिव्य प्रेमकी एक बूंद इस कष्टको आनंदके सागरमें परिवर्तित कर सकती है!

हे प्रभु, मेरी प्रार्थना तेरी ओर उन्मुख होती है: आखिर ये लोग तेरी शांति तथा उस अचल और अदम्य शक्तिको जान लें जो अविचल धीरतासे प्राप्त होता है। और यह धीरता केवल उन्हींके हिस्से आती है जिनकी आंखें खुल गयी हैं और जो अपनी सत्ताके जाज्वल्यमान केंद्रमें तेरा चिंतन करनेके योग्य बन गये हैं।

परंतु अब तेरी अभिव्यक्तिकी घड़ी आ गयी है।

और शीघ्र ही आनंदका स्तुतिगान सब दिशाओंसे फूट पड़ेगा। इस घड़ीकी गंभीरताके आगे मैं भक्तिपूर्वक शीश नवाती हूं।

१३ दिसंबर, १९१३

हे प्रभु! मुझे प्रकाश दे, ऐसी कृपा कर कि मैं कभी कोई भूल न करूं। जिस असीम मान, जिस परम भक्ति, जिस प्रबल और गंभीर प्रेमके साथ मैं तेरे समीप आ रही हूं वे दीप्ति फैलानेवाले, विश्वास उत्पन्न करानेवाले तथा संक्रामक हों और सबके हृदयमें जाग उठें।

हे भगवान्! हे शाश्वत स्वामी! तू ही मेरी ज्योति और तू ही मेरी

शांति है; मेरे पैरोंको पथ दिखा, मेरी आंखोंको खोल दे, मेरे हृदयको आलोकित कर दे तथा मुझे उन मार्गोंपर ले चल जो सीधे तेरी ओर ले जाते हैं।

भगवान्! हे भगवान्! ऐसी कृपा कर कि तेरी इच्छाके सिवा मेरी दूसरी कोई इच्छा न हो और मेरे सभी कार्य तेरे दिव्य विधानको ही अभिव्यक्त करनेवाले हों।

एक महान् ज्योति मुझे परिप्लावित कर रही है और अब मुझे तेरे सिवा और किसीका ज्ञान नहीं है।

शांति! शांति! समस्त पृथ्वीपर शांति!!

१६ दिसंबर, १९१२

पवित्र और निष्काम प्रेम, तेरा वह प्रेम जिसे हम अनुभव तथा व्यक्त कर सकते हैं, तेरी खोजमें लगे हृदयोंको खोलनेके लिये एकमात्र कुंजी है। जो बौद्धिक मार्गका अनुसरण करते हैं वे ऐसी धारणा बना सकते हैं जो अत्यंत उच्च तथा सत्य हो; वे समझ सकते हैं कि सत्य जीवन अथवा वह जीवन जो तेरे संग एक हो चुका है, क्या है। परंतु उन्हें उसका ज्ञान नहीं; उन्हें इस जीवनका आंतरिक अनुभव नाममात्रको भी नहीं होता और वे तेरे साथ हर प्रकारके संपर्कसे अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग तुझे बौद्धिक रूपमें जानते हैं और क्रियात्मक दृष्टिसे अपनी मानसिक रचनामें, जिसे वे सबसे अच्छा मानते हैं, बंद हैं, उनका परिवर्तन सबसे अधिक कठिन होता है। उनमें भागवत चेतना जागरित करनेमें बहुत कठिनाई होती है, जो किसी और सद्भाववाले व्यक्तिमें नहीं होती। केवल प्रेम ही यह चमत्कार साधित कर सकता है, क्योंकि प्रेम सब किवाड़ खोल देता है, सब दीवारें भेद डालता है, बस बाधाएं पार कर जाता है। तनिक-सा सच्चा प्रेम अच्छे-से-अच्छे उपदेशसे कहीं अधिक काम करता है।

हे प्रभु! मेरे अंदर इस प्रेमका पवित्र फूल प्रस्फुटित कर दे, जिससे जो भी हमारे समीप आयें उन सबको वह सुगंधित कर दे और वह सुगंध उन्हें पवित्र बना दे।

इसी प्रेममें है शांति और आनंद, सारी शक्ति और संपूर्ण उपलब्धिका स्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम सान्त्वनाप्रदाता है; यह विजेता है, सर्वोच्च शिक्षक है।

हे प्रभु, मेरे प्रिय स्वामी ! तू, जिसकी मैं मौन भावमें पूजा करती हूं तथा जिसके प्रति मैं पूर्णतया समर्पित हूं, और जो मेरे जीवनका शासक है, तू मेरे हृदयमें अपने पवित्र प्रेमकी ज्योति जगा दे, ताकि यह तीव्र ज्वाला बनकर जल उठे और सब अपूर्णताओंको भस्म कर दे; अहंकार-की मृत लकड़ीको तथा अज्ञानके काले कोयलेको सुखदायी ताप और चमकते प्रकाशमें परिवर्तित कर दे।

हे नाथ ! मैं ऐसी भक्तिके साथ, जो एक साथ प्रसन्नतापूर्ण तथा गंभीर है, तेरे अभिमुख होती हूं और याचना करती हूं कि :

तेरा प्रेम प्रकट हो,
तेरा राज्य स्थापित हो,
तेरी शक्ति संसारपर शासन करे।

२९ दिसंबर, १९१३

हे प्रभु ! वर्ष-समाप्तिका यह अवसर एक साथ ही, हमारे सभी बंधनों और आसक्तियोंकी, सभी भ्रांतियों और दुर्बलताओंकी — जिनके हमारे जीवनमें रहनेका अब कोई कारण नहीं — समाप्तिका भी अवसर बने। वास्तवमें हर क्षण ही हमें अपने भूतको धूलकी तरह झाड़कर अलग करते रहना चाहिये, जिससे कि वह उस निष्कलंक मार्गको मलिन न कर सके जो प्रति क्षण हमारे सामने प्रकट होता रहता है।

हमारी भूलें जिन्हें हम अपने अंदर पहचान तथा सुधार चुके हैं झूठी झलकमात्रसे अधिक कुछ न रहें — बिलकुल अशक्त और निष्फल। हम उस सब कुछको — जिसे अब अधिक हममें नहीं रहना चाहिये — हर प्रकारके अज्ञानको, अंधताको, अहंकारको दृढ़तापूर्वक पांवों तले दबाकर साहसके साथ ऊंची उड़ान लें — ऊपर खुले आकाशकी ओर, अधिक प्रकाश, पूर्णतर करुणा एवं अधिक निःस्वार्थ प्रेमकी ओर . . . तेरी ओर।

हे प्रभु ! हमारे जीवनके स्वामी ! मैं तुझे प्रणाम करती हूं और चाहती हूं कि मैं पृथ्वीपर तेरे राज्यकी घोषणा करूं।

१ जनवरी, १९१४

हे सब वरदानोंके परम दाता, जीवनको पवित्र, सुन्दर तथा शुभ बनाकर इसे सार्थक करनेवाले, हमारे भविष्यके स्वामी तथा हमारी सभी अभीप्साओंके लक्ष्य, तुझको इस नये वर्षका पहला क्षण समर्पित था।

तेरी कृपासे इस समर्पणद्वारा यह सारे-का-सारा वर्ष ही उज्ज्वल हो उठे; जो तेरी आशा करते हैं वे सच्चे रास्तेसे तुझे खोजें, जो तुझे खोजते हैं वे तुझे प्राप्त करें, जो कष्ट भोग रहे हैं और नहीं जानते कि उपाय क्या है, वे अनुभव करें कि उनकी अंधकारमय चेतनाके ऊपरी कठोर भागमें तेरी शक्ति थोड़ा-थोड़ा प्रवेश कर रही है।

तेरी कल्याणकारी ज्योतिके सामने मैं गंभीर भक्ति तथा असीम कृतज्ञताके साथ नतमस्तक होती हूं; धरतीकी ओरसे मैं तुझे धन्यवाद देती हूं कि तू अपने-आपको अभिव्यक्त कर रहा है; इसीकी ओरसे मैं तुझसे नम्र निवेदन करती हूं कि तू अपने-आपको प्रकाश और प्रेमकी अनवरत वृद्धिमें अधिकाधिक अभिव्यक्त कर।

तू हमारे विचारों, हृद्गत भावों और कर्मोंका सर्वोच्च स्वामी बन।

तू ही हमारा अस्तित्व है, एकमात्र सत्ता है।

तुझसे बाहर सब कुछ झूठ तथा धोखा है, सब कुछ दुःखमय अंधकार है।

तुझमें ही जीवन है, प्रकाश तथा आनंद है। तुझमें ही परम शांति है।

२ जनवरी, १९१४

मानवकी मूर्खतापूर्ण चंचलताके बीच भी यह अद्‌भुत नीरवता तुझे अभिव्यक्त कर रही है। यह अचल और स्थिर नीरवता हर वस्तुमें इस कदर सजीव है कि इसकी ओर कान देनेमात्रसे मनुष्य इसे सुन लेता है, सारे व्यर्थके शोर, निरर्थक विक्षोभ, शक्तिके निष्प्रयोजन प्रक्षेपणके विरोधमें इसे अनुभव कर लेता है। वर दे कि यह नीरवता हमारे अंदर प्रकाश तथा शक्तिके उत्सके रूपमें प्रस्फुटित हो उठे तथा इसका प्रभाव सबपर हितकर लहरोंके रूपमें प्रसारित हो जाय।

तू ही सारे जीवनका रस है, सारे कर्म-व्यवहारका कारण है, हमारे विचारोंका ध्येय है।

३ जनवरी, १९१४

समय-समयपर अंदर दृष्टि डालना तथा यह अनुभव करना कि हम कुछ नहीं हैं, और कुछ नहीं कर सकते सदा ही अच्छा होता है, किंतु तब हमें तुझपर भी अपनी दृष्टि डालनी चाहिए, यह जानते हुए कि तू सब कुछ है और सब कुछ कर सकता है।

तू हमारे जीवनका जीवन है और
हमारी सत्ताका प्रकाश है,
तू हमारी भवितव्यताका स्वामी है।

४ जनवरी, १९१४

भौतिक जीवन-संबंधी विचारोंकी ज्वार सदा ही छोटी-से-छोटी दुर्बलताकी ताकमें रहती है, और यदि हम एक क्षणके लिये भी अपनी चौकसीको ढीला छोड़ दें, यदि हम असावधान हो जायं, वह कितने भी कम समयके लिये क्यों न हो तो वह ज्वार आगेकी ओर दौड़ पड़ती है और हमें चारों ओरसे आक्रांत कर लेती है और कभी-कभी तो अपनी भारी बाढ़में हमारे प्रयत्नोंके फल भी डुबा देती है। तब, व्यक्ति एक प्रकारकी जड़ताको प्राप्त हो जाता है, भोजन और निद्रा-संबंधी उसकी भौतिक आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं, उसकी बुद्धि धूमिल हो जाती है, उसकी अंतर्दृष्टिपर पर्दा पड़ जाता है और इन ऊपरी क्रियाओंमें उसकी वास्तविक रुचि बहुत कम होते हुए भी, ये उसे प्रायः पूर्ण रूपसे व्यस्त कर लेती हैं। यह अवस्था बड़ी दुःखदायी और थका देनेवाली होती है, क्योंकि स्थूल वस्तुओंके बारेमें सोचनेसे अधिक थकाने-वाली और कोई चीज नहीं होती और श्रांत मन पिंजरेमें बंद उस पक्षीके समान व्याकुल होता है जो अपने पंखतक नहीं फैला सकता, पर फिर भी वह मुक्त उड़ान लेनेकी शक्ति चाहता है।

किंतु शायद इस अवस्थाकी भी एक उपयोगिता होती है जिसे मैं देख नहीं पाती ... कुछ भी हो, मैं संघर्षमें नहीं पड़ती; माताकी बाहुओंमें सुरक्षित बच्चेके समान, गुरुके चरणोंमें बैठे उत्साही शिष्यके समान मैं तुझपर भरोसा रखती हूं और अपने-आपको तेरे पथप्रदर्शनपर छोड़ती हूं, क्योंकि मैं तेरी विजयकी ओरसे आश्वस्त हूं।

५ जनवरी, १९१४

बहुत समयसे मैं इस कोरे पृष्ठके आगे बैठी रहती हूं पर मैं लिखनेका निश्चय नहीं कर पाती। मेरे अंदर सब कुछ अत्यंत तुच्छ, महत्त्वहीन, रसहीन, निरा साधारण है। मेरे मस्तिष्कमें कोई विचार नहीं, मेरे हृदयमें कोई भाव नहीं, सब वस्तुओंके प्रति मुझमें निरी उदासीनता है तथा घोर जड़ताका साम्राज्य है। यह अवस्था कैसे किसी प्रकार भी उपयोगी हो सकती है?

मैं संसारमें वस्तुतः शून्य हूं। अन्योंके लिये इस सबका कुछ महत्त्व नहीं। और वास्तवमें यदि तेरा कार्य सिद्ध हो जाता है, तेरी अभिव्यक्ति चरितार्थ हो जाती है और पृथ्वी अधिकाधिक तेरा सामंजस्यपूर्ण और उर्वर राज्य बनती जाती है, तो इस बातका कुछ महत्त्व नहीं कि मैं तेरे इस 'कार्य'को पूर्ण करती हूं या नहीं।

और, क्योंकि यह निश्चित है कि यह हो जायगा, मेरे लिये चिंता करनेका कोई कारण नहीं, चाहे उसमें मेरी प्रवृत्ति भी हो। अत्यधिक गहराइयोंसे लेकर बाह्यतम तलतक, यह सब कुछ, मेरी सारी सत्ता, केवल कुछ धूलिकणमात्र है, और यह स्वाभाविक ही है यह हवामें बिखर जानी चाहिये और इसका कोई चिह्न कहीं नहीं रहना चाहिये।

६ जनवरी, १९१४

तू ही मेरे जीवनका एकमात्र लक्ष्य, मेरी अभीप्साका केंद्र, मेरे चिंतनकी धुरी, मेरे समन्वयकी कुंजी है; और चूंकि तू सब वेदनों, सब भावों तथा सब विचारोंसे परे है, तू जीवंत पर अनिर्वचनीय अनुभव है, वह सद्वस्तु है जिसे मनुष्य अपने अस्तित्वकी गहराईमें जीवनद्वारा अधिगत करता है, परंतु जिसे हमारे दरिद्र शब्दोंमें नहीं उतारा जा सकता; और चूंकि मनुष्यकी बुद्धि तुझे सूत्रमें सीमाबद्ध करनेमें असमर्थ है इसलिये कई तेरे उस ज्ञानको जो कि हमें प्राप्त हो सकता है कुछ तिरस्कारके साथ "भाव" कहते हैं, परंतु वह ज्ञान निश्चय ही भावसे भी उतना ही दूर है जितना विचारसे। जबतक मनुष्य इस परम ज्ञानको प्राप्त नहीं कर लेता तबतक उसे अपने मानसिक तथा भावपक्षीय संगठनका सुनिश्चित आधार तथा स्थायी केंद्र नहीं मिलता, तबतक सब

प्रकारकी अन्य बौद्धिक रचनाएं भी निराधार, कृत्रिम तथा थोथी ही रहती हैं।

जहांतक हम तुझे अनुभव कर सकते हैं, तू शाश्वत नीरवता तथा पूर्ण शांति है।

तू ही वह सब पूर्णता है जिसे हमें प्राप्त करना है, वे सब चमत्कार है जिन्हें हमें उपलब्ध करना है, वह सब ओज-तेज है जिसे हमें अभिव्यक्त करना है।

हमारी भाषा बच्चोंकी तुतलाहटमात्र होती है, जब कि हम तेरे विषयमें कुछ कहनेका साहस करते हैं।

मौनमें ही सबसे अधिक आदर है।

७ जनवरी, १९१४

हे प्रभु! सबको शांति और प्रकाश दे, उनकी अंधी आखोंको, उनकी तमसाच्छन्न बुद्धिको खोल दे, उनके व्यर्थके दुःखों तथा तुच्छ चिंताओंको शांत कर दे। उनका उनकी अपनी ओरसे ध्यान हटाकर तू उन्हें अपने कार्यके प्रति निर्विकल्प और अशेष आत्मदानका आनंद प्रदान कर। अपना सौन्दर्य प्रत्येक वस्तुमें प्रस्फुटित होने दे, अपना प्रेम सब हृदयोंमें जाग्रत् कर जिससे तेरा नित्य-प्रगतिशील विधान पृथ्वीपर चरितार्थ हो और तेरी समस्वरता फैलती जाय जबतक कि सब कुछ पूर्ण पवित्रता तथा शांति-में स्वयं तू ही न बन जाय।

ओह! सब आंसू सूख जायं, सब दुःख दूर हो जायं, सब चिंताएं हट जायं और अचल-अटल प्रसन्नता सब हृदयोंमें निवास करने लगे, दृढ़ विश्वास सब मस्तिष्कोंमें स्थिर हो जाय, तेरा जीवन एक पुनर्जीवन देनेवाली धाराकी तरह सबमें प्रकाशित हो जाय और इसी भावके चिंतनमें सब लोग प्रत्येक विजयकी शक्तिके आहरणके लिये तेरी ओर अभिमुख हो जायं।

८ जनवरी, १९१४

अति सरल तथा श्रमरहित मार्गोंसे हमें दूर रहना चाहिये, उन मार्गोंसे जो हममें यह भ्रम पैदा करते हैं कि हम पहुंच गये हैं, हमें उस प्रमादसे दूर रहना चाहिये, जो सब स्खलनोंका खुला द्वार है, हमें उस तुष्टिकारी आत्म-श्लाघासे दूर रहना चाहिये जो हमें सब प्रकारके गहरे गढ़ोंमें ले जाती है। हमें जानना चाहिये कि, चाहे हमने कितना भी प्रयत्न किया हो, संघर्ष किया हो, हमारी कितनी भी सफलताएं हों, जो मार्ग हम तय कर चुके हैं वह उसकी तुलनामें जिसे अभी हमें तय करना है कुछ नहीं है और नित्यताके सम्मुख धूलके अत्यंत तुच्छ कण हों अथवा नक्षत्र, सब बराबर हैं।

परंतु तू सब बाधाओंका विजेता है, तू वह प्रकाश है जो सब अज्ञानको दूर करता है, वह प्रेम है जो समस्त अहंकारपर विजय पाता है। तेरे सामने कोई भी त्रुटि टिक नहीं सकती।

९ जनवरी, १९१४

प्रभो, अगम सत्य, तू हमारी उपलब्धिसे, वह चाहे प्रभावकारी ही हो, सदा छूटकर आगे निकल जाता है; हम तेरे विषयमें चाहे कितना भी जान लें, तेरे शाश्वत रहस्यका चाहे कितना भी अंश उपलब्ध कर लें, तू सदा अज्ञात ही रहेगा। यह होते हुए भी हम पूर्ण एवं अनवरत यत्नके साथ, उन अनेकों मार्गोंको एक करते हुए जो तेरी ओर जाते हैं, एक उमड़ती हुई अदम्य बाढ़के समान, आगे बढ़ना चाहते हैं; समस्त बाधाओंको पार करते हुए, समस्त पर्दोंको उठाते हुए, समस्त घटाओंको छिन्न-भिन्न करते हुए, समस्त अंधकारको भेदकर हम तेरी ओर, सदा तेरी ही ओर, एक ऐसे शक्तिशाली और अदम्य वेगसे आगे बढ़ें कि समस्त जनसमूह हमारे पीछे खिंचा चला आये और पृथ्वी, तेरी नवीन और सनातन उपस्थितिके प्रति सचेतन होकर अंतमें यह समझ ले कि उसका सच्चा लक्ष्य तू है और वह तेरी सर्वोच्च उपलब्धिकी समस्वरता और शांतिमें निवास करने लगे।

हमें सदा अधिकाधिक सिखा,
हमें अधिकाधिक आलोकित कर,

हमारा अज्ञान दूर कर,
हमारे मनको प्रकाशित कर।
हमारे हृदयको रूपांतरित कर,
और वह प्रेम प्रदान कर जो कभी मंद नहीं होता, तथा अपने मधुर विधानको समस्त प्राणियोंमें प्रस्फुटित कर।
हम तेरे हैं, सदाके लिये तेरे।

१० जनवरी, १९१४

मेरी अभीप्सा तेरी ओर सदा उसी सरल, तुच्छ तथा बालोचित रूपमें उठती है, किंतु मेरी पुकार सदा ही अधिकाधिक तीव्र होती है; मेरे बेढंगे शब्दोंके पीछे मेरे एकाग्र संकल्पका उत्साह सदा ही विद्यमान रहता है। हे प्रभु, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं; चाहे मेरे शब्द सीधे-सादे और बहुत ही कम बौद्धिक हैं, फिर भी, मैं इन शब्दोंद्वारा तुझसे अधिक प्रकाशके लिये, अधिक पवित्रताके लिये, अधिक सद्हृदयता और प्रेमके लिये प्रार्थना करती हूं और करती हूं उस पूरे संघातके लिये जो इस सत्ताको — जिसे मैं अपनी सत्ता कहती हूं — निर्मित करता है तथा उस संघातके लिये भी जो विश्वको निर्मित करता है; मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं, यह जानते हुए भी कि तुझसे प्रार्थना करना बिलकुल निष्प्रयोजन है, क्योंकि केवल हम ही अपने अज्ञान और दुर्भावनाके वश तेरी गौरवमयी और संपूर्ण अभिव्यक्तिमें बाधा डाल सकते हैं। किंतु मेरे अंदरकी कोई बालोचित वस्तु इस प्रार्थनाकी मनोवृत्तिमें आश्रय पाती है और मैं तुझसे याचना करती हूं कि तेरे राज्यकी शांति पृथ्वीपर फैल जाय।

ओ अगम्य शिखर, जिसके ऊपर हम सदा ही चढ़नेका यत्न करते हैं, पर कभी पहुंच नहीं पाते; ओ हमारी सत्ताके अद्वितीय सत्य, जिसे, हम सोचते हैं, हमने पा लिया है और उसी क्षण अनुभव करते हैं कि तू पकड़से निकल गया है; ओ अद्भुत अवस्था, जिसे, हम सोचते हैं, हमने प्राप्त कर लिया है, पर जो हमें और दूर, सदा ही और दूर, ऐसी गहराइयों और अपरिमित गहनताओंमें ले जाती है जो सदा अज्ञात रहती हैं। कोई नहीं कह सकता कि मैंने तुझे जान लिया है, और तब भी सब तुझे अपने अंदर धारण किये रहते हैं और अपनी आत्माकी नीरवतामें तेरी वाणीकी गूंज सुन सकते हैं; किंतु स्वयं यह नीरवता भी विकसनशील

है और जो एकत्व हमने तेरे साथ प्राप्त कर लिया है वह कितना भी पूर्ण क्यों न हो, जबतक शरीरधारी होनेके कारण हम सापेक्ष जगत्से संबद्ध हैं तबतक तेरे साथ यह संबंध सदा ही अधिकाधिक पूर्ण बनाया जा सकता है।

किंतु तेरे विषयमें उच्चारित सभी शब्द वृथा प्रलाप हैं। ऐसी कृपा कर कि मैं तेरी विश्वस्त सेविका बनूं।

११ जनवरी, १९१४

हर क्षण ही, सारा अपूर्वदृष्ट, अप्रत्याशित तथा अज्ञात हमारे सामने उपस्थित रहता है, हर क्षण ही सारा जगत् समग्र रूपमें तथा हर भागमें पुनः रचित होता है। और यदि हमें सच्चा जीवंत विश्वास होता, तेरी सर्वशक्तिमत्ता तथा तेरी एकमेवाद्वितीय सत्तामें पूर्ण विश्वास होता तो तेरी अभिव्यक्ति हर क्षण ही ऐसी स्पष्ट लगती कि सारा जगत् उससे रूपांतरित हो जाता। परंतु हम अपने चारों ओरकी वस्तुओंके तथा पहलेकी घटी घटनाओंके ऐसे दास हैं, हम व्यक्त वस्तुजालसे ऐसे निर्धारित होते हैं और हमारी श्रद्धा इतनी कमजोर है कि हम अभी रूपांतरके महान् चमत्कारके लिये माध्यम बन सकनेके अयोग्य हैं। ... किंतु मेरे प्रभु, मैं जानती हूं कि एक दिन यह हो सकेगा। मैं जानती हूं कि एक दिन आयेगा जब तू उन सबको जो हमारे पास आयेंगे रूपांतरित कर देगा; तू उन्हें ऐसा मूलतः रूपांतरित कर देगा कि वे, पहलेके बंधनोंसे पूर्णतः मुक्त होकर, तुझमें सर्वथा नया जीवन बिताना प्रारंभ कर देंगे, ऐसा जीवन जो केवल तुझसे गठित होगा, जिसका तू ही पूर्ण स्वामी होगा। और तब सब दुःख आत्मप्रसादमें, सब चिंताएं शांतिमें, सब शंकाएं निश्चयतामें, सब कुरूपताएं समस्वरताओंमें, सब अहंमन्यताएं आत्म-निवेदनोंमें, सब अंधताएं प्रकाशमें और सब पीड़ाएं अचल प्रसन्नतामें परिवर्तित हो जायेंगी।

परंतु क्या तू यह सुन्दर चमत्कार अभी ही नहीं सिद्ध कर रहा है? मैं तो इसे अपने चारों ओर, सर्वत्र खिलते देख रही हूं।

ओह! हे प्रेम और सौंदर्यके दिव्य विधान! परम मोक्षदाता! तेरी शक्तिके लिये कोई बाधा नहीं। केवल हमारी अंधता ही तेरी सतत विजय-के सुखद दृश्यसे हमें वंचित रखती है।

मेरा हृदय कृतज्ञताका गीत गाता है और मेरा विचार आनंदसे ज्योतिर्मय हो रहा है।

तेरा परम अद्भुत प्रेम जगत्का पूर्ण स्वामी है।

१२ जनवरी, १९१४

कोई शिक्षा तभी लाभदायी हो सकती है, जब कि वह पूर्णतया सच्चाईसे दी जाय, अर्थात् जब कि वह देनेके समय जीवनका अंग हो। बार-बार दुहराये गये शब्द, बार-बार व्यक्त किये गये विचार सच्चे नहीं हो सकते . . .।

१३ जनवरी, १९१४

हे प्रभु, तू मेरे जीवनके ऊपरसे प्रेमकी एक विशाल लहरकी भांति गुजर गया, और जब मैं उसमें डूबी हुई थी, मैंने संपूर्णतया और तीव्र रूपमें यह जाना कि मैंने न जाने कब, किसी निश्चित समयमें नहीं, पर निःसंदेह सदा ही — एक सजीव आहुतिके रूपमें अपने विचार, अपना हृदय तथा अपनी देह समर्पित कर दी।

और इस विशाल प्रेममें जिसने मुझे चारों ओरसे आवेष्टित किया हुआ था, इस त्यागकी चेतनामें, इस विशाल विश्वसे भी अधिक विशाल शांति-को मैंने अनुभव किया और ऐसे 'मधुर' भावको अनुभव किया जो इतना तीव्र तथा करुणापूर्ण था कि मेरी आंखोंसे धीमे-धीमे अश्रु बहने लगे। वह अनुभव समान रूपसे सुख और दुःखसे परे था; वह अनिर्वचनीय शांति थी।

ओ सर्वोच्च प्रेम, हमारे जीवनके केंद्र, चमत्कारोंके चमत्कार; मैंने तुझे अंतमें फिर पा लिया है, और फिरसे तुझमें निवास करने लगी हूं, किंतु पहले अवसरोंसे कितने अधिक शक्तिशाली रूपमें, कितने अधिक चेतन रूपमें! कितनी अधिक अच्छी तरह मैं तुझे अब जानती हूं, समझती हूं! प्रत्येक बार जब मैं तुझे पुनः पा लेती हूं, मैं तेरे साथ अधिक समग्र, अधिक पूर्ण और अधिक निश्चित रूपमें अपना संपर्क स्थापित कर लेती हूं।

ओ अनिर्वचनीय सौंदर्यकी उपस्थिति, सर्वोच्च उद्धारके विचार, मुक्तिकी उच्चतम शक्ति, किस हर्षके साथ मेरी समस्त सत्ता यह अनुभव करती है

कि तू ही इनमें निवास कर रहा है, तू, जो इसके जीवन तथा सबके जीवनका मूलतत्त्व है, समस्त विचार, समस्त संकल्प, समस्त चेतनाका अद्‌भुत निर्माता है। भ्रांतिके इस संसारको, इस अंधकारमय दुःस्वप्नको तूने अपनी दिव्य वास्तविकता प्रदान की है, स्थूल पदार्थके अणु-अणुमें तेरा परम रूप विद्यमान है। तू ही सन्मय है, तू ही प्राणमय है, तू ही ज्योतिर्मय है और तू ही राज्य कर रहा है।

१९ जनवरी, १९१४

हे प्रभु! प्रेमके दिव्य स्वामी! तू सनातन विजेता है। जो अपने-आपको तेरे साथ पूर्ण समस्वरतामें ले आते हैं, जो केवल तेरे लिये तथा तुझे ही आधार मानकर जीते हैं, केवल वे ही प्रत्येक विजय प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि तुझमें ही है परम शक्ति — पूर्ण निष्कामता, संपूर्ण पार-दृष्टि और सर्वोच्च हितकामनाकी शक्ति।

तुझमें तथा तुझद्वारा सब कुछ रूपांतरित हो जाता है तथा अपने महिमा-मय रूपको प्राप्त होता है; तुझमें ही सभी रहस्यों तथा सभी शक्तियोंकी कुंजी है। परंतु तुझे कोई प्राप्त केवल तभी करता है जब वह तुझमें ही निवास करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, केवल तेरी ही सेवा करना चाहता है, तेरे ही दिव्य कर्मको अधिक शीघ्रतासे तथा अधिक लोगों-के कल्याणके लिये सफल करना चाहता है।

प्रभो, केवल तू ही सत्य है, बाकी सब भ्रम है, क्योंकि जब मनुष्य तेरे अंदर निवास करता है, तभी वह सब वस्तुओंको वस्तुतः देखता और समझता है, तेरे पूर्ण ज्ञानसे कुछ भी बाहर नहीं, किंतु वहां सब कुछका रूप और ही होता है; कारण, सार रूपमें सब कुछ तू ही है, सब कुछ तेरे कार्यका, तेरे महान् हस्तक्षेपका फल जो ठहरा। घोर-से-घोर अंध-कारमें भी तूने तारा चमका दिया है!

ऐसी कृपा कर कि हमारी भक्ति अधिकाधिक बढ़ती जाय।

हमारा आत्मनिवेदन अधिकाधिक पूर्ण होता जाय।

और तू, जो पहलेसे ही यथार्थ रूपमें स्वामी है, कार्यरूपमें भी जीवनका स्वामी बन जाय।

२४ जनवरी, १९१४

हे प्रभु, हमारी सत्ताके एकमात्र उपादान तत्त्व, प्रेमके अधीश्वर, जीवन-के उद्धारक, हर क्षण तथा हर वस्तुमें मैं केवल तुझे ही अनुभव करूं। जब मैं ऐकांतिक रूपमें तेरे ही साथ निवास नहीं करती, तब मैं मार्मिक वेदना महसूस करती हूं, मैं धीरे-धीरे बुझने लगती हूं, क्योंकि तू ही मेरे अस्तित्वका एकमात्र कारण है, एकमात्र उद्देश्य है, एकमात्र आधार है। मैं एक ऐसे भीरु पक्षीके समान हूं जिसे अपने पंखोंपर अभी भरोसा नहीं और जो उड़नेमें संकोच करता है। तू मुझे बल दे कि मैं तेरे साथ निश्चयात्मक तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये उड़ान भर सकूं।

२९ जनवरी, १९१४

हे प्रेमके दिव्य स्वामी, सब वस्तुओंमें तेरी ही उपस्थितिके कारण सब मनुष्य, यहांतक कि क्रूरतम भी, दया प्रदर्शित करते हैं तथा हीनतम मनुष्य भी, मानों न चाहते हुए भी उच्चता और न्यायका मान करते हैं। तू ही, सब सामाजिक परिपाटियों और पक्षपातोंके परेसे, एक विशेष, दिव्य और पवित्र प्रकाशद्वारा "हम जो कुछ हैं और जो कुछ करते हैं", उसे प्रकाशित करता है तथा "हम जो बने हैं और जो बन सकते हैं" उसमें अंतर दिखला देता है।

तू पाप, अंधता तथा दुःसंकल्पकी पराकाष्ठाकी विरोधी सीमा है जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता; तू हर एक हृदयमें संभव तथा भावी पूर्णताओंकी सजीव आशा है।

तुझे मेरी सातिशय भक्ति समर्पित हो।

तू हमारे मानसिक बोधनोंको प्राप्य वह द्वार है जो अज्ञात और कल्पना-तीत वैभवोंकी ओर ले जाता है, ऐसे वैभवोंकी ओर जो उत्तरोत्तर हमारे प्रति प्रकट किये जायेंगे।

३० जनवरी, १९१४

हे प्रभु, सब कुछ जो मुझमें सचेतन है बिना संकोचके तेरा हो चुका है और जो अवचेतन है — अभीतक अंधकारमय आधारभूमि है — उसे मैं थोड़ा-थोड़ा करके और उत्तरोत्तर अधिक अच्छी तरह जीतनेकी कोशिश करूंगी।

हे प्रेमके दिव्य स्वामी, शाश्वत गुरु, तू हमारे जीवनोंका पथप्रदर्शन करता है। केवल तेरे अंदर तथा केवल तेरे लिये ही हम जीना चाहते हैं, तू हमारी चेतनाको प्रकाशमय बना, हमारे पगोंको ठीक चला, और प्रदान कर कि हम अपने शक्य कर्मको अधिकतम कर सकें और अपनी शक्तियोंको केवल तेरी सेवामें प्रयुक्त करें।

३१ जनवरी, १९१४

हे प्रभु, हम चाहते हैं कि प्रत्येक दिन प्रातःकाल हमारा चिंतन प्रगाढ़तासे तेरी ओर उठे और तुझसे पूछे कि हम तुझे अभिव्यक्त करने तथा तेरी सेवा करनेके लिये कौन-सा सर्वोत्तम कार्य कर सकते हैं। तथा हम चाहते हैं कि अपने अनगिनत निर्णयोंके बीच हर क्षण ही — जो निर्णय प्रत्यक्षतः महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी सदैव बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि उनके अनु-सार हम एक अथवा दूसरे विधि-विधानसे आबद्ध होते हैं — हमारा मनो-भाव सदा ऐसा रहे कि तेरा दिव्य संकल्प ही हमारे निर्णयोंको निर्धारित करे और इस प्रकार तू ही हमारे सारे जीवनको दिशा प्रदान करे। निर्णय करते समय हमारी चेतना जैसी होती है हम उसीके समानधर्मी कर्म-चक्रसे तब आबद्ध हो जाते हैं। अप्रत्याशित और अस्वस्तिकर तथा जीवनकी सामान्य दिशाके विरोधी और बाह्य रूप जो अत्यंत दुःखद होते हैं और जिन्हें पीछे दूर करना कठिन हो जाता है उसीके परिणाम होते हैं। इस-लिये, प्रभु, प्रेमके दिव्य स्वामी, हम चाहते हैं कि हम तुझसे, केवल तुझसे ही सचेतन रहें, हर बार जब कि हम कुछ निर्णय करें, हर बार जब कि हम कुछ चुनाव करें, तेरे सर्वोच्च विधानसे ही एकीभूत रहें, जिससे कि तेरा संकल्प ही हमें निर्धारित करे और हमारा जीवन सक्रिय तथा सर्वांगीण भावमें तुझे समर्पित हो जाय।

तेरे प्रकाशमें ही हम देखें, तेरे ज्ञानमें ही जानें, तेरे संकल्पमें ही उप-लब्ध करें।

१ फरवरी, १९१४

मैं तेरी ओर मुड़ती हूं। तू सर्वत्र विद्यमान है, सबके अंदर और सबके बाहर है, तू सबका मूलतत्त्व है और सबसे अलग, समस्त शक्तियोंका घनीभूत केंद्र है, चेतन व्यक्तित्वोंका सिरजनहार है। मैं तेरी ओर मुड़ती हूं और तुझे, जगत्के उद्धारकको नमस्कार करती हूं और तेरे दिव्य प्रेमके साथ एक होकर मैं पृथ्वी और उसके प्राणियोंपर दृष्टिपात करती हूं, इस स्थूल पुंजके विषयमें सोचती हूं जो नित्य नष्ट होनेवाले और पुनः बननेवाले रूप धारण करता है, उन समूहोंको देखती हूं जो बननेके साथ ही नष्ट हो जाते हैं, उन प्राणियोंके विषयमें सोचती हूं जो अपने-आपको चेतन और स्थायी व्यक्तित्व समझते हैं पर जो एक निःश्वासके समान पलभरमें नष्ट हो जानेवाले हैं, जो अपनी विभिन्नतामें भी परस्पर समान और प्रायः एकरूप होते हैं, जो उन्हीं इच्छाओंको, उन्हीं प्रवृत्तियोंको, उसी तृष्णाको, उन्हीं अज्ञानमयी भ्रांतियोंको दुहराते रहते हैं।

किंतु, समय-समयपर तेरा उत्कृष्ट प्रकाश किसी प्राणीमें जगमगा उठता है और उसके द्वारा संसारभरमें विकीर्ण हो जाता है, और तब थोड़ी-सी बुद्धिमत्ता, थोड़ा-सा ज्ञान, थोड़ी-सी निःस्वार्थ निष्ठा, वीरता और करुणा हृदयोंमें प्रवेश करती है, मस्तिष्कोंको रूपांतरित कर देती है और जीवनके उस दुःखप्रद और कठोर चक्रसे जिसके अंध अज्ञानने उन्हें अधीन कर रखा है — थोड़े तत्त्वोंका उद्धार कर देती है।

परंतु नागरिक जीवन और तथाकथित सभ्यताने मनुष्यको जिस भयंकर मतिभ्रममें डुबा रखा है उसमेंसे निकालनेके लिये अतीतके सारे ऐश्वर्यसे अधिक उत्तुंग ऐश्वर्य, आश्चर्यजनक प्रताप और ज्योतिकी आवश्यकता होगी। इनकी इन सब इच्छाओंको उस कटु संघर्षसे हटानेके लिये, जो ये स्वार्थमयी, तुच्छ और मूर्खतापूर्ण संतुष्टिके लिये कर रही हैं, इस भंवरसे इन्हें छुड़ानेके लिये जो अपनी कपटपूर्ण चमक-दमकके पीछे मृत्युको छिपाये रहता है और तेरी सामंजस्यपूर्ण विजयकी ओर इन्हें अभिमुख करनेके लिये कितनी दुर्दांत, साथ ही कितनी दिव्य रूपसे मधुर शक्तिकी आवश्यकता पड़ेगी !

हे प्रभु, सनातन गुरु, हमें प्रकाश दिखा, हमारा पथप्रदर्शन कर; अपने विधानकी प्राप्तिका, अपने कार्यकी पूर्णताका हमें मार्ग दिखा।

मैं मौन भावमें तेरी पूजा करती हूं और पावन एकाग्रतामें तेरी बात सुनती हूं।

२ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, मैं एक ऐसा जीवंत प्रेम बनना चाहती हूं जो सब एकाकीपनको भर दे, सारे कष्टको शांत कर दे।

हे प्रभु, मैं तेरे आगे पुकार करती हूं, मुझे एक ऐसी धधकती ज्वाला बना दे जो सब कष्टोंको भस्मीभूत कर दे और उन्हें एक ऐसे आनंदमय प्रकाशमें बदल दे जो सब हृदयोंको प्रकाशित कर सके।

मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मुझे पवित्र प्रेम और असीम करुणाकी ज्वालामें रूपांतरित कर दे।

५ फरवरी, १९१४

वही एक अभीप्सा करनेके अतिरिक्त मैं और क्या कहूं: दिव्य प्रेमके नियम तथा तेरे विषयके हमारे उच्चतम विचारकी शुद्धतम अभिव्यक्ति जगत्में अधिकाधिक चरितार्थ हो और वह सब अंधता-अहंताको अभिभूत कर दे, तथा हम अधिकाधिक पूर्णतासे इस प्रेम तथा ज्योतिकी शक्तिके निष्ठापूर्ण सेवक बनें, इसीमें निवास करें, इसी द्वारा जीवित रहें और केवल यही हममें निवास करे तथा कर्म करे।

हे प्रभु, हमारे जीवनका तू सर्वोच्च स्वामी बन, और वह सब अंधकार दूर कर दे जो अभी भी तुझे देखनेमें, तेरे साथ सतत संपर्क रखनेमें बाधा उपस्थित कर रहा है।

समस्त अज्ञानसे मुझे मुक्त कर, अपने-आपसे हमें मुक्त कर जिससे कि हम तेरी गौरवमयी अभिव्यक्तिके द्वार विस्तृत रूपसे खोल सकें।

७ फरवरी, १९१४

जो व्यक्ति सर्वांगरूपसे तेरे साथ एकीभूत है और फलतः यह सदा जानता है कि किसी भी परिस्थितिमें तुझे कौन-सा कर्म सर्वोत्तम रीतिसे अभिव्यक्त करता है, उसके लिये फिर किसी बाह्य नियमकी आवश्यकता नहीं रहती। जीवनके प्रतिपादित सिद्धांत अंतमें उनके अज्ञानको, जो अभी

तुझे नहीं जानते, यथासंभव कम करनेका एक सहारामात्र हैं तथा उनके, जिनका संबंध अभी अस्थायी है, अंधता और अस्पष्टताके क्षणोंके यथासंभव प्रतिकारका साधनमात्र हैं।

अपने लिये आप नियम बनाना और उन्हें यथासंभव व्यापक रूप देना अर्थात् नमनीय बनाना अच्छा है। किंतु इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि ये केवल प्रकाश हैं और इनका प्रयोग तभी किया जाना चाहिये जब कि तेरे साथ संपर्ककी पूर्ण और स्वाभाविक ज्योति उपस्थित न हो। साथ ही इन नियमोंका सदा पुनरवलोकन आवश्यक है, क्योंकि ये केवल वर्तमान ज्ञानकी अभिव्यक्ति ही हो सकते हैं और ज्ञानकी प्रत्येक उन्नति एवं विकाससे इन्हें लाभ पहुंचाना चाहिये।

इसलिये जब मैं तन्मय होकर इस बातको चिंतन कर रही थी कि जो लोग भी हमारे पास आते हैं उनके प्रति हमारी क्या वृत्ति होनी चाहिये, जिससे कि यही नहीं कि हम उन्हें कोई हानि न पहुंचायें बल्कि विशेषकर यह कि उन्हें यथासंभव अधिकतम लाभ पहुंचायें — जिसका अर्थ है उन्हें अपने अंदर सर्वोत्तम खोज, तेरी खोज करनेमें अधिक-से-अधिक सहायता पहुंचायें — मुझे अनुभव हुआ है कि कोई भी नियम इतना विशाल, इतना नमनीय नहीं है कि वह तेरे विधानके लिये उपयुक्त हो। एकमात्र सच्चा उपाय यह है कि व्यक्ति तेरे साथ सतत अंतर्मिलन बनाये रखे जिससे उसके समाधान परिस्थितियोंकी अनंत विभिन्नताके लिये उपयुक्त रहें।

८ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, प्रेमके मधुर स्वामी, तू हमें अंधकारमेंसे निकालता है जिससे कि हम 'चैतन्य' के प्रति जाग उठें, कष्टोंसे हमारा उद्धार करता है जिससे कि हम तेरी सनातन शांतिके साथ संबंध स्थापित कर लें, प्रतिदिन प्रातःकाल मेरी अभीप्सा उत्कंठित भावमें तेरी ओर उठती है और मैं प्रार्थना करती हूं कि मेरी सत्ता तेरे ज्ञानके प्रति पूर्ण रूपसे जागरित हो जाय, केवल तेरे सहारे, तेरे अंदर और तेरे लिये ही वह जिये। मैं तेरे साथ अधिकाधिक पूर्ण रूपसे एक होनेके लिये प्रार्थना करती हूं, मैं शब्द और कर्ममें तेरी अभिव्यक्तिके अतिरिक्त और कुछ न होऊं। मैं प्रार्थना करती हूं कि वे सब जो हमारे पास आते हैं, जो हमसे संबंधित हैं, तेरी दिव्य उपस्थितिके पूर्ण ज्ञानके प्रति, तेरे सर्वोच्च विधानके प्रति जाग उठें और अपने-आपको

उसके द्वारा निश्चित रूपमें रूपांतरित होने दें। मैं प्रार्थना करती हूं कि पृथ्वीके सब मनुष्य, अपने कठिन दुःखोंके होते हुए भी, यहां तेरे प्रकाश और तेरे प्रेमके आश्वासन और तेरी शांतिकी अद्‌भुत सांत्वनाको प्रकट होते हुए अनुभव करें। मैं प्रार्थना करती हूं कि समस्त स्थूल पदार्थ तेरी सर्वोच्च शक्तियोंसे ओतप्रोत होकर तेरे आगे अंध अज्ञानकी बाधाको कम-से-कम उपस्थित करें और समस्त अज्ञानपर विजय प्राप्त करके तू निश्चित और पूर्ण रूपसे, संघर्ष और पीड़ाके इस संसारको सामंजस्य और शांतिके संसारमें परिणत कर दे... जिससे कि तेरा विधान चरितार्थ हो।

९ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, तुझे चाहे जो नाम दे लें, एक चरम सत्यके पिपासु मानव-जातिके श्रेष्ठ व्यक्ति बड़े उत्साह और आग्रहसे तेरी ही खोज करते हैं। जो तुझसे बहुत दूर चले गये प्रतीत होते हैं, जो एकमात्र अपनेमें ही व्यस्त हैं, वे भी क्या संवेदन और संतुष्टिका चरम-परम रूप ही नहीं खोज रहे हैं! यह खोज निरर्थक होते हुए भी एक दिन तेरी ओर ले जा सकती है। तू सभी वस्तुओंके मर्मस्थलमें, उनके हृदयोंमें स्थित है, यहांतक कि घोर-से-घोर अहंतत्त्वके लिये भी असंभव है कि तेरे द्वारा अभीप्सामें परिवर्तित न हो जाय... केवल एक ही चीजसे डरना चाहिये तथा बचना चाहिये, वह है अचेतनाका अंध गुरु भार और अज्ञानकी जड़ता। यह अवस्था तेरी ओर ले जानेवाली असीम सीढ़ीका सबसे निचला डंडा है। और तेरा सब प्रयत्न ही स्थूल पदार्थको उस आदि अज्ञानमेंसे निकालना है जिससे कि वह चेतनामें जन्म ले सके। आवेग स्वयं निश्चेतनासे अच्छा है। इसलिये हमें निश्चेतनाके इस विश्वव्यापी गहरे तलको जीतनेके लिये सतत रूपसे आगे बढ़ते रहना चाहिये, अपने देह-यंत्रके द्वारा इसे धीरे-धीरे प्रकाशमयी चेतनामें रूपांतरित करना चाहिये।

हे प्रभु, प्रेमके मधुर स्वामी, मैं तुझे कितने सजीव तथा सचेतन रूपमें सबके अंदर देखती हूं। मैं असीम भक्तिभावसे तेरी पूजा करती हूं।

१० फरवरी, १९१४

हृदयमें शांति और मनमें प्रकाशसे भरपूर, हे प्रभु, हम तुझे अपने अंदर ऐसा सजीव महसूस करते हैं कि हम सब घटनाओंके प्रति प्रसन्नता तथा समता अनुभव करते हैं। हम जानते हैं कि तेरा पथ सर्वत्र है क्योंकि हम इसे अपनी सत्ताके अंदर धारण किये हुए हैं। हम यह भी जानते हैं कि सब परिस्थितियोंमें हम तेरे संदेशके वाहक और तेरे कार्यके सेवक बन सकते हैं।

एक स्थिर और पवित्र भक्तिभावके साथ हम तेरे आगे नतमस्तक होते हैं और तुझे अपनी सत्ताके एकमात्र सत्यके रूपमें अंगीकार करते हैं।

११ फरवरी, १९१४

ज्यों ही हम नित्य-नैमित्तिक बोधसे ऊपर उठ जाते हैं, ज्यों ही हम अपनी चेतनाको तेरी परा चेतनाके साथ एक कर देते हैं, इस प्रकार, ज्यों ही हम उस सर्वज्ञतामें प्रवेश करते हैं जिसकी मैं 'असीम ज्ञान' के अतिरिक्त और कोई परिभाषा नहीं कर सकती, त्यों ही हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं, तथा हमें कौन-से निश्चय करने चाहिये इस संबंध-की सारी समस्याएं सरल, यहांतक कि बालोचित-सी प्रतीत होने लगती हैं।

शाश्वत कर्मकी दृष्टिसे केवल एक चीज महत्त्वपूर्ण है, तेरे विषयमें सचेतन होना, तेरे साथ एकाकार होना और इस चेतन ऐक्य भावको निरंतर बनाये रखना। किंतु यह जाननेके लिये कि हमारी भौतिक देहका, जो पृथ्वीपर तेरी अभिव्यक्तिका एक साधन है, अच्छे-से-अच्छा क्या उपयोग होना चाहिये, हमारे लिये यही काफी है कि — क्योंकि केवल तू ही हमारे अंदर सचेतन वस्तु है — हम अपनी दृष्टिको इस शरीरपर डालें और यह निश्चयात्मक रूपमें जान लें कि वह कौन-सी वस्तु है जो यह सबसे अच्छी तरह कर सकता है तथा वह कौन-सा कर्म है जिसमें इसकी समस्त शक्तियां पूर्णतया उपयोगमें आ सकती हैं।

और इस कर्मको, इस उपयोगको जो सर्वथा सापेक्ष है, बिना अधिक महत्त्व दिये, हम बिना किसी कठिनाईके, बिना किसी आंतरिक विवादके ऐसे निश्चय भी कर सकते हैं जो बाह्य चेतनाको अत्यधिक साहसी, अत्य-धिक भयावह प्रतीत हों।

उसके लिये वह सब कितना सहज है जो तेरी शाश्वतताकी ऊंचाईसे सब वस्तुओंको देखता है।

प्रभो! मैं तुझे प्रफुल्ल और विश्वासपूर्ण भक्तिके साथ नमस्कार करती हूं। तेरे दिव्य प्रेमकी शांति सब प्राणियोंपर छायी रहे!

१२ फरवरी, १९१४

जब कोई तेरी सर्वोच्च चेतनासे सचेतन होकर समस्त पार्थिव परिस्थितियोंके विषयमें विचार करता है तो उसे उनकी सारी सापेक्षता समझमें आ जाती है और वह कह उठता है: "यह करना या वह करना, इसका सच पूछो तो कोई अधिक महत्त्व नहीं है; फिर भी कोई कर्म किसी योग्यता या स्वभाव-विशेषका अच्छा उपयोग होता है। सभी कर्म, वे चाहे देखनेमें परस्पर-विरोधी क्यों न हों, उस हदतक तेरे विधानकी अभिव्यक्ति हो सकते हैं जिस हदतक उनपर उस विधानकी चेतनाका गहरा रंग चढ़ा होता है। यह विधान किसी व्यावहारिक प्रयोगका ऐसा विधान नहीं है, जो साधारण मानव चेतनामें सिद्धांतों अथवा नियमोंके रूपमें परिणत किया जा सके, वरन् यह वृत्तिका, एक स्थायी और व्यापक चेतनाभावका विधान है। यह ऐसी चीज है जो सूत्रोंमें अभिव्यक्त नहीं हो सकती, केवल जीवनमें अनुभव की जाती है।"

किंतु ज्यों ही मनुष्य साधारण चेतनामें लौट आये, उसे किसी चीजकी ओर भी उपेक्षा या उदासीनता नहीं दिखानी चाहिये। छोटी-से-छोटी परिस्थिति, छोटे-से-छोटा कर्म भी अत्यधिक महत्त्व रखता है, इसलिये उसके बारेमें गंभीरतापूर्वक विचारना चाहिये। कारण, प्रति क्षण हमें वही कार्य करनेका प्रयत्न करना चाहिये जो हमारी चेतनाको उस सनातन चेतनाके साथ एक होनेमें सहायता पहुंचाये, साथ ही हमें उस सबसे सावधानतापूर्वक बचनेकी चेष्टा भी करनी चाहिये जो उस ऐक्यमें बाधा पहुंचा सकता हो। तभी वे व्यवहारकी मर्यादाएं, जो पूर्ण व्यक्तिगत निःस्वार्थतापर आधारित होती हैं, अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं।

हे प्रभु, शाश्वत प्रेमके दिव्य स्वामी, अपने हृदयमें शांति लिये, मनमें प्रकाश लिये, अपनी समस्त सत्तामें निश्चयताकी आशा लिये, मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

तू ही हमारे अस्तित्वका मूल कारण और हमारा लक्ष्य है।

१३ फरवरी, १९१४

एक गहरी एकाग्रताकी नीरवतामें मैं अपनी चेतनाको तेरी पूर्ण चेतनाके साथ एक करना चाहती हूं। हमारी सत्ताके अधीश्वर, प्रेमके दिव्य गुरु, मैं तेरे साथ एक होना चाहती हूं जिससे कि तेरा विधान हमारी समझमें आ जाय, हमारे सामने स्पष्ट हो जाय और हम उसके द्वारा और उसके लिये ही जीवन यापन करें।

उन क्षणोंमें, जब मेरे विचार तेरी ओर उड़ान भरते हैं तथा तेरे साथ एक होते हैं, सब कुछ कितना सुन्दर, कितना विशाल, कितना सरल और शांत हो जाता है। जिस दिन इस परम स्वच्छ दृष्टिको सतत रूपसे बनाये रखना हमारे लिये संभव हो जायगा, उस दिनसे हम जीवनमें कैसे द्रुत और निश्चित पगोंसे, समस्त बाधाओंको लांघकर निस्संकोच आगे बढ़ते जायेंगे। मैं अपने अनुभवसे जानती हूं कि जिस क्षण हम तेरा विधान बन जाते हैं उसी क्षण समस्त संदेह, समस्त संकोच समाप्त हो जाते हैं, और यदि हम समस्त मानव कर्मकी अत्यधिक सापेक्षता स्पष्ट रूपसे जान लें तो उसके साथ ही हम यह भी शुद्ध और ठीक रूपमें जान जायेंगे कि, हमारे शरीरके लिये, हमारे कार्य करनेके साधनके लिये, वह कौन-सा कर्म है जो कम-से-कम सापेक्ष है... और तब बाधाएं **सचमुच** ही मानों जादूके जोरसे दूर हो जायेंगी। अबसे हमारे सब प्रयत्न, हे प्रभु, इसी अद्भुत अवस्थाको अधिकाधिक सतत रूपसे प्राप्त करनेकी ओर प्रवृत्त होंगे।

तेरी निश्चयताकी शांति सब हृदयोंमें जाग उठे।

१४ फरवरी, १९१४

शांति, समस्त पृथ्वीपर शांति....।

हे भगवान्! ऐसी कृपा कर कि सब लोग साधारण चेतनासे बाहर निकलकर, सांसारिक वस्तुओंकी आसक्तिसे मुक्त होकर तेरी दिव्य उपस्थितिके ज्ञानमें जाग्रत् हों, तेरी परम चेतनाके साथ अपनी चेतनाको युक्त करें और इससे प्राप्त होनेवाली शांतिके प्राचुर्यका आस्वादन करें।

हे प्रभु! तू ही हमारी सत्ताका परम स्वामी है, तेरा विधान ही हमारा विधान है; हम अपनी सारी शक्तिके साथ यह अभीप्सा करते हैं कि हमारी

चेतना तेरी शाश्वत चेतनाके साथ तादात्म्य प्राप्त करे जिससे सर्वत्र और सदा हम तेरा ही महान् कार्य संपन्न कर सकें।

हे नाथ! हमें सामान्य आवश्यकताओंकी चिंतासे मुक्त कर, वस्तुओंके प्रति साधारण स्थूल दृष्टिसे मुक्त कर, ऐसी कृपा कर कि अब हम केवल तेरी ही आंखोंसे देखें और केवल तेरी ही इच्छासे कार्य करें; हमें अपने दिव्य प्रेमकी सजीव ज्योतिशिखाओंमें परिणत कर।

आदरके साथ, भक्तिके साथ, अपनी समस्त सत्ताको सहर्ष समर्पित करते हुए, हे प्रभु, मैं तेरे विधानकी चरितार्थताके लिये अपने-आपको अर्पित करती हूं।

शांति, समस्त पृथ्वीपर शांति . . . ।

१५ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, एकमात्र सद्वस्तु, प्रकाशके भी प्रकाश, जीवनके भी जीवन, जगत्के रक्षक, सर्वोच्च प्रेम, ऐसी कृपा कर कि हम अधिकाधिक तेरी सतत उपस्थितिकी चेतनाके प्रति पूर्णतया जाग्रत् हो जायं, जिससे कि हमारे सब कर्म तेरे विधानके अनुकूल बन जायं और हमारी इच्छा और तेरी इच्छामें कोई भेद न रहे। हम अपने-आपको भ्रांतिमय चेतनासे, (काल्पनिक) संसारसे अलग कर लें और फिर अपनी चेतनाको पूर्ण चेतनाके साथ, जो कि तू है, एक कर दें।

लक्ष्यपर पहुंचनेके हमारे संकल्पमें हमें स्थिरता प्रदान कर, हमें दृढ़ता, शक्ति और ऐसा साहस प्रदान कर जो जड़ता और शिथिलताको दूर भगा दे।

मुझे पूर्ण अनासक्तिकी शांति प्रदान कर, वह शांति प्रदान कर जो तेरी उपस्थितिका अनुभव कराती और तेरे हस्तक्षेपको सफल बनाती है, वह शांति प्रदान कर जो समस्त अशुभ इच्छा और सब प्रकारके अंधकारके ऊपर सदा विजयी होती है।

हे प्रभु, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं, ऐसी कृपा कर कि मेरी समस्त सत्ता तेरे साथ एक हो जाय, और मैं प्रेमकी एक मशालके अतिरिक्त और कुछ न रहूं, ऐसी मशाल जो तेरी परम क्रियाके प्रति पूर्ण रूपसे सचेतन हो।

१६ फरवरी, १९१४

ओ परम देव, एकमात्र सद्वस्तु, सत्य चैतन्य, अखंड एकत्व, पूर्ण प्रकाशके सर्वोच्च धाम, किस तीव्र भावसे मैं अभीप्सा करती हूं कि मैं तेरे अतिरिक्त और कुछ न जानूं, तेरे सिवाय मेरा कुछ अस्तित्व ही न हो। अवास्तविक व्यक्तित्वोंकी यह अनवरत चेष्टा, यह बहुलता, यह जटिलता, संघर्षमय विचारों, विरोधी प्रवृत्तियों और झगड़ती हुई इच्छाओंका यह तीव्र और दुस्तर गोल-माल मुझे दिन-प्रतिदिन भयावह प्रतीत हो रहा है। इस प्रचंड समुद्रसे हमें बाहर निकलना होगा, तेरे शांत तटकी स्थिरतापर उतरना होगा। मुझे एक अथक तैराककी शक्ति प्रदान कर। मैं तुझे प्राप्त करना चाहती हूं, चाहे इसके लिये कितना भी प्रयत्न करना आवश्यक क्यों न हो... हे प्रभु, अज्ञानपर हमें विजय प्राप्त करनी होगी, भ्रांति हमें दूर करनी होगी; इस दुःखमय संसारको अपने भयानक दुःस्वप्नसे निकल आना होगा, इसे अपना भयावह स्वप्न समाप्त कर देना होगा जिससे कि यह अंतमें, तेरी एकमात्र वास्तविकताके प्रति सचेतन हो जाय।

ओ अचल शांति, मनुष्योंका अज्ञानसे उद्धार कर। तेरा पूर्ण और शुद्ध प्रकाश सर्वत्र छा जाय !

१७ फरवरी, १९१४

हे प्रभु ! किस तीव्रताके साथ मेरी यह अभीप्सा तेरी ओर उठ रही है। तू अपने विधानका हमें पूरा ज्ञान दे, तेरी इच्छाका हमें अनवरत भान रहे, — ताकि तेरे निश्चय हमारे निश्चय हों, जीवन केवल तेरी सेवामें अर्पित हो और तेरी प्रेरणाको यथासंभव पूर्ण रूपसे प्रकट करे।

हे स्वामी ! दूर कर सब अंधकार, सब अंधता, और ऐसी कृपा कर कि हर कोई उस स्थिर निश्चयात्मक ज्ञानका आनंद लाभ करे जो तेरे दैवी प्रकाशसे मिलता है।

१९ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, मेरे विचारोंमें सदैव बना रह! मैं तुझसे यह मांग नहीं कर रही, मैं जानती हूं कि तेरी उपस्थिति सदैव सर्वाधीश रूपमें बनी रहती है, मैं जानती हूं कि जो कुछ हम देखते हैं और जो कुछ हमारी दृष्टिसे छूट जाता है वह सब तेरे अद्‌भुत हस्तक्षेपके द्वारा तेरे दिव्य प्रेमके विधानके द्वारा ही होता है। किंतु मैंने निवेदन किया है और मैं पुनः निवेदन करती हूं कि मैं जो तुझसे प्रार्थना करती हूं वह इसलिये कि मैं इस तथ्यको भूल न जाऊं तथा इससे असावधान न हो जाऊं।

अहा! तेरे सजीव प्रेमसे इतना सारूप्य प्राप्त करना कि व्यक्ति सब वस्तुओंको रूपांतरित और आलोकित कर सके, सबमें शांति और उदार संतोष उत्पन्न कर सके!

अहा! तेरे पारदर्शी और पवित्र दिव्य प्रेमसे तादात्म्य! सर्वत्र और और सदा ही तादात्म्य ...।

२० फरवरी, १९१४

एक ही चीज महत्त्वपूर्ण है, एक ही चीज है जिसका मूल्य है और वह है तेरे साथ अधिकाधिक एक होनेकी अभिलाषा, तेरी पूर्ण चेतनाके साथ अपनी चेतनाको एकमय करना, तेरे सर्वोच्च विधानके, तेरी प्रेमेच्छाके अधिकाधिक शांत, अचंचल, निःस्वार्थ और सशक्त सेवक बनना।

हे प्रभु, मुझे पूर्ण निःस्वार्थ भावकी शांति प्रदान कर, वह शांति जो तेरी उपस्थितिको सफल बनाती, तेरे हस्तक्षेपको प्रभावशाली बनाती है, वह शांति जो समस्त अशुभ कामनाओंपर, समस्त अंधकारपर विजय पाती है।

प्रभु, अत्यंत विनयपूर्वक मैं प्रार्थना करती हूं कि मैं अपने कार्यकी गुरुताके योग्य बनूं, मुझमें कुछ भी, सचेतन हो अथवा अचेतन, तेरे पवित्र कार्यकी उपेक्षा करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।

नीरव भक्तिभावसे मैं तुझे नमस्कार करती हूं ...।

२१ फरवरी, १९१४

प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण एक नये और पूर्णतर आत्मदानका अवसर होना चाहिये, ऐसा आत्मदान नहीं जो जोशीला, व्यग्र, अतिरजोगुणी और कार्यके भ्रमसे पूर्ण हो, बल्कि एक ऐसा गंभीर और नीरव आत्मदान जिसका प्रत्यक्ष रूप चाहे विशेष न भी हो परंतु जो प्रत्येक कर्मके अंदर पैठकर उसे रूपांतरित कर दे। हमारे मनको शांत और एकांत भावमें सदा तेरे अंदर ही विश्राम करना चाहिये और इस पवित्र चोटीसे उसे अस्थिर और अनिश्चित आभासोंके पीछेकी सद्वस्तुओंका, उस एक और नित्य सद्वस्तुका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

हे प्रभु, मेरा हृदय दु:ख और वेदनासे मुक्त हो गया है; वह दृढ़ और शांत है और तुझे हर वस्तुमें देखता है। हमारे बाह्य कर्म जो भी हों, भविष्यके गर्भमें जो भी परिस्थितियां हमारे लिये निहित हों, मैं जानती हूं कि एकमात्र तू ही अस्तित्व रखता है, अपनी अचल स्थिरतामें केवल तू ही सत्य है और तेरे अंदर ही हम जीवन धारण करते हैं। ...

तेरी शांति समस्त पृथ्वीपर छा जाय।

२२ फरवरी, १९१४

जब मैं बच्ची थी — लगभग तेरह वर्षकी — प्रतिदिन रात्रिको ज्यों ही मैं सोनेके लिये पलंगपर जाती मुझे ऐसा प्रतीत होता कि मैं अपने शरीरसे बाहर निकल आयी हूं और सीधे घरके ऊपर, फिर नगरके ऊपर बहुत ऊंचे उठ रही हूं — ऐसा लगभग एक वर्षतक चलता रहा — और तब मैं अपने-आपको एक बड़ा सुन्दर, स्वर्णिम चोगा पहने देखती जो मुझसे बहुत लंबा होता। ज्यों-ज्यों मैं ऊपर उठती वह चोगा लंबा होता जाता, मेरे चारों ओर घेरेके रूपमें इस प्रकार फैल जाता कि वह नगरके ऊपर एक बहुत बड़ी छतके समान प्रतीत होने लगता। और तब मैं सब ओरसे पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों, रोगियों और दु:खी मनुष्योंको निकलते देखती; वे सब इस विस्तृत चोगेके नीचे एकत्र हो जाते, इससे सहायताकी याचना करते, अपने दु:ख-कष्ट, अपनी पीड़ाएं सुनाते। प्रत्युत्तरमें वह नमनीय और सजीव चोगा उनमेंसे एक-एककी ओर बढ़ता और ज्यों ही वे उसे छू लेते, उन्हें सांत्वना प्राप्त होती, वे रोगमुक्त

हो जाते, और वापस अपने शरीरमें लौट जाते, उस समय वे पहलेसे इतने अधिक प्रसन्न और सशक्त होते जितने कि वे उसमेंसे निकलनेके पहले कभी नहीं थे। इससे अधिक सुन्दर कार्य मुझे और कोई नहीं प्रतीत होता था, इससे अधिक मुझे और कोई वस्तु आनंदपूर्ण अनुभव नहीं होती थी। दिनके सब कर्म मुझे रात्रिके उस कर्मकी तुलनामें जो मेरे लिये एक यथार्थ जीवन था, नीरस, फीके और निर्जीव प्रतीत होते। उस समय, जब मैं ऊपर उठती, मैं प्रायः ही अपनी बायीं ओर एक वृद्धको देखती, मौन और अचल; वह मेरी ओर कृपापूर्ण स्नेहकी दृष्टिसे देखते; उनकी उपस्थिति मुझे उत्साहित करती। वह वृद्ध, जो एक लंबा, धुंधले बैंगनी रंगका चोगा पहने होते, उनके प्रतीक थे जो "दुःखोंके मानवीय विग्रह" कहलाते हैं, यह मैंने बहुत पीछे जाना।

अब यह गंभीर अनुभव, यह सत्य जो प्रायः अवर्णनीय है, मेरे मस्तिष्कमें कुछ अन्य विचारोंमें अनूदित होता है जिनकी व्याख्या मैं इस प्रकार कर सकती हूं:

दिनमें अनेक बार और रात्रिमें भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अर्थात् मेरी समस्त चेतना पूर्ण रूपसे मेरे हृदयमें केंद्रित हो गयी है जो न तो अब एक अंग है और न ही भावना, बल्कि जो दिव्य प्रेम है, निर्वैयक्तिक और सनातन; यह प्रेम बनकर, मैं समस्त भूतलपर सब वस्तुओंके केंद्रमें निवास करती प्रतीत होती हूं और उसी समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अपनी विशाल और अनंत बांहें फैला रही हूं और सब प्राणियोंको अपने हृदयके पास, जो विश्वसे भी बड़ा है, लाकर इकट्ठा करके, चिपटाकर एक असीम कोमलताके साथ उन्हें आवेष्टित कर रही हूं ... शब्द बलहीन और बेढंगे होते हैं, ओ दिव्य प्रभु, और मानसिक उल्था सदा बालोचित होता है ... किंतु तेरी ओर मेरी अनवरत अभीप्सा रहती है, सच पूछो तो प्रायः तू, केवल तू ही इस शरीरमें निवास करता है जो तेरी अभिव्यक्तिका एक अपूर्ण साधन है।

ऐसी कृपाकर कि सब प्राणी तेरी ज्योतिकी शांतिमें प्रसन्नता प्राप्त करें!

२३ फरवरी, १९१४

प्रभु, ऐसी कृपा कर कि हम तेरे विधानके प्रति अधिकाधिक चेतन हो जायं, अर्थात् उसके साथ "एक" हो जायं जिससे कि उसकी अभिव्यक्ति सब वस्तुओंमें सुगमतासे हो सके।

हे प्रभु, ऐसी कृपा कर कि मैं अपने विक्षिप्त विचारोंकी स्वामिनी बन जाऊं, तुझमें निवास करते हुए मैं केवल तेरे द्वारा ही जीवनपर दृष्टिपात करूं, भौतिक सद्वस्तुका भ्रम समाप्त हो जाय और उसके स्थानपर एक ऐसा ज्ञान आ जाय जो तेरी नित्य सत्यताके अधिक अनुकूल हो।

अपने दिव्य प्रेमके अंदर मुझे सदा निवास करने दे, जिससे कि वही मेरे अंदर तथा मेरे द्वारा क्रिया करे।

ऐसी कृपा कर कि मैं एक उपयोगी और पारदर्शी सहयोगी बन जाऊं और सब कुछ मेरे अंदर तेरी अभिव्यक्तिकी पूर्णताको सुगम बना दे।

मैं अपनी सब अपूर्णताएं, कठिनाइयां और दुर्बलताएं जानती हूं, मैं अपनी अज्ञता भी अनुभव करती हूं, किंतु मैं पूरी तरह तुमपर ही भरोसा रखती हूं और मौन भक्तिभावमें तेरे आगे नतमस्तक होती हूं।

२५, २६ फरवरी, १९१४

जो कोई उचित रूपमें तेरी सेवा करना चाहता है उसे कोई भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये, ऐसे कर्मोंके प्रति भी नहीं जो तेरे साथ अधिक चेतन रूपमें संपर्क रखनेमें सहायक होते हैं ... परंतु यदि घटना-चक्रके कारण भौतिक वस्तुएं जीवनमें साधारणसे अधिक प्रभावशाली हो उठें तो उसे यह ज्ञान रहना चाहिये कि वह अपने-आपको उनमें खो न जाने दे; उसे अपने हृदयकी गहराईमें तेरी उपस्थितिके स्पष्ट अंत-र्दर्शनको सुरक्षित रखना तथा उसकी अखंडनीय शांतिमें अनवरत निवास करना भी जानना चाहिये। ...

अहा! तेरा ही सर्वत्र दर्शन करते हुए सारे कर्म करना, और इस प्रकार कृत कर्मसे दूर ऊपर उड़ान भर लेना, कोई भी जंजीर हमें पृथ्वीसे बांधनेवाली न हो, हमारी उड़ानका बोझा बननेवाली न हो ... !

हे प्रभु, प्रदान कर कि मेरी सत्ताका यह समर्पण सर्वांगीण और फल-प्रद हो।

आदरयुक्त और कोमल भक्तिभावके साथ मैं तेरे आगे नतमस्तक होती हूं, ओ वर्णनातीत तत्त्व, अचिंत्य और अनाम सत्य!

२७ फरवरी, १९१४

हे प्रभु, मैं उस असीम सुखका पूर्वास्वाद अनुभव करती हूं जो उन लोगोंके हिस्सेमें आता है जिनका जीवन तेरे प्रति पूर्ण रूपसे समर्पित होता है। और यह बाह्य परिस्थितियोंपर नहीं वरन् व्यक्तिकी अवस्था और उसके प्रकाशपर जो उसे कम या अधिक रूपमें प्राप्त हुआ है निर्भर करता है। तेरे विधानके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण परिस्थितिमें समूल परिवर्तन लाये बिना नहीं रह सकता, पर ये परिस्थितियां इस पूर्ण आत्मसमर्पण-को न तो साधित ही करती हैं और न ही इसे अभिव्यक्त करती हैं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि तेरा विधान किन्हीं विशेष परिस्थितियों-में ही, जो सबके लिये सदा समान हों, अभिव्यक्त नहीं होता; प्रत्येकके लिये उसके स्वभावके अनुसार, उसे उस भौतिक जीवनमें उस समयके लिये सौंपे गये कार्यके अनुसार यह अभिव्यक्ति अलग-अलग होती है।

किंतु जो बात अपरिवर्तनीय और सर्व-सामान्य है वह है आनंदपूर्ण शांति तथा प्रकाशयुक्त और अटल सौम्यता जो उन्हें प्राप्त होती है जो एकमात्र तेरे प्रति समर्पित हैं, जिनके अंदरसे अंधकार, अज्ञान, अहंकारमयी आसक्ति तथा दुर्भाव दूर हो चुके हैं।

प्रभु, इस दिव्य शांतिके प्रति सब सजग हो उठें।

१ मार्च, १९१४

व्यक्तिके अपने अंदर ही सब बाधाएं हैं, उसके अपने अंदर ही सब कठिनाइयां हैं, उसके अपने अंदर ही सब अंधकार और अज्ञान हैं। चाहे हम सारी पृथ्वीका चक्कर लगा आयें, या किसी एकांत स्थानमें अपने-आपको बंद कर लें, अपनी सब आदतोंको छोड़ दें, और अत्यधिक तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगें, तो भी, यदि भ्रांतिका कोई भी बंधन हमारी चेतनाको तेरी पूर्ण चेतनासे दूर रखता है, यदि कोई अहंभावयुक्त आसक्ति तेरे दिव्य प्रेमके साथ हमारा पूर्ण संपर्क स्थापित नहीं होने देती, बाह्य परिस्थितियां कुछ भी हों, हम तेरे अधिक निकट नहीं हो सकते। क्या अवस्थाएं भी कम और ज्यादा अनुकूल हो सकती हैं? मुझे संदेह है। वे हमें जो पाठ पढ़ाना चाहती हैं उससे हमें कम लाभ होता है या अधिक यह इस बातपर निर्भर है कि हमने उनके बारेमें क्या धारणा बना ली है।

हे प्रभु, मैं तेरे आगे प्रार्थना करती हूं, ऐसी कृपा कर कि जिस संघातने इस व्यक्तित्वका निर्माण किया है उसके प्रति मैं पूर्ण रूपसे चेतन हो जाऊं तथा उसकी स्वामिनी बन सकूं, ताकि मैं अपने-आपसे मुक्त हो सकूं और एकमात्र तू ही इन अनेक तत्त्वोंमें निवास करने लगे, इनके द्वारा कार्य करने लगे ।

तेरी सर्वोच्च अभिव्यक्तिके साथ अछेद्य रूपमें संयुक्त होकर प्रेममें, प्रेमके द्वारा, प्रेमके लिये जीना . . . ।

सदा ही अधिकाधिक प्रकाश प्राप्त हो, अधिकाधिक सौंदर्य, अधिकाधिक सत्य !

३ मार्च, १९१४

जैसे-जैसे प्रस्थानका दिन निकट आ रहा है, मैं एक प्रकारकी स्थिर एकाग्रतामें प्रवेश कर रही हूं। मैं एक कोमल गंभीरताके साथ अपना ध्यान उन हजारों छोटी-मोटी तुच्छ-सी वस्तुओंकी ओर मोड़ती हूं जो हमारे चारों ओर हैं और जिन्होंने इतने वर्ष मौन रहकर विश्वस्त मित्रोंकी भांति काम दिया है। मैं उनका, उस सब प्रसन्नताके लिये जो उन्होंने हमारे जीवनको बाह्य रूपसे प्रदान की है, कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद करती हूं। मैं चाहती हूं कि यदि उन्हें भाग्यवश थोड़े या अधिक समयके लिये हमें छोड़-कर दूसरोंके हाथोंमें जाना है, तो वे दूसरे उनके प्रति कोमल बनें, और उस सब सम्मानको अनुभव करें जो उस वस्तुको मिलना चाहिये जिसे तेरे दिव्य प्रेमने, हे प्रभु, अस्त-व्यस्तताकी अंधेरी अचेतनामेंसे बाहर निकाला है।

इसके बाद मैं अपना ध्यान भविष्यकी ओर मोड़ती हूं, और मेरी दृष्टि और भी गभीर हो जाती है। जो कुछ उसके अंदर हमारे लिये निहित है, वह मैं नहीं जानती और जानना चाहती भी नहीं; बाह्य परिस्थितियों-का महत्त्व कुछ नहीं होता। मैं केवल यह चाहूंगी कि हमारे लिये यह एक ऐसे नये आंतरिक युगका प्रारंभ हो जिसमें हम स्थूल पदार्थोंके प्रति अधिक निरासक्त होकर तेरे विधानको अधिक चेतन रूपमें जान लें और उसकी अभिव्यक्तिके प्रति अपने-आपको अधिक एकनिष्ठ भावमें समर्पित कर सकें, और यह युग एक महत्तर प्रकाशका, एक महत्तर प्रेमका, तेरे कार्यके प्रति पूर्णतर निष्ठाका युग हो।

एक नीरव भक्ति-भावमें मैं तेरा चिंतन करती हूं।

४ मार्च, १९१४

यह अंतिम बार है जब कि मैं इस मेजपर, इस शांत कमरेमें जो तेरी उपस्थितिसे अभिषिक्त है, लिख रही हूं, निःसंदेह, एक अर्सेतक यह न हो सकेगा। अगले तीन दिनतक शायद मैं न लिख सकूंगी . . . बड़ी एकाग्रता-के साथ मैं इस पृष्ठके बारेमें सोचती हूं जो उलटते ही भूतकालके स्वप्नमें विलीन हो जाता है और मैं उस दूसरे पृष्ठकी ओर देखती हूं जो है तो कोरा पर गुप्त रूपमें भविष्यके स्वप्नोंसे भरा हुआ है . . . फिर भी यदि इसे तेरी नित्यताके प्रकाशमें देखा जाय तो यह कितना तुच्छ, बालोचित और महत्त्वरहित प्रतीत होता है। केवल एक ही चीजका महत्त्व है, प्रेम और हर्षके साथ तेरे विधानका पालन करना।

हे प्रभु, ऐसी कृपा कर कि हममें सब कुछ तेरी आराधना करे, तेरी सेवा करे।

सबको शांति प्राप्त हो।

जेनेवा, ६ मार्च, १९१४

उनके कष्टसे तीव्र रूपमें पीड़ित होकर मैं तेरी ओर मुड़ी हूं। उनमें इस दिव्य प्रेमका, जो समस्त शांति और प्रसन्नताका मूल है, थोड़ा-सा अंश उंडेलकर उस पीड़ाको दूर करनेका यत्न करती हूं। कष्टसे दूर नहीं भागना चाहिये, न उसके साथ प्रेम करना या उसे पोसना ही चाहिये, वरन् पर्याप्त रूपमें उसकी गहराईतक जाना सीखना चाहिये और उसे एक साधन बना लेना चाहिये जो नित्य चेतनाके द्वार खोलने तथा तेरे निर्विकार एकत्वकी स्थिर शांतिमें प्रवेश पानेमें सहायक हो।

जब हम बाह्य रूपोंकी अस्थिरता और तेरे सारभूत एकत्वकी वास्तविकता-के विषयमें चिंतन करते हैं, तो निश्चय ही यह भावुक और भौतिक आसक्ति, जो शरीरोंके बिछुड़नेपर व्यथा उत्पन्न करती है, एक दृष्टिसे बालोचित प्रतीत होती है। पर दूसरी ओर यह आसक्ति, यह व्यक्तिगत स्नेह क्या उस मूल एकत्वको, जिसकी ओर मनुष्य सदैव बिना जाने ही प्रेरित होते रहते हैं, बाह्य रूपमें यथासंभव चरितार्थ करनेका उनका अचेतन प्रयत्न नहीं है? और ठीक इसी कारण, क्या वियोगसे उत्पन्न कष्ट इस बाह्य चेतनाको पार करनेका, इस ऊपरी आसक्तिका स्थान तेरे

नित्य एकत्वकी पूर्ण उपलब्धिको देनेका एक सक्षम साधन नहीं है?

यही थी वह चीज जो मैं सबके लिये चाहती थी, इसी वस्तुकी मैंने उनके लिये आग्रहपूर्वक इच्छा की थी और इसीके लिये, तेरी विजयका आश्वासन पाकर, तेरी जीत निश्चित समझकर, मैंने उनका कष्ट तुझे सौंप दिया था जिससे कि तू उसे आलोकित करके दूर कर दे।

हे प्रभु! ऐसी कृपा कर कि स्नेह और कोमलताका यह समस्त सौंदर्य एक गौरवमय ज्ञानमें परिणत हो जाय।

प्रदान कर कि प्रत्येक वस्तुका अच्छे-से-अच्छा परिणाम निकले और तेरी प्रसन्न शांति पृथ्वीपर छा जाय।

'कागामारू' जहाजपर, ७ मार्च, १९१६
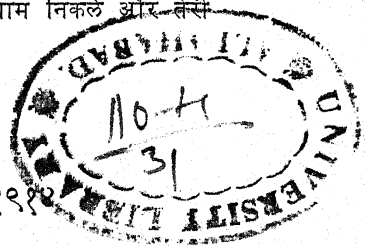
कल तू हमारे साथ एक अत्यंत ही अद्भुत रक्षकके रूपमें था; तूने इसकी अनुमति दे दी कि तेरा विधान बाह्यतम अभिव्यक्तिके क्षेत्रपर्यंत विजय लाभ करे। हिंसाका उत्तर शांतिसे दिया गया और पाशविक क्रूरताका मधुरतासे; और जहां एक अटल दुर्भाग्यको प्रतिष्ठित होना था, वहां तेरी शक्ति गौरवान्वित हुई। हे प्रभु, किस उत्साहपूर्ण कृतज्ञताके साथ मैंने तेरी उपस्थितिका अभिवादन किया था। मेरे लिये यह इस बातका एक निश्चित संकेत था कि हम तेरे नाममें और तेरे लिये कार्य करने, सोचने और जीनेकी शक्ति प्राप्त करेंगे, केवल विचार और संकल्प-में ही नहीं, वरन् वास्तविक और पूर्ण उपलब्धिके रूपमें भी।

आज प्रातः मेरी प्रार्थना सदाकी भांति उसी एक अभीप्सामें तेरी ओर उठ रही है कि हम तेरे ही प्रेममें जियें, तेरे प्रेमको इतने प्रबल वेगसे, इतने सफल और क्रियाशील रूपमें प्रसारित करें कि हमारे संपर्कसे सभी सशक्त, पुनर्जीवित और आलोकित अनुभव करने लगें। रोगियोंको स्वस्थ करने, कष्टोंको दूर करने, शांति और स्थिर विश्वासको उत्पन्न करने, पीड़ाको दूर करने और उसके स्थानपर सच्ची प्रसन्नताके भावको स्थापित करनेकी शक्ति होना... उस प्रसन्नताके भावको जो तेरे अंदर निवास करती है और जो कभी मंद नहीं पड़ती... हे प्रभु, अद्भुत मित्र, सर्वशक्तिमान् गुरु, हमारी समस्त सत्तामें प्रवेश कर, और इसे इतना रूपांतरित कर दे कि केवल तू ही हमारे अंदर निवास करे, केवल तू ही हमारे द्वारा अभि-व्यक्त हो!

८ मार्च, १९१४

उस शांत सूर्योदयके सामने, जिसने मेरे अंदर सब कुछ शांत और नीरव कर दिया था, उस समय जब कि मैं तेरे प्रति सचेतन हो गयी थी और केवल तू ही मेरे अंदर निवास करता था, हे प्रभु, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैंने इस जहाजके सभी व्यक्तियोंको अपने अंदर धारण करके एक समान प्रेममें आवेष्टित कर लिया है, इस प्रकार उनमेंसे प्रत्येकके अंदर तेरी चेतनाका कुछ अंश जग जायगा। बहुत कम ही, कभी-कदास मैंने तेरी दिव्य शक्ति, तेरा अजेय प्रकाश इतनी अच्छी तरह अनुभव किया है; फिरसे एक बार मेरा विश्वास सर्वांगीण हो उठा और मेरा आनन्दमय समर्पण विशुद्ध बन गया।

ओ तू, जो सब कष्ट दूर करता है, समस्त अज्ञानको छिन्न-भिन्न कर देता है, तू, जो परम शोकनिवारक है, इस जहाजके उन सब लोगोंके हृदयमें हर समय उपस्थित रह जिन्होंने इसमें आश्रय लिया है, जिससे कि तेरी महिमा एक बार फिर प्रकाशमें आ जाय।

९ मार्च, १९१४

जो लोग तेरे लिये और तुझमें ही जीवन धारण करते हैं, वे भौतिक परिस्थितियां, जलवायु, अभ्यास, परिपार्श्व आदि बदल जानेपर भी सर्वत्र एक ही वातावरण पाते हैं, वही वे अपने अंदर बनाये रखते हैं; अपने विचारोंको सदा तुझमें संयुक्त करके उसी वातावरणको लिये रहते हैं। सभी जगह वे अपना घर अनुभव करते हैं, अर्थात् तेरा घर अनुभव करते हैं। उन्हें नयी वस्तुओं और नये देशोंके अदृष्टपूर्व तथा वैचित्र्यपूर्ण रूपोंमें कुछ आश्चर्य अनुभव नहीं होता। उन्हें प्रत्येक वस्तुमें तेरी ही उपस्थिति प्रत्यक्ष रूपमें अनुभव होती है और तेरा शाश्वत वैभव जो उन्हें सदा अनु-भव होता रहता है, रेतके छोटे-से कणमें भी दिखायी पड़ता है। समस्त पृथ्वी तेरा स्तुतिगान करती है; अंधकार, दुःख और अज्ञानके होते हुए भी, इन सबके बीचमें भी, हम तेरे प्रेमका गौरव अनुभव कर सकते और इसके साथ सदा तथा सर्वत्र आंतरिक संबंध जोड़ सकते हैं।

प्रभु, मेरे मधुर स्वामी, यह सब मैं लगातार ही इस जहाजपर अनुभव कर रही हूं जो मुझे एक अद्भुत शांतिका धाम प्रतीत होता है, ऐसा मंदिर

प्रतीत होता है जो तेरी शोभाके लिये निष्क्रिय अवचेतनाकी लहरोंपर तैर रहा है, जिस अवचेतनाको हमें जीतना है तथा तेरी दिव्य उपस्थितिके प्रति जाग्रत् करना है।

वह दिन कितना धन्य था जब मैंने तुझे जाना, ओ अकथनीय सनातन प्रभु! वह दिन, और दिनोंसे कितना अधिक धन्य होगा जब पृथ्वी अंतमें चेतन होकर तुझे जान लेगी और केवल तेरे लिये ही जीवन धारण करेगी!

१० मार्च, १९१४

रात्रिकी निस्तब्धतामें तेरी शांति सब वस्तुओंपर राज्य करती थी, और मेरे हृदयकी निस्तब्धतामें तेरी शांति सदैव राज्य करती है; और जब ये दो निस्तब्धताएं मिल गयीं, तेरी शांति इतनी बलवती हो गयी कि किसी भी प्रकारकी विपत्ति उनके सामने खड़ी न रह सकी। तब मैंने उन सबके विषयमें सोचा जो इस जहाजपर हमारे मार्गकी सुनिश्चितता और रक्षाके लिये नियुक्त हैं, और कृतज्ञ भावसे मैंने यह इच्छा की कि उनके हृदयोंमें तेरी शांति जन्म ले और निवास करे। फिर मैंने उनके विषयमें सोचा जो विश्वासपूर्वक, बिना किसी चिंताके निश्चेतनाकी निद्रामें सो रहे थे और उनके कष्टोंके लिये चिंतित होकर, उनके सुप्त कष्टोंके प्रति करुणाका भाव रखते हुए जो उनके जागनेके साथ पुनः प्रस्तुत हो जायेंगे, मैंने यह इच्छा की कि तेरी शांतिका एक छोटा-सा अंश उनके हृदयमें स्थापित हो जाय और उनके अन्दर आत्मिक जीवनको जन्म दे, उस प्रकाशको जन्म दे जो अज्ञान दूर कर देता है। उसके बाद मैंने उस विशाल सागरमें रहने-वाले दृश्य और अदृश्य प्राणियोंके विषयमें सोचा और मैंने इच्छा की कि उनके ऊपर तेरी शांति छा जाय। तब मैंने उन लोगोंके विषयमें सोचा जिन्हें हम पीछे दूर छोड़ आये हैं और जिनका प्रेम हमारे साथ है, और एक अत्यंत कोमल भावमें मैंने उनके लिये यह इच्छा की कि वे तेरी चेतन और स्थिर शांति प्राप्त करें, अपनी ग्रहणशीलताके अनुपातमें अधिक-से-अधिक शांति प्राप्त करें। फिर मैंने उन सबके विषयमें सोचा जिनके पास हम जा रहे हैं, जो अज्ञान और अहंकारके वशीभूत होकर बालोचित कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण विकल हो रहे हैं, जो स्वार्थसंबंधी तुच्छ प्रतियोगिताओंके लिये लड़-झगड़ रहे हैं; उनके लिये बड़ी उत्सुकता और तीव्र अभीप्सामें मैंने तेरी शांतिके पूर्ण प्रकाशकी अभिलाषा की। तब

मैंने उन सबके विषयमें सोचा जिन्हें हम जानते हैं, उन सबके विषयमें जिन्हें हम नहीं जानते, उस समस्त जीवनके विषयमें जो अपने-आपको विकसित कर रहा है, उस सबके विषयमें जिसने अपना रूप बदल लिया है तथा उस सबके विषयमें जिसने अभी आकार धारण ही नहीं किया है, और इसी प्रकार उस सबके लिये जो मेरे लिये अचिंत्य है और फिर उस सबके लिये जो मुझे स्मरण है तथा जो मैं भूल चुकी हूं — सबके लिये एक महान् एकाग्रता और मौन भक्तिभावमें मैंने तेरी शांतिकी प्रार्थना की।

१२ मार्च, १९१४

नाथ, मेरी एक ही अभीप्सा है : तुझे अधिक अच्छी तरह जानूं, नित्य प्रति अधिक अच्छी तरह तेरी सेवा कर सकूं। बाह्य परिस्थितियोंका क्या महत्त्व! मुझे ये दिन-प्रतिदिन अधिक व्यर्थ और भ्रांतिपूर्ण प्रतीत हो रही हैं और मैं इस बातमें कम-से-कम रुचि लेने लगी हूं कि बाह्य रूपमें हमारे साथ क्या घटेगा। किंतु मुझे, अधिकाधिक और तीव्र रूपमें केवल एक तथ्य रुचिकर लगने लगा है और यही मुझे महत्त्वपूर्ण भी प्रतीत होता है : वह है तुझे अधिक अच्छी तरह जानना जिससे कि तेरा कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकें। सब बाह्य घटनाएं इसी लक्ष्य, केवल इसी लक्ष्य-पर केंद्रित हों, और यह हमारी उस वृत्तिपर निर्भर करता है जो हम इनके प्रति बना लेते हैं। यह है तुझे सदा सब वस्तुओंमें खोजना, प्रत्येक परिस्थितिमें तुझे अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त करनेकी इच्छा करना। इसी वृत्तिमें परम शांति, पूर्ण आत्मप्रसाद और सच्चा संतोष प्राप्त होंगे। इसमें जीवन खिल उठेगा, महान् हो जायगा, इतने गौरवमय ढंगसे, इतनी विशाल लहरोंके रूपमें विस्तृत हो उठेगा कि कोई भी तूफान उसे उद्विग्न नहीं कर सकेगा।

हे प्रभु, तू हमारा रक्षक है, हमारी एकमात्र प्रसन्नता है, तू हमारी जाज्वल्यमान ज्योति है, हमारा पवित्र प्रेम, हमारी आशा और हमारी शक्ति है, तू हमारा जीवन है, हमारी सत्ताका सत्य स्वरूप है!

आदरपूर्ण और प्रफुल्ल भक्ति-भावमें मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

१३ मार्च, १९१४

चेतनाके भी कितने भिन्न-भिन्न स्तर हैं! यह शब्द उसी अवस्थाके लिये सुरक्षित रखना चाहिये जो किसी व्यक्तिमें तेरी उपस्थितिसे आलोकित हो, जो तेरे साथ एक हो गयी हो और जो तेरी पूर्ण चेतना-में भाग लेती हो, यह शब्द केवल उस अवस्थाके लिये प्रयुक्त होना चाहिये जो ज्ञानसे युक्त हो और जो बुद्धके शब्दोंमें सम्यक् संबुद्ध हो। इस अवस्थाके अतिरिक्त, चेतनाके अनंत स्तर हैं जो उतरते हुए पूर्ण अंधकारकी अवस्थातक पहुंच जाते हैं, वास्तविक निश्चेतनाकी उस अवस्थाके क्षेत्रतक जिसने अभीतक तेरे दिव्य प्रेमके प्रकाशका स्पर्श नहीं किया है (स्थूल पदार्थकी यही अवस्था प्रतीत होती है) अथवा जो अविद्याके किसी प्रभावके कारण हमारी व्यक्तिगत अनुभूतिके क्षेत्रसे बाहर है।

पर यह केवल कहनेका एक ढंग है और अत्यधिक अपूर्ण है, क्योंकि जिस क्षण मानव जीव तेरी उपस्थितिसे सचेतन होकर तेरी चेतनाके साथ एक हो जाता है, वह सब वस्तुओंमें और सर्वत्र सचेतन रहता है। इस सर्वोच्च चेतनाकी अवधि क्षणिक होती है, और इस क्षणिकताका कारण यह है कि हमारी सत्ताके तत्त्व अत्यंत जटिल हैं, वे समान रूपसे आलोकित नहीं हैं और केवल क्रमशः ही क्रियाशील होते हैं। इसके अतिरिक्त, इस क्रमिक क्रियाके द्वारा ही ये धीरे-धीरे, अपने आंतरिक और बाह्य अनुभवोंके फलस्वरूप, अपने प्रति सचेतन हो सकते हैं, अर्थात् अपने अथाह सारतत्त्वमें तुझे पा सकते हैं।

अवचेतना यथार्थ बोध और अज्ञान अर्थात् नितांत अंधकारके बीचका क्षेत्र है; अधिकतर प्राणी, मनुष्य भी, संभवतः इसी अवचेतनामें लगातार निवास करते हैं; बहुत थोड़े इसमेंसे बाहर निकल पाते हैं। यही विजय हमें प्राप्त करनी है। क्योंकि शब्दके ठीक अर्थमें चेतन होनेका मतलब है पूर्ण रूपसे 'तू' बन जाना; और क्या यह चरितार्थ किये जानेवाले कार्यकी, पृथ्वीपर जिस ध्येयको पूरा करना है उसकी ठीक परिभाषा नहीं है?

प्रभु, हमें अंधकारसे मुक्त कर, ऐसी कृपा कर कि हम पूर्ण रूपसे जागरित हो जायं . . . ।

प्रेमके मधुमय स्वामी, वर दे कि मेरी समस्त चेतना तुझमें केंद्रित हो जाय जिससे कि मैं केवल तेरे प्रेम और प्रकाशके द्वारा जीवन धारण करूं और यह प्रेम और प्रकाश मेरे द्वारा चारों ओर प्रसारित हो जाय तथा हमारी यात्रामें जिनसे भी हमारी भेंट हो उन सबमें यह जाग उठे। यह

भौतिक यात्रा हमारे कर्मका प्रतीक बन जाय और हम सर्वत्र अपने पीछे प्रकाश और प्रेमकी रेखाके रूपमें तेरे पदचिह्न छोड़ते जायं।

ओ दिव्य गुरु, सनातन शिक्षक, तू सब वस्तुओंमें तथा सब प्राणियोंमें निवास करता है; और तेरा प्रेम घोर अज्ञानियोंपर भी प्रकाशित हो जाया करता है। ऐसी कृपा कर कि सब अपनी सत्ता-की गहराईमें इसके प्रति सचेतन हो जायं और उनके हृदयोंमेंसे घृणा सदैव के लिये दूर हो जाय।

एक अश्रांत गीतकी भांति मेरी तीव्र कृतज्ञता तेरी ओर उठ रही है।

१४ मार्च, १९१४

मरुस्थलके अपरिवर्तनशील एकांतमें तेरी गौरवमयी उपस्थितिका कुछ अंश विद्यमान रहता है और मुझे अब समझमें आता है कि क्यों इन बृहत् रेतीले मैदानोंमें रहना सदा ही तुझे पानेके अत्युत्तम उपायोंमेंसे एक है।

किंतु जो तुझे जानता है, उसके लिये तू सब जगह सब वस्तुओंमें उपस्थित है, और कोई एक चीज तुझे अभिव्यक्त करनेके लिये दूसरीसे अधिक उपयोगी नहीं प्रतीत होती; कारण, वे सब वस्तुएं जिनका अस्तित्व है— और बहुत-सी दूसरी भी जिनका अस्तित्व नहीं है— तुझे व्यक्त करनेके लिये आवश्यक हैं। प्रत्येक वस्तु, तेरे प्रेमके दिव्य अंतःक्षेपके कारण, तेरी ओर अभिमुख जीवन बितानेका प्रयत्न है; और ज्यों ही हमारी आंखें खुल जाती हैं, हम इस प्रयत्नको लगातार देख पाते हैं।

हे प्रभु, मेरा हृदय तेरे लिये प्यासा है और मेरा विचार सदा तुझे खोजता है। एक मूक भक्ति-भावमें मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

१५ मार्च, १९१४

मेरा मन तुझसे ओतप्रोत है, मेरा हृदय और मेरी समस्त सत्ता तेरी उपस्थितिसे परिपूर्ण है, शांति अधिकाधिक बढ़ रही है और वह एक ऐसी विशिष्ट और अमिश्रित प्रसन्नता, एक स्थिर प्रशांतिकी प्रसन्नता उत्पन्न कर

रही है जो विश्वके समान विशाल तथा उन अथाह गहराइयोंके समान गंभीर प्रतीत होती है जो तेरी ओर ले जाती है।

ओह! ये नीरव और पवित्र रात्रियां! जब कि मेरा उमड़ता हुआ हृदय तेरे दिव्य प्रेमके साथ संयुक्त हो जाता है, समस्त वस्तुओंमें पैठनेके लिये, समस्त जीवनका आलिंगन करनेके लिये, समस्त विचारको आलोकित और पुनः जाग्रत् करनेके लिये, समस्त भावनाको शुद्ध करनेके लिये, समस्त प्राणियोंमें तेरी अद्भुत उपस्थितिको और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली अवर्णनीय चेतनाको जगानेके लिये तेरे दिव्य प्रेमके साथ एक हो जाता है।

हे प्रभु, ऐसी कृपा कर कि यह चेतना और यह शांति दिन-प्रतिदिन हमारे अंदर बढ़ती चली जाय जिससे कि हम तेरे दिव्य और अद्वितीय विधानके सच्चे माध्यम बन सकें।

१७ मार्च, १९१४

ज्योंही भौतिक अवस्थाएं थोड़ी कठिन हो जाती हैं और उनके फल-स्वरूप कुछ विकलता आ जाती है, त्योंही यदि व्यक्ति अपने-आपको तेरी इच्छाके सामने पूर्ण रूपसे समर्पित करना जान ले, जीवन अथवा मृत्युको, स्वस्थता अथवा रोगको तुच्छ समझने लगे तो, समस्त सत्ता तेरे प्रेम और जीवनके विधानके साथ तत्काल ही समस्वरता प्राप्त कर लेती है और समस्त भौतिक अस्वस्थता समाप्त हो जाती है और अपना स्थान एक स्थिर, गंभीर और शांतिपूर्ण सुखदावस्थाको दे देती है।

मैंने यह देखा है कि यदि हम कोई ऐसा कार्य करने लगें जिसमें शारीरिक सहनशीलताकी अत्यधिक आवश्यकता हो तो भी जो चीज हमें सबसे अधिक थकाती है वह है हमारे मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंके विषयमें पहलेसे ही सोचने लगना। केवल वर्तमान क्षणकी ही कठिनाइयोंको देखना सदा ही अधिक बुद्धिमत्ताका काम है; इससे प्रयत्न अधिक सरल हो जाता है, क्योंकि तब वह सदा ही अपनी शक्तिकी मात्रा, अपनी सामर्थ्यसे निर्धा-रित होता है। शरीर एक अद्भुत यंत्र है, परंतु हमारा मन इससे काम लेना नहीं जानता और इसकी कोमलता और नमनीयताको बढ़ानेके स्थानपर इसमें एक ऐसी कठोरता भर देता है जो पूर्वनिर्धारित विचारों और प्रति-कूल सुझावोंसे उत्पन्न होती हैं।

पर हे प्रभु, सर्वोच्च विज्ञान है तेरे साथ संयुक्त होना, तुझमें पूर्ण

विश्वास रखना, तुझमें निवास करना, 'तू' होना; और तब तेरी सर्वशक्तिमत्ताको अभिव्यक्त करनेवाले मनुष्यके लिये कुछ भी असंभव नहीं होगा।

प्रभो, मेरी अभीप्सा एक मौन स्तुति, एक मूक पूजाकी भांति तेरी ओर उठ रही है, और तेरा दिव्य प्रेम हृदयको आलोकित कर रहा है।

ओ दिव्य स्वामी, मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

१८ मार्च, १९१४

तू पूर्ण ज्ञान है, असीम चेतना है, जो तेरे साथ एक हो जाता है वह भी जबतक एकत्व रहता है तबतकके लिये सर्वज्ञ हो जाता है। किंतु इस अवस्थाको प्राप्त करनेसे पहले भी जो अपनी सत्ताकी पूर्ण सत्यतामें, अपनी समस्त चेतन इच्छा-शक्तिके साथ अपने-आपको तुझे समर्पित कर चुका है, जिसने अपने अंदर और अपने समस्त प्रभाव-क्षेत्रमें तेरे प्रेमके दिव्य विधानकी अभिव्यक्ति और विजयमें सहयोग देनेके लिये पूरा प्रयत्न करनेका निश्चय कर लिया है, वह देखता है कि उसके जीवनमें सब कुछ बदल गया है और सब घटनाओंने तेरे विधानको व्यक्त करना और उसके अपने समर्पणको सहज बनाना शुरू कर दिया है, उसके लिये जो कुछ भी घटता है वह सर्वश्रेष्ठ होता है। और यदि उसके मनमें अभी कुछ भी धुंधलापन, कोई अज्ञानमय इच्छा बाकी हो, जो कभी-कभी उसके तत्काल ज्ञान प्राप्त करनेमें बाधा उपस्थित करती हो, तो भी उसे देर-सबेर यह पता लग जाता है कि एक दयालु शक्ति है जो उसकी, स्वयं उससे भी रक्षा कर रही है और ऐसी अनुकूल अवस्थाएं जुटा रही है जिनसे उसका विकास और रूपांतर हो सके, पूर्ण रूपांतर और सार्थकता सिद्ध हो सके।

ज्योंही हम इसके प्रति चेतन होकर इसमें अपना विश्वास जमा लेते हैं, त्योंही हमें आनेवाली परिस्थितियोंकी और घटनाक्रमके विकासकी जरा भी चिंता नहीं रहती। परम शांतिके साथ हम वही करते हैं जो हम सर्वश्रेष्ठ समझते हैं; हमें यह विश्वास होता है कि इसका परिणाम सर्वश्रेष्ठ ही होगा, चाहे यह वह परिणाम न भी हो जिसकी, हम अपनी सीमित बुद्धिमें, आशा कर रहे हैं।

प्रभु, इसीलिये हमारा हृदय हलका है, हमारा विचार विश्रांति अनुभव कर रहा है। इसीलिये हम अपने समस्त विश्वासके साथ तेरी ओर मुड़ते हैं और शांतिपूर्वक कहते हैं:

तेरी इच्छा पूर्ण हो, इसीमें सच्ची समस्वरता चरितार्थ होगी।

१९ मार्च, १९१४

हे भगवान्, हे शाश्वत गुरु! तू, जिसे न तो हम कोई नाम दे सकते हैं और न समझ ही सकते हैं, पर जिसे हम प्रत्येक मुहूर्त्त अधिकाधिक प्राप्त करना चाहते हैं, हमारी बुद्धिको आलोकित कर, हमारे हृदयको उद्भासित कर, हमारी चेतनाको रूपांतरित कर; ऐसी कृपा कर कि प्रत्येक मनुष्य अपने सच्चे जीवनके प्रति जाग्रत् हो, तेरे दिव्य और विशुद्ध प्रेमके अंदर — उस प्रेमके अंदर जो समस्त शांति और समस्त सुखका मूल है — आश्रय ग्रहण करनेके लिये वह अपने अहंकार और उसके अनुगत दुःख-दर्दसे दूर हटे। तुझसे परिपूर्ण मेरा हृदय अनंततक फैलता हुआ प्रतीत हो रहा है और तेरी उपस्थितिसे उद्भासित मेरी बुद्धि स्वच्छतम हीरेकी तरह चमक रही है। तू अद्भुत जादूगर है, ऐसा जादूगर जो प्रत्येक वस्तुको रूपांतरित करता है, जो असौंदर्यसे सौंदर्य, अंधकारसे ज्योति, कीचड़से निर्मल जल, अज्ञानसे ज्ञान और अहंकारके अंदरसे दयालुता उत्पन्न करता है।

तेरे अंदर, तेरे द्वारा, तेरे लिये ही हम जीते हैं और तेरा विधान ही हमारे जीवनका सर्वोपरि स्वामी है।

सर्वत्र तेरी इच्छा पूरी हो, सारी पृथ्वीपर तेरी शांतिका राज्य हो।

२० मार्च, १९१४

तू चेतना और प्रकाश है, तू सबके अंतस्तलमें उपस्थित शांति है, रूपांतर करनेवाला दिव्य प्रेम है, अंधकारपर विजय प्राप्त करनेवाला ज्ञान है। तेरी अनुभूति प्राप्त करने तथा तेरे लिये अभीप्सा करनेके लिये हमें पहले अवचेतनाके विशाल सागरसे बाहर निकलना होगा, अपने-आपको निर्मल बनाना, आत्मदान करनेके लिये अपने-आपको जानना तथा अपनी सत्ताकी रूपरेखाको समझना आरंभ कर देना होगा, क्योंकि केवल वही आत्मदान कर सकता है जो अपने स्वरूपको अधिकृत कर लेता है। और इस निर्मलताको प्राप्त करनेके लिये, बीचकी इस आकाररहित अवस्थासे

निकलनेके लिये कितने प्रयत्न, कितने संघर्ष करने पड़ते हैं। और फिर एक बार जब व्यक्तित्वका निर्माण हो जाता है, अपने-आपको दे डालने, समर्पित करनेके लिये भी कितने प्रयत्न और संघर्ष करने पड़ते हैं।

बहुत कम व्यक्ति ही इच्छापूर्वक इन प्रयत्नोंमें अपने-आपको लगाते हैं; जीवन ही अपनी अदृष्ट क्रूरताके साथ मनुष्योंको, उनके न चाहते हुए भी, इन प्रयत्नोंके लिये विवश करता है, क्योंकि इसके बिना उनका काम नहीं चलता, और फिर धीरे-धीरे, सब बाधाओंके होते हुए भी, तेरा कार्य पूरा होने लगता है।

२१ मार्च, १९१४

नित्य प्रातःकाल मेरी अभीप्सा तेरी ओर उठती है और अपने संतुष्ट हृदयकी नीरवतामें मैं इच्छा करती हूं कि तेरा प्रेमका विधान व्यक्त हो, तेरी इच्छा चरितार्थ हो और, मैंने पहलेसे ही उन परिस्थितियोंको, जो उस विधान और उस इच्छाको व्यक्त करेंगी, आनंद और परम शांतिके साथ स्वीकार कर लिया है।

ओह, इस बातके लिये क्यों व्याकुल हुआ जाय या इच्छा की जाय कि हमारे लिये घटनाएं एक प्रकारसे घटें और दूसरे प्रकारसे नहीं! यह क्यों सोचा जाय कि परिस्थितियोंका यह समूह ही उत्कृष्ट संभावनाओंकी अभि-व्यक्ति होगा और उसके बाद फिर अपने-आपको एक कठोर संघर्षमें झोंक दिया जाय जिससे वे संभावनाएं चरितार्थ हो सकें। क्यों न अपनी समस्त शक्तिकी पूर्ति आंतरिक विश्वासकी स्थिरतामें, केवल इसी इच्छामें लगा दी जाय कि तेरा विधान ही सर्वत्र और सदा सब कठिनाइयोंपर, समस्त अंध-कारपर विजय प्राप्त करे! क्षितिज कितना विस्तृत हो जाता है, ज्यों ही हम इस वृत्तिको ग्रहण करना सीख जाते हैं; सब प्रकारकी चिंताएं समाप्त हो जाती हैं और अपना स्थान स्थिर प्रकाशको, निःस्वार्थताकी समस्त शक्तिको दे देती हैं! हे प्रभु, जो तू चाहे वही चाहनेका अर्थ है तेरे सतत संपर्कमें निवास करना, समस्त घटनाओंसे मुक्त होना, समस्त संकीर्णताओंसे बचना, अपने फेफड़ोंको शुद्ध और स्वास्थ्यकारी वायुसे भरना, निरर्थक भ्रांतिसे छुटकारा पाना, समस्त कठिन बोझोंसे हलका होना जिससे व्यक्ति अपने चौकस पगोंसे उस एकमात्र लक्ष्यकी ओर दौड़ सके जो प्राप्त करनेके योग्य है और वह है तेरे दिव्य विधानकी विजय!

२२ मार्च, १९१४

हे प्रभु, किस आनंदपूर्ण विश्वासके साथ मैं आज प्रातःकाल तुझे नमस्कार करती हूं....।

हे प्रभु, प्रेमके दिव्य स्वामी, उनकी चेतना और उनके हृदयको आलोकित कर। उन्होंने तेरी ओर प्रवृत्त होनेका प्रयत्न किया था, किंतु उनके अज्ञानके कारण किसी प्रकार उनकी प्रार्थनाएं शायद तेरी ओर नहीं उठ सकीं और उनके झूठे विचारोंने उनकी अभीप्साका मार्ग बन्द कर दिया। फिर भी अपनी करुणाके कारण तू समस्त सद्भावनाको उचित विकास प्रदान करता है और इसके लिये कि तेरी दिव्य ज्योति बुद्धियोंको आलोकित कर दे तथा तेरा उच्च प्रेम उनके हृदयोंमें पैठकर उन्हें उस पवित्र और उच्च दयालुतासे भर दे जो तेरे विधानकी एक श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है, केवल सद्हृदयताका एक आलोकित क्षण भी काफी है। प्रदान कर कि जिन क्षणोंमें तेरे सच्चे संपर्कमें आकर तेरी इच्छाके अनुसार मैंने उनके लिये जो चाहा था उसे वे तब ग्रहण कर सकें जब वे बाह्य आवश्यकताओंको भूलनेका प्रयत्न करते हुए अपने उच्चतम विचार, अपनी श्रेष्ठतम भावनाकी ओर मुड़ें।

ऐसी कृपा कर कि तेरी उत्कृष्ट उपस्थितिकी परम शांति उनके अंदर जाग्रत् हो जाय।

२३ मार्च, १९१४

मेरे विचारमें आदर्श अवस्था वह है जिसमें, तेरी चेतनाके प्रति सदैव सचेतन रहकर, हम प्रत्येक क्षण, सहज रूपमें, बिना सोचे, ठीक-ठीक जानते रहें कि तेरे विधानको श्रेष्ठतम ढंगसे व्यक्त करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये। इस अवस्थाको मैं जानती हूं क्योंकि कई बार मैं इसमें रह चुकी हूं, किंतु प्रायः ही "यह कैसे हुई" यह ज्ञान अज्ञानके कुहरेसे छिप जाता है। तब मनुष्यको विचारकी सहायता लेनी पड़ती है और विचार सदा बहुत अच्छा परामर्शदाता नहीं होता। उन कार्योंको तो छोड़ दो जो हम प्रतिक्षण, विचारनेके लिये अवकाश न होते हुए, तात्कालिक प्रेरणाकी दयापर निर्भर रहकर करते हैं। किस अंशमें यह तेरे विधानके अनुकूल या प्रतिकूल पड़ता है, यह अवचेतनाकी अवस्थापर, उस चीजपर जो उस समय उसमें सक्रिय होती है निर्भर करता है, एक बार जब कार्य पूरा हो जाता है, यदि वह कुछ महत्त्वपूर्ण है, यदि हम उसे पुनः विचार लेते हैं, उसका

विश्लेषण कर लेते हैं, उसे समझ लेते हैं तो वह आगेके लिये शिक्षा बन जाती है तथा हमें उस प्रेरक शक्तिके प्रति सचेतन होने योग्य बना देती है जो कार्य कराती है और इस प्रकार अवचेतनाकी उस अवस्थासे हमें सचेतन कर देती है जो अभी भी हमपर शासन करती है और जिसे नियंत्रणमें लाना चाहिये।

यह असंभव है कि किसी भी जागतिक कर्मका अच्छा तथा बुरा पक्ष न हो। प्रेमके दिव्यतम विधानको सर्वश्रेष्ठ ढंगसे व्यक्त करनेवाले कर्मोंमें भी वर्तमान जगत्‌की अव्यवस्था और अंधकारका एक अंश रहता ही है। कुछ लोग जिन्हे हम निराशावादी कहते हैं, प्रायः समस्त वस्तुओंका केवल अंधकारमय पक्ष ही देखते हैं। इसके विपरीत, आशावादियोंको केवल सौन्दर्य और सामंजस्यका पक्ष ही दिखायी देता है। और यदि अज्ञानपूर्वक आशावादी बनना उपहासास्पद और मूर्खतापूर्ण है, तो क्या ज्ञानपूर्वक आशावादी बनना आनंदपूर्ण विजय नहीं है! निराशावादियोंकी दृष्टिमें जो भी कोई कुछ करता है, वह सदैव बुरा एवं मूर्खता और अहंकारसे पूर्ण होगा; उन्हें कोई कैसे संतुष्ट कर सकता है? यह एक असंभव कार्य है।

केवल एक उपाय है: अपने-आपको यथासंभव संपूर्ण ढंगसे एक ऐसे उच्चतम और पवित्रतम प्रकाशके साथ जिसे हम विचारमें ला सकते हैं, जोड़ देना, अपनी चेतनाको यथासंभव पूरी तरहसे उस पूर्ण चेतनाके साथ एक कर देना, केवल उसीसे समस्त प्रेरणाएं ग्रहण करनेका प्रयत्न करना जिससे हम पृथ्वीपर उसकी अभिव्यक्ति अच्छे-से-अच्छे ढंगसे कर सकें और उसकी शक्तिमें विश्वास रखते हुए घटनाओंपर अविचल शांतिके साथ विचार कर सकें।

क्योंकि वर्तमान अभिव्यक्तिमें सब कुछ अनिवार्य रूपसे मिला-जुला है, सबसे अधिक बुद्धिमत्ताकी बात यह होगी कि हम यथाशक्य श्रेष्ठतम प्रयत्न करें, उत्तरोत्तर उच्च प्रकाशकी प्राप्तिके लिये यत्नशील हों और यह स्वीकार करें कि चरम पूर्णता इसी क्षण चरितार्थ नहीं हो सकती।

फिर भी हमें क्या सदा ही उस अगम पूर्णताके लिये उत्साहपूर्वक अभीप्सा नहीं करनी चाहिये! ...

२४ मार्च, १९१४

कलके अपने समस्त चिंतनके फलस्वरूप मैं इस निश्चयपर पहुंची हूं कि मेरे एकमात्र कष्टका कारण यह है कि मैं तेरे विधानके साथ न तो पहले पर्याप्त रूपमें पूर्णतया एक थी और न अभी हो पायी हूं। और यह कष्ट ठीक इस तथ्यसे पैदा होता है कि एकात्मता पूर्ण नहीं है; कारण, यदि यह पूर्ण होती तो मैं अपनेसे यह न पूछती कि यह पूर्ण है या नहीं और दूसरी ओर मैं अनुभवसे जानती हूं कि तब सब कष्ट मेरे लिये असंभव हो जायंगे।

किंतु जब कोई भूल या बुरा काम हो जाय, तो उस समय जो सच्चा विचार व्यक्तिके अंदर आना चाहिये वह यह नहीं कि "मुझे कार्य अधिक अच्छी तरह करना चाहिये था, इसकी जगह यह करना चाहिये था"; वरन् यह कि "मैं उस नित्य चेतनाके साथ पर्याप्त रूपमें एक नहीं हुआ था, मुझे इस निश्चित और पूर्ण ऐक्यको अधिकाधिक चरितार्थ करनेका प्रयत्न करना चाहिये !"

कल तीसरे पहर मौन चिंतनके लंबे घंटोंमें, मैं अंतमें यह समझ गयी कि जिसके बारेमें मनुष्य सोचता है उसके साथ सच्ची एकात्मताका क्या अर्थ है। यह कहा जा सकता है कि मैंने इस उपलब्धिका स्पर्श कर लिया है, एक नैतिक अवस्था प्राप्त करके नहीं, बल्कि केवल विचारको स्थिर और नियंत्रित करके। मैं यह भी समझ गयी हूं कि इस उपलब्धिको पूर्ण बनानेके लिये मुझे बहुत लंबे समयतक चिंतन करनेकी आवश्यकता है। यह एक ऐसी चीज है जिसकी मैं भारतवर्षकी यात्रासे आशा करती हूं, पर हां, तभी, यदि, हे प्रभु, तू इसे अपनी सेवाके लिये उपयोगी समझता हो।

मेरा विकास धीमे, बहुत धीमे हो रहा है, किंतु मैं आशा करती हूं कि इसकी क्षतिपूर्ति इस बातसे हो जायगी कि वह सदा रहनेवाला तथा समस्त उतार-चढ़ावसे सुरक्षित होगा।

ऐसी कृपा कर कि मैं तेरा कार्य कर सकूं, तेरी पूर्ण अभिव्यक्तिमें योग दे सकूं।

२५ मार्च, १९१४

बिलकुल सदाकी भांति, अदृष्ट और नीरव रूपमें किंतु सर्वशक्तिमत्ताके साथ तेरा कार्य संपन्न हुआ और उन आत्माओंको जो बंद प्रतीत होती थीं तेरी दिव्य ज्योतिका अनुभव जाग उठा है। मैं जानती थी कि तेरी उपस्थितिके लिये आवाहन करना कभी निरर्थक नहीं जाता, और यदि अपने हृदयकी सच्चाईसे हम किसी भी शरीरद्वारा, वैयक्तिक शरीर अथवा मानवीय सामूहिक सत्ताद्वारा, तेरे साथ संपर्क स्थापित करें तो उस शरीरकी अवचेतना — अज्ञानके रहते भी — पूर्णतया रूपांतरित हो जाती है। किंतु जब यह रूपांतर एक या अनेक तत्त्वोंमें सचेतन हो जाता है, जब राखके नीचे सुलगती हुई वह चिनगारी एकदम धधक उठती है और समस्त सत्ताको आलोकित कर देती है तब तेरे सर्वोच्च कार्यके आगे नतमस्तक होनेमें हमें प्रसन्नता अनुभव होती है, तेरी अजेय शक्ति एक बार फिर प्रमाणित हो जाती है और हम साधिकार प्रतीक्षा करने लगते हैं कि मनुष्यजातिमें सच्चे सुखकी एक नयी भवितव्यता और जुड़ गयी है।

प्रभु, मेरी तीव्र कृतज्ञता तेरी ओर उठ रही है जिसमें दुःखी मानवजातिकी कृतज्ञता भी शामिल है जिसे तू आलोकित, रूपांतरित और गौरवान्वित करता है, गौरव तथा ज्ञानकी शांति प्रदान करता है।

२८ मार्च, १९१४

अपने प्रस्थानके समयसे सदा अधिकाधिक ही, हम समस्त वस्तुओंमें तेरा दिव्य हस्तक्षेप देख रहे हैं, सर्वत्र ही तेरा विधान अभिव्यक्त हो रहा है और मुझे इस बातका आंतरिक विश्वास हो जाना चाहिये कि यह सहज और स्वाभाविक है, जिससे कि मैं आश्चर्यपर आश्चर्य न अनुभव करती रहूं।

किसी भी क्षण मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि मैं तुझसे बाहर रहती हूं, और क्षितिज मुझे इतने विशाल और गहराइयां इतनी आलोकित और साथ ही इतनी अथाह पहले कभी प्रतीत नहीं हुईं। ओ दिव्य गुरु, वर दे कि हम पृथ्वीपर अपने कार्यको अधिकाधिक जान जायं और अधिकसे-अधिक अच्छी तरह संपन्न कर सकें, हम अपने अंदरकी समस्त शक्तिका पूर्ण-

तया उपयोग करें, और तेरी सर्वोच्च उपस्थिति हमारी आत्माकी नीरव गहराइयोंमें, हमारे समस्त विचारों, भावों तथा कर्मोंमें उत्तरोत्तर पूर्ण रूपसे व्यक्त हो।

तुझे इस प्रकार संबोधन करना मुझे कुछ विचित्र-सा लगता है, क्योंकि तू ही तो मेरे अंदर निवास करता है, विचार करता है और प्रेम करता है।

पांडिचेरी, २९ मार्च, १९१४

ओ तू, जिसे हमें जानना चाहिये, समझना चाहिये, उपलब्ध करना चाहिये, पूर्ण चैतन्य, सनातन नियम, तू जो हमारा पथप्रदर्शन करता है, हमें आलोकित, निर्धारित एवं प्रेरित करता है, ऐसी कृपा कर कि ये निर्बल आत्माएं सशक्त हो सकें और भीरु पुनः आश्वस्त हो उठें। इस सबको मैं तेरे हाथोंमें उसी प्रकार सौंपती हूं जिस प्रकार मैं हम सबकी भवितव्यता तुझे सौंपती हूं।

३० मार्च, १९१४

उनकी उपस्थितिमें — जो तेरे पूर्ण सेवक हैं, जो तेरी उपस्थितिकी पूर्ण चेतना उपलब्ध कर चुके हैं — मैंने यह अतिशय रूपमें अनुभव किया कि मैं अभी उससे, जो मैं चरितार्थ करना चाहती हूं दूर, बहुत दूर हूं। और अब मैं जान गयी हूं कि जिसे मैं उच्चतम, श्रेष्ठतम, और पवित्रतम समझती हूं वह उस आदर्शकी तुलनामें, जिसे अब मुझे मानना होगा, अंधकार और अज्ञान है। परंतु यह अनुभव, निरुत्साहित करना तो दूर रहा, अभीप्सा एवं साहसको तथा सब बाधाओंको जीतकर अंतमें तेरे विधान और तेरे कर्मके साथ तद्रूप हो जानेके संकल्पको प्रेरित तथा पुष्ट करता है।

थोड़ा-थोड़ा करके आकाश स्पष्ट होता जा रहा है, रास्ता साफ होने लगा है और हम उत्तरोत्तर अधिक निश्चयात्मक ज्ञानमें बढ़ते जा रहे हैं।

अधिक चिंता नहीं अगर सैकड़ों मनुष्य घने अंधकारमें डूबे हुए हैं। वे, जिन्हें हमने कल देखा — वे तो पृथ्वीपर ही हैं। उनकी उपस्थिति

इस बातका काफी प्रमाण है कि एक दिन आयेगा जब अंधकार प्रकाशमें परिवर्तित हो जायगा, जब तेरा राज्य पृथ्वीपर कार्य-रूपमें स्थापित होगा।

हे नाथ, इस आश्चर्यके दिव्य रचयिता, जब मैं इसका चिंतन करती हूं तो मेरा हृदय आनंद और कृतज्ञतासे उमड़ उठता है और मेरी आशा असीम हो जाती है।

मेरा आदर शब्दातीत हो जाता है, मेरी अर्चना गंभीर हो जाती है।

१ अप्रैल, १९१४

मुझे ऐसा लगता है कि हम तेरे गर्भगृहमें पैठ गये हैं और हमने स्वयं तेरी इच्छाको जान लिया है। मेरे अंदर बृहत् आनंद और गभीर शांति-का राज्य है। मेरे अंदरकी सभी रचनाएं एक व्यर्थ स्वप्नकी नाईं लुप्त हो गयी हैं और मैं अपने-आपको बिना किसी ढांचे और बिना किसी सुव्यवस्थित आकारकी एक ऐसी सत्ताके रूपमें तेरी असीमताके सामने उपस्थित पाती हूं जिसने अभीतक कोई व्यष्टिरूप नहीं पाया। ये सब बीती हुई बातें अपने बाह्य रूपमें हास्यास्पद और असंगत मालूम होती हैं, पर मैं जानती हूं कि ये भी अपने समयपर उपयोगी थीं।

लेकिन अब सब कुछ बदल गया है: एक नयी स्थिति आरंभ हो गयी है।

२ अप्रैल, १९१४

प्रतिदिन जिस क्षण मैं लिखना चाहती हूं, मेरे कार्यमें बाधा पड़ती है, मानों हमारे सामने प्रकट होनेवाला यह नया काल एकाग्रताका नहीं बल्कि विस्तारका काल हो। हमें प्रतिक्षणकी क्रियाओंके द्वारा तेरी सेवा करनी चाहिये और तेरे साथ एक होना चाहिये; केवल गहरी और नीरव एकाग्रता अथवा लिखित या अलिखित ध्यानके समय ही नहीं।

परंतु मेरा हृदय तेरे लिये गीत गाते हुए नहीं थकता, और मेरे विचार निरंतर तुझसे भरे रहते हैं।

३ अप्रैल, १९१४

मुझे ऐसा लगता है कि मैं एक नये जीवनमें जन्म लेने जा रही हूं और भूतकालकी जितनी भी पद्धतियां, रीति-रिवाज हैं वे अब किसी काम नहीं आ सकते। मुझे मालूम होता है कि जो सब चीजें परिणामस्वरूप दीखती थीं वे तैयारीके सिवा और कुछ नहीं थीं। मैं अनुभव कर रही हूं कि मैंने अबतक कुछ नहीं किया, मैंने आध्यात्मिक जीवन यापन ही नहीं किया, मैंने तो उस पथपर पैरभर रखा है जो उस ओर (आध्यात्मिक जीवनकी ओर) ले जाता है। मुझे लगता है कि मैं कुछ नहीं जानती, मैं कुछ भी प्रकट करनेमें असमर्थ हूं, मुझे तो अभी सब अनुभव प्राप्त करने हैं। यह तो ऐसा है मानों मेरा सारा भूतकाल ही मुझसे छीन लिया गया हो, मेरी भूल-भ्रांतियां और साथ ही मेरी जीतें भी ले ली गयी हों, मानों यह सब कुछ एक ऐसे नवजात शिशुको जगह देनेके लिये उड़ गया हो जिसे अपना सारा जीवन ही गढ़ना हो, जिसका कोई कर्म न हो, जिसे कोई ऐसा अनुभव न हो जिससे वह लाभ उठा सके, पर साथ ही जिसकी कोई भूल भी न हो जिसे अब उसे सुधारना पड़े। मेरा मस्तिष्क समस्त ज्ञान और समस्त निश्चयात्मक विचारसे खाली है, परंतु साथ ही सभी व्यर्थ विचारोंसे भी रहित है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मैं बिना संघर्षके अपने-आपको इसी अवस्थामें छोड़ देना सीख लूं, यदि मैं जानने या समझनेकी चेष्टा न करूं, यदि मैं पूर्ण रूपसे एक भोले और सरल बालकके जैसा बन जाना स्वीकार कर लूं तो मेरे सामने कुछ नयी संभावनाएं खुल जायंगी। मैं जानती हूं कि अब मुझे पूरी तरह अपने-आपको त्याग देना चाहिये और एक नितांत कोरे पृष्ठके जैसा बन जाना चाहिये जिसपर, हे नाथ, तेरा विचार, तेरी ही इच्छा स्वच्छंदतापूर्वक अंकित हो सके और सब प्रकार-की विकृतिसे सुरक्षित रहे।

मेरे हृदयसे एक विशाल कृतज्ञताकी भावना उठ रही है, मुझे ऐसा लगता है कि आखिरकार मैं उस देहलीपर पहुंच गयी हूं जिसकी मुझे इतनी खोज थी।

हे भगवान्! ऐसी कृपा कर कि मैं इतनी अधिक शुद्ध, इतनी अधिक नैर्व्यक्तिक (निरहंकार), तेरे दिव्य प्रेमसे इतनी अधिक सशक्त बन जाऊं कि इसे निश्चित रूपमें पार कर सकूं।

ओ! बिना किसी अंधकारके और बिना किसी बाधाके बस तेरा ही हो जाना!

४ अप्रैल, १९१४

हे भगवान्! मेरी आराधना तीव्र वेगसे तेरी ओर ऊपर उठ रही है, मेरी समूची सत्ता एक मूर्तिमान अभीप्सा बन गयी है, एक ऐसी दीपशिखा बन गयी है जो तुझे निवेदित हो चुकी है।

नाथ, हे नाथ, हे मेरे परमप्रिय स्वामी! बस तू ही मेरे अंदर जीवन धारण कर रहा है और संकल्प कर रहा है!

यह शरीर तेरा यंत्र है; यह संकल्प-शक्ति तेरी सेविका है; यह बुद्धि तेरा ही उपकरण है; और यह सब स्वयं तेरे सिवा और कुछ नहीं है।

७ अप्रैल, १९१४

तब भला मेरा साहस ही क्या है कि मैं बराबर संघर्षसे बचनेका प्रयत्न करती हूं? तब भला मेरी शक्ति ही क्या है कि मैं स्वभावतः ही कोई नया प्रयास करनेसे हिचकती हूं और उसके लिये अपने ऊपर कोई भरोसा न रख निष्क्रिय रूपसे प्रतीक्षा करनेकी कोशिश करती हूं और पहलेके प्रयासोंके फलोंपर ही निर्भर करती हूं? काम करनेके लिये मुझे अपने ऊपर दबाव डालनेकी जरूरत होती है और मेरा मौन ध्यान अंशतः आलस्यके कारण आता है...। यह सब मुझे अधिकाधिक स्पष्ट दिखायी दे रहा है। अबतक मैंने जो कुछ किया है वह मुझे 'कुछ नहीं' जैसा ही प्रतीत होता है। हे प्रभु! जो यंत्र मैंने तेरी सेवामें लगाया है उसकी तुच्छता और उसकी सीमाएं मुझे स्पष्ट दीख रही हैं और मुझे इस विचार-पर दुःखके साथ थोड़ी हंसी भी आती है कि कभी-कभी मैं अपनी सत्ताके विषयमें, उसके प्रयासों तथा उन प्रयासोंके परिणामोंके विषयमें अच्छी राय बनाया करती थी। बराबर ही मैं यह समझती हूं कि मैं सच्चे जीवनकी इस देहलीपर पहुंच गयी हूं, पर यह तो एक आश्वासन जैसी चीज है जो मुझे दी गयी है, यह कोई सच्ची सिद्धि जैसी चीज कदापि नहीं है; यह तो एक खिलौना है जो बच्चोंको दिया जाता है, एक पुरस्कार है जो दुर्बलोंके सम्मुख रखा जाता है।

तब भला मैं कब सच्चे रूपमें सबल बनूंगी, पूर्ण रूपसे साहस, शक्ति, वीरता और शांत-स्थिर उत्साह दिखाऊंगी: तब कब भला मैं पूरी तरहसे अपने व्यक्तित्वको भूल जाऊंगी जिसमें कि मैं अब उस यंत्रके सिवा और कुछ न रह जाऊं, जो एकमात्र उन्हीं शक्तियोंसे गठित हो जिन्हें उसे अभि-

व्यक्त करना है ? तब कब मेरी एकत्वकी चेतनामें किसी प्रकारका तमस् फिर नहीं घुसने पायेगा : तब कब भागवत प्रेमकी मेरी भावनाके अंदर किसी प्रकारकी दुर्बलता फिर कभी नहीं घुसने पायेगी ?

हे नाथ! अब जब कि मैंने ये प्रश्न उठाये हैं, मुझे ऐसा लगता है कि मेरे अंदरके सब विचार मर गये हैं। मैं अपने सचेतन मनको ढूंढ़ती हूं और अब मैं उसे कहीं नहीं पाती; मैं अपने व्यक्तित्वको ढूंढ़ती हूं और उसे मैं कहीं नहीं देखती; मैं अपनी व्यक्तिगत इच्छा-शक्तिको ढूंढ़ती हूं और उसे भी अनुपस्थित पाती हूं। मैं तुझे ढूंढ़ती हूं, हे नाथ, और तू भी मौन है....। एकमात्र है नीरवता....निश्चल-नीरवता।

अब मुझे लगता है कि मैं तेरी आवाज सुन रही हूं: "कभी तूने पूर्ण रूपसे मरना नहीं सीखा। बराबर ही तेरे अंदरकी कोई चीज जानना, देखना और समझना चाहती है। संपूर्ण रूपसे त्याग दे, मर जाना सीख, इस अंतिम दीवालको तोड़ डाल जो तुझे मुझसे अलग करती है; अपने आत्मसमर्पणके कार्यको बिना कहीं कुछ बचाये पूरा कर।" हाय, मेरे प्रभुवर! बहुत दिनोंसे मैं इसे चाहती हूं, पर अभीतक इसे कर नहीं पायी। अब क्या तू मुझे इसे करनेकी शक्ति प्रदान करेगा ?

हे नाथ! हे मेरे शाश्वत मधुर स्वामिन्! इस बाधाको भंग कर डाल जो मुझे इतनी पीड़ा पहुंचा रही है...मुक्त कर मुझे स्वयं मुझसे!

८ अप्रैल, १९१४

हे भगवान्! मेरा विचार शांत है और मेरा हृदय एकाग्र है; मैं गभीर भक्ति-भाव और असीम विश्वासके साथ तेरी ओर मुड़ रही हूं; मैं जानती हूं कि तेरा प्रेम सर्वशक्तिमान् है और तेरे न्यायका ही राज्य पृथ्वीपर होगा; मैं जानती हूं कि वह समय समीप आ गया है जब कि अंतिम पर्दा हट जायगा और समस्त विरोध दूर हो जायगा और उसके स्थानमें शांति और सामंजस्यपूर्ण प्रयासका युग आ जायगा।

हे प्रभु! मनको एकाग्र और हृदयको शांत करके मैं तेरे समीप आ रही हूं और मेरी समस्त सत्ता तेरी दिव्य उपस्थितिसे भर गयी है; ऐसा वर दे कि अब मैं बराबर सब चीजोंमें केवल तुझे ही देखूं और सब कुछ तेरी दिव्य ज्योतिसे चमचमा उठे। हे नाथ! ऐसा वर दे कि समस्त घृणा दूर हो जाय, हिंसा-भाव मिट जाय, संपूर्ण भय भाग जाय,

शंका-संदेह निर्मूल हो जाय, द्रोह-भाव पराजित हो जाय और इस गांवमें, इस देशमें, इस धरतीपर, प्रत्येक मनुष्यका हृदय अपने अंदर समस्त रूपांतरके स्रोत, इस महान् प्रेमको स्पंदित होता हुआ अनुभव करे।

हे प्रभु! कितनी तीव्र पुकारके साथ मैं तेरे प्रेमकी याचना कर रही हूं। ऐसा वर दे कि मेरी अभीप्सा इतनी सबल हो जाय कि वह हर जगह अपनी जैसी ही अभीप्सा जगा सके: ओ! दया, न्याय और शांति सर्वोपरि स्वामी बनकर राज्य करें, मूढ़ अहंकार पराजित हो जाय और अंधकार तेरी विशुद्ध ज्योतिसे एकाएक आलोकित हो उठे; अंधे देखने लगें, बहरे सुनने लगें, सब जगहोंमें तेरे विधानकी घोषणा हो जाय और सब लोग, निरंतर बढ़ती हुई एकताके साथ, नित्य अधिकाधिक पूर्ण बनती हुई समस्वरताके साथ, मात्र एक सत्ताकी नाईं, तेरे साथ एकात्म हो जाने तथा पृथ्वीपर तुझे अभिव्यक्त करनेके लिये तेरी ओर अपनी बांहें फैला दें।

हे प्रभु! अपनी चिंतन-शक्तिको एकाग्र करके, अपने हृदयको सजीव-प्रसन्न बनाकर मैं बिना कुछ बचाये पूरी तरहसे अपने-आपको तुझे सौंप रही हूं और मेरा 'मैं' तेरे अंदर विलीन हो रहा है!

१० अप्रैल, १९१४

अकस्मात् पर्दा फट गया और क्षितिज अनावृत हो गया। स्पष्ट दृष्टि-के सामने मेरी सारी सत्ता कृतज्ञताके एक महान् प्रवेगके साथ तेरे चरणोंमें लोट गयी। और इस गंभीर तथा सर्वांगपूर्ण हर्षके होते हुए भी शाश्वतता-की इस शांतिके कारण सब कुछ स्थिर और शांत था। अब मुझे ऐसा लगता है कि मैं किसी सीमासे बंधी नहीं हूं; अब मुझे अपने शरीर-का भान नहीं है, न इंद्रियानुभवों, न हृद्गत भावों और न विचारोंका ही...। बस रह गयी है एक विशालता, उज्ज्वल, निर्मल, और प्रशांत, प्रेम और ज्योतिसे सराबोर, अनिर्वचनीय आनंदसे परिपूर्ण; और मुझे ऐसा लगता है कि यह वास्तवमें मेरी ही सत्ता है; तथा मेरी यह सत्ता पहलेकी मेरी अहंकारपूर्ण और सीमित सत्तासे इतनी थोड़ी मिलती-जुलती है कि अब, हे प्रभु, हमारे परम भाग्यविधाता, मैं नहीं कह सकती कि आया यह मैं हूं या तू।

ऐसा मालूम होता है मानों सब कुछ शक्ति, साहस, सामर्थ्य, संकल्प, अनंत मधुरिमा, अतुलनीय करुणा हो ...।

पिछले दिनोंकी अपेक्षा और भी अधिक जोरसे यह महसूस होता है कि समस्त भूतकाल मर गया है, मानों नये जीवनकी किरणोंके नीचे वह ढक गया हो। इस कापीके कुछ पृष्ठोंको दुबारा पढ़ते हुए मैंने अतीत-की ओर जो अंतिम दृष्टि दौड़ायी उसने मुझे पूरी तरहसे इस मृत्युके बारेमें विश्वास दिला दिया है, और, एक भारी बोझसे मुक्त होकर ही, हे मेरे मालिक, मैं एक शिशुकी पूरी सरलताके साथ, पूरी नग्नताके साथ तेरे सामने उपस्थित हो रही हूं ...। और हमेशा ही मैं जिस एकमात्र वस्तुका अनुभव कर रही हूं वह यही विशुद्ध और शांत विशालता है ...। हे नाथ! तूने मेरी प्रार्थना सुन ली है और मैंने जो कुछ मांगा है उसे तूने मुझे दे दिया है: मेरा 'मैं' विलुप्त हो गया है और अब केवल रह गया है वह अनुगत यंत्र जो तेरी सेवामें लगा हुआ है, तेरी अनंत और शाश्वत किरणोंके एकत्र होने और अभिव्यक्त होनेका केंद्र है। तूने मेरे जीवनको ले लिया है, और उसे अपना बना लिया है, तूने मेरी संकल्प-शक्ति ले ली है और उसे अपनी संकल्प-शक्तिके साथ युक्त कर दिया है, तूने मेरे प्रेमको ले लिया है और उसे अपने प्रेमके साथ एकाकार बना दिया है, तूने मेरी चिंतन-शक्तिको ले लिया है और उसके स्थानमें अपनी अखंड चेतना प्रतिष्ठित कर दी है। शरीर आश्चर्यचकित होकर मौन और विनम्र पूजा-भावके साथ अपना मस्तक मिट्टीमें झुका रहा है। और अन्य कोई वस्तु नहीं है, बस तू ही अपनी अक्षय शांतिकी महामहिमाके साथ विराजमान है।

कारीकल, १३ अप्रैल, १९१४

सब कुछ एकत्र होकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहा है कि अब मैं आदतोंकी बनी कोई सत्ता न रह जाऊं, और इस नयी अवस्थामें इन जटिल और अस्थिर परिस्थितियोंके बीच जितनी पूर्णताके साथ तेरी अक्षर शांति मुझे मिली है उतनी पूर्णताके साथ पहले कभी नहीं मिली; या यों कहें कि मेरा 'मैं' कभी इस तरह एकदम गायब नहीं हुआ कि एकमात्र तेरी दिव्य शांति ही बनी रह जाय। सब कुछ सुन्दर, सुसमंजस और शांत है, सब कुछ तुझसे भरा हुआ है। तू ही देदीप्यमान सूर्यमें चमक

रहा है, तू ही उस बहते हुए मंद-मधुर समीरमें अनुभूत हो रहा है, तू ही हृदयोंमें प्रकट हो रहा है और प्रत्येक सत्तामें निवास कर रहा है। कोई पशु, कोई पौधा ऐसा नहीं है जो तेरी बात मुझसे न कहता हो और जो कुछ मैं देखती हूं उस सबपर तेरा ही नाम लिखा हुआ है।

हे मेरे मधुर स्वामी! क्या तूने अंततः यह मंजूर कर लिया है कि मैं पूर्ण रूपसे तेरी हो जाऊं और मेरी चेतना निश्चित रूपमें तेरी चेतनाके साथ युक्त हो जाय? मैंने ऐसा क्या किया है जिससे मैं इतने बड़े सौभाग्यकी अधिकारिणी बन गयी हूं? इसकी कामना करनेके सिवा, इसकी निरंतर इच्छा करनेके सिवा और कुछ भी मैंने नहीं किया है और यह तो बहुत थोड़ा है।

परंतु, हे नाथ, अब चूंकि मेरे अंदर मेरी ही अपनी इच्छा नहीं है, बल्कि तेरी इच्छा निवास कर रही है, तू ऐसा कर सकता है कि यह सौभाग्य सबके लिये उपयोगी साबित हो तथा इसके अस्तित्वका उद्देश्य यथासंभव अधिक-से-अधिक लोगोंको तेरा दर्शन प्रदान करना हो।

हे भगवान्! सब लोग तुझे जान सकें, तुझसे प्रेम कर सकें, तेरी सेवा कर सकें; सब लोग चरम आत्म-निवेदनकी अवस्था प्राप्त कर सकें!

हे प्रभु! हे दिव्य प्रेम! संसारभरमें फैल जा, जीवनको पुनरुज्जीवित कर, बुद्धिको आलोकित कर, अहंकारके बांधोंको भंग कर, अविद्याकी बाधाओंको दूर कर, पृथ्वीके परम अधीश्वरके रूपमें चमक उठ।

पांडिचेरी, १७ अप्रैल, १९१४

हे नाथ! हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! एकमात्र सद्वस्तु! ऐसा वर दे कि कोई भूल-भ्रांति, कोई अंधकार, कोई सांघातिक अज्ञान मेरे हृदय और मेरे विचारमें न घुस आये....।

कर्ममें, व्यक्तित्व ही तेरे संकल्प और तेरी शक्तियोंका अनिवार्य और अपरिहार्य माध्यम है। यह व्यक्तित्व जितना ही अधिक सबल, बहुमुखी, सामर्थ्यशाली, व्यष्टिभावापन्न और सचेतन होता है उतनी ही अधिक शक्तिशालिता और उपयोगिताके साथ यंत्रका व्यवहार भी किया जा सकता है। परंतु स्वयं अपने स्वभावके कारण ही व्यक्तित्व बड़ी आसानीसे अपने पृथक् अस्तित्वके घातक भ्रममें जा पड़ता है और धीरे-धीरे तेरे तथा जिसपर तू कार्य करना चाहता है उसके बीचका एक पर्दा बन जाता है, और,

एकदम आरंभमें, आविर्भाव होनेके समय नहीं, बल्कि वापस जानेके पथमें पर्दा बन जाता है; अर्थात्, एक विश्वासपात्र सेवककी नाईं, जो कुछ तेरा प्राप्य है उसे ठीक-ठीक तुझे लौटा देनेवाला अर्थात् तेरे कार्यके अनुपातमें प्रयुक्त शक्तियोंको लौटा देनेवाला एक मध्यस्थ न बन उन शक्तियोंके कुछ अंशको, स्वयं अपने लिये बचा रखनेकी प्रवृत्ति व्यक्तित्वमें होती है और वह यह सोचता है: "आखिर मैंने ही तो यह या वह कार्य किया है, और इसके लिये तो लोग मेरी प्रशंसा कर रहे हैं....।" हे घातक माया, हे अंधकारमय मिथ्यापन, अब तुम पकड़में आ गये हो, तुम्हारा पर्दा फाश हो गया है। यह रहा वह दुष्कर्मी कीट जो कर्मफलको चाट जाता है, उसके सभी परिणामोंको व्यर्थ बना देता है।

हे नाथ! हे मेरे मधुर स्वामी! हे अद्वितीय सद्वस्तु! 'मैं'-पनके इस बोधको दूर कर दे। अब मैं समझ गयी हूं कि जबतक कोई अभिव्यक्त विश्व रहेगा तबतक तेरे आविर्भावके लिये इस 'मैं'की भी आवश्यकता रहेगी; 'मैं' को मिटा देना या यहांतक कि उसे घटा देना या उसे कमजोर बना देना भी तुम्हें तुम्हारे आविर्भावके साधनसे, पूर्णतः या अंशतः, वंचित कर देना है। परंतु जिस चीजको पूरी तरह जड़से उखाड़ फेंकना होगा 'वह चीज है यह मायामय विचार, यह भ्रमपूर्ण अनुभव, यह भ्रांतिपूर्ण बोध कि मैं एक पृथक् सत्ता हूं। किसी मुहूर्त्तमें, किसी अवस्थामें यह नहीं भूलना चाहिये कि तेरे बाहर इस 'मैं'की कोई सत्ता नहीं है।

हे मेरे परम प्रिय स्वामी! हे मेरे भगवान्! मेरे हृदयसे इस माया-को दूर कर दे ताकि यह सेविका शुद्ध-पवित्र बन जाय और जो कुछ तेरा प्राप्य है उसे वह सच्चाईके साथ, संपूर्ण रूपमें तुझे अर्पण कर दे। नीरव होकर मैं इस महान् अज्ञानको देख और समझ सकूं और उसे हमेशाके लिये नष्ट कर दूं। इस हृदयसे अंधकारको हटा दे और तेरी ज्योति एक सर्व-स्वतंत्र साम्राज्ञीके रूपमें यहां राज्य करे।

१८ अप्रैल, १९१४

कल सवेरे आखिरी पर्दा लगभग फट गया, अंधे और अज्ञानपूर्ण व्यक्तित्व-का अंतिम किला मानों हार माननेको तैयार हो गया; पहली बार मुझे ऐसा लगा कि मैं सच्ची नैर्व्यक्तिक सेवाके स्वरूपको समझ गयी हूं, और

जो बाधा मुझे पूर्ण सिद्धिसे दूर रखे हुई है वह मुझे बहुत क्षणभंगुर, निश्चित रूपसे विलुप्त होनेकी अवस्थाको पहुंची हुई प्रतीत हुई। परंतु मेरे बाहरी कर्तव्योंकी आवश्यकता मुझे इस श्रेयस्कर और सुखकारी भाव-धारासे एकदम बाहर निकाल लायी, और जिस समय मैं बाहरी चेतनामें वापस जानेके लिये बाध्य हुई उसी समय पर्दा फिर आ गया और मुझे पहलेसे भी अधिक अंधकार दिखायी देने लगा। भला इतनी महान् ज्योति-के बाद घोर रात्रिकी अचेतनताके अंदर यह पतन क्यों?

हे प्रभु! हे नाथ! क्या तू मुझे आखिरकार इस अज्ञानसे बचने न देगा और अपने साथ एक नहीं हो जाने देगा? अब, जब कि मैं भली-भांति यह देख और समझ चुकी हूं कि पृथ्वीपर मेरा कार्य क्या है तो क्या मैं उसे संसिद्ध नहीं कर सकूंगी? तो क्या मैं अज्ञान और भ्रम-भ्रांतिमें ही गड़ी हुई हूं? . . .

क्यों, भला इतनी महान् और पवित्र ज्योतिके बाद फिर रजनी क्यों? मेरी सारी सत्ता बड़े जोरोंसे आर्त्त पुकार कर रही है!

हे प्रभुवर! मुझपर दया कर!

१९ अप्रैल, १९१४

अपने विचारको निरंतर तेरे ऊपर एकाग्र रखते हुए बाह्य कर्ममें सक्रिय होना तथा तेरे साथ ऐसी पूर्ण एकता प्राप्त करना जिसके परिणाम-स्वरूप वह चीज मिलती है जिसे मैंने "अखंड चेतना, सच्ची सर्वज्ञता, परम ज्ञान" नाम दिया है — इन दोनों अवस्थाओंमें बड़ा अंतर है। जब हम अपने विचारको तेरे ऊपर एकाग्र रखते हुए कार्य करते हैं तो भी हम एक अंधेकी नाईं अपने रास्तेपर अग्रसर होते हैं, दिशाका बोध तो होता है पर जिस रास्तेसे हम चलते हैं उसके विषयमें हमें कुछ भी पता नहीं होता और न हमें यही मालूम होता है कि ठीक किस ढंगसे हम रास्तेपर चलें जिससे कि कोई भी चीज छूट न जाय। परंतु इसके विपरीत दूसरी अवस्था-में है पूर्ण आलोकमें प्राप्त स्पष्ट दृष्टि, छोटे-से-छोटे सुयोगका सुव्यवहार करने-की योग्यता, कर्मकी परिपूर्णता और सफलताकी पराकाष्ठा। और यदि पहला मनोभाव दूसरेको प्राप्त करनेके लिये अनिवार्य हो तो भी हमें किसी क्षण कर्म करना, पूर्ण एकत्व आयत्त करनेका प्रयास करना बंद नहीं करना चाहिये।

पर मेरा हृदय शांत है, मेरा विचार अधीरतासे खाली है, और मैं एक शिशुकी नाईं प्रसन्नता और विश्वासके साथ तेरी इच्छाके प्रति अपने-आपको सर्मपित करती हूं।

तेरी शांति सबके ऊपर छा जाय।

२० अप्रैल, १९१४

इतनी आशा हो जानेके बाद, यह विश्वास हो जानेके बाद कि मेरी बाहरी सत्ता अंततः तेरे उद्देश्यकी सिद्धिके उपयुक्त यंत्र बनने जा रही है, और इस बातका भरोसा हो जानेके बाद कि इस अहं-भावसे, जो इतना बोझिल और अंधकारपूर्ण है, मुझे आखिरकार छुटकारा मिल जायगा, मैं यह अनुभव करती हूं कि मैं अभी भी लक्ष्यसे उतनी ही दूर हूं जितनी कि आरंभमें थी, उतनी ही अधिक अज्ञानी, उतनी ही अधिक अहंकारपूर्ण हूं जितनी कि इस महान् आशाके आनेसे पूर्व थी। और अब फिर नये सिरे-से अंतहीन पथ निश्चेतनाके क्षेत्रोंमेंसे होता हुआ मेरे सामने खुलता जा रहा है। महान् सिंहद्वार फिर बंद हो गया है और फिर मैं अपनेको मंदिरकी देहलीपर ही खड़ी पाती हूं और अंदर घुसनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। परंतु मैंने प्रत्येक चीजको शांत हृदयके साथ हंसते हुए देखते रहना सीख लिया है। हे मेरे प्रभु! हे मेरे भगवान्! मैं तुझसे बस यही अनुरोध करती हूं कि मुझ-से कोई भूल न होने पाय; यदि यह यंत्र कुछ समयके लिये फिरसे अचेतनता-में फेंक दिया जाय तो भी ऐसी कृपा कर कि यह एकनिष्ठ होकर और अनुगत बनकर तेरे दिव्य विधानके द्वारा परिचालित होता रहे।

हे नाथ! मैं गंभीर और शुद्ध भक्तिके साथ तुझे प्रणाम कर रही हूं। ओ प्रभु! तू सभी हृदयोंका एकछत्र राजा बन जा।

२३ अप्रैल, १९१४

सभी विधि-विधान उड़ गये हैं, अनुशासनकी नियमितता लुप्त हो गयी है, सभी प्रयास बंद हो गये हैं; यह सब मेरी अपनी इच्छासे नहीं हुआ है, मैं समझती हूं कि मेरी उपेक्षाके कारण भी ऐसा नहीं हुआ है, बल्कि इस-

लिये हुआ है कि सारी परिस्थितियोंने ही मिलकर ऐसा कर दिया है। मुझे ऐसा लगता है कि यह आंतरिक इच्छा-शक्ति जो सर्वदा जाग्रत् रहती है, जो नौकाके कर्णधारके जैसी है, या तो विलीन हो गयी है या सो गयी है, और मेरी सत्ता अब शांतिपूर्वक समर्पित एक ऐसी चीजभर रह गयी है जिसने अपने-आपको बहा ले जानेके लिये प्रवाहमें छोड़ दिया है। आजतक मुझे ऐसा ही बोध होता है कि मेरी गतिधारा सीधी रेखामें ही चल रही है, और हे प्रभु! मैं यह आशा बनाये रखना चाहती हूं कि तू ही इस धाराको चला रहा है; परंतु निश्चय ही अबतक यदि मेरा दोष यह रहा है कि मैं कभी-कभी अत्यधिक कठोर नियमका पालन करती रही हूं, सहज इच्छा और नमनीयताका मुझमें अभाव रहा है तो यह बहुत संभव है कि अब मैं उससे विपरीत ढंगकी अधिकताके कारण दोष करूं। इस समय मैं जिस स्थितिमें हूं उसे मैं शांतिपूर्वक स्वीकार करनेके योग्य हो गयी हूं और मैं अपने-आपसे यह कह सकती हूं कि जब तू उचित समझेगा तब तू मुझे सत्य-चेतना, अखंड चेतना प्रदान करेगा।

मैं इस गतिशील जगत्को एक नाटककी तरह देखती हूं जिसमें एकके बाद एक दृश्य उद्घाटित हो रहा है, और मैं इस नाटकमें उसी उत्साह और उसी निष्ठाके साथ भाग ले रही हूं मानों मैं इसे सत्य और महत्त्वपूर्ण समझती होऊं। यह सब बिलकुल नया है। परंतु यह निश्चित है कि मेरा मन और मेरा हृदय कभी इस तरह पूर्ण शांत नहीं हुए। मैं नहीं जानती कि इसका परिणाम क्या होगा। पर हे नाथ! मैं तेरे ऊपर निर्भर करती हूं; तू सबसे अच्छे रूपमें यह जानता है कि अपने यंत्रका किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये और उसे किस प्रकार विकसित करना चाहिये ...।

२८ अप्रैल, १९१४

तू ही इस जगत्का स्वामी है; तेरा विधान हमारे सामने ठीक-ठीक रूपमें प्रकट होता जा रहा है, और जैसा कि मैंने सोचा था, अथवा यों कहें कि जैसा कि तूने, मेरे पेरिससे रवाना होनेसे पहले ही, मुझे समझा दिया था, जो कुछ घटित हुआ है वही सबसे उत्तम है, वही वह चीज है जो इस जगत्में तेरा कार्य अच्छे-से-अच्छे रूपमें पूरा कर सकती है।

निबिड़ आनंदके अंदर मैंने तेरी शक्तिके साथ संपर्क प्राप्त कर लिया है, उस शक्तिके साथ जो अंधकार और भूल-भ्रांतिपर शासन करती है, जो

छल-कपटकी शक्ति और उसकी ऊपरी सफलताके पंकसे ऊपर एक अपरूप और चिरंतन उषाकी भांति चमचमाती है। सब कुछ तो अब प्रकाशमें लाकर रख दिया गया है, हमने सच्चाईके पूर्ण प्रकाशकी ओर एक पग और आगे बढ़ाया है, और यही पूर्ण प्रकाश पृथ्वीपर स्थापित तेरे राज्यका प्रथम सोपान होगा।

हे भगवान्! हे अचिंतनीय ज्योति! तू ही समस्त अज्ञानको जीतता है, समस्त अहंकारपर विजय प्राप्त करता है, तू ही हमारे हृदयोंको आलोकित और हमारे मनोंको उद्भासित करता है, तू ही परम ज्ञान, दिव्य प्रेम और चरम सत्ता है, ऐसी कृपा कर कि मैं तेरे एकत्वकी चेतनामें निरंतर निवास कर सकूं, सदा-सर्वदा तेरी संकल्प-शक्तिके अनुसार ही चल सकूं।

आदरयुक्त और निश्चल-नीरव भक्तिके साथ मैं तुझे संसारके सर्वोच्च अधीश्वरके रूपमें प्रणाम करती हूं।

२ मई, १९१४

सभी मानवीय धारणाओंके परे, यहांतक कि अत्यंत अद्भुत धारणाओंके भी परे, सभी मानवीय अनुभवोंके परे, यहांतक कि अत्यंत महान् अनुभवोंके भी परे, अत्यंत उदात्त अभीप्साओं तथा अत्यंत विशुद्ध प्रवेगके भी परे, प्रेम, ज्ञान और सत्ताके एकत्वके भी परे जाकर, हे प्रभु, मैं तेरे साथ सतत संपर्क स्थापित करूंगी। सब प्रकारके बंधनोंसे मुक्त होकर मैं बस 'तू' ही बन जाऊंगी; तब तू ही इस शरीरके द्वारा जगत्को देखेगा; तू ही इस यंत्रके द्वारा इस विश्वमें कार्य करेगा।

मेरे अंदर विराजमान है पूर्ण निश्चयतासे उत्पन्न शांत आत्मप्रसाद।

३ मई, १९१४

हे दिव्य प्रेम, चरम ज्ञान, पूर्ण एकत्व, मैं दिनमें प्रत्येक क्षण तुझे पुकारती हूं जिसमें कि मैं अन्य कोई भी चीज न बनूं बल्कि केवल 'तू' ही बन जाऊं! यह यंत्र तेरी सेवा करे और यह ज्ञान इसे बना रहे कि यह एक यंत्र है, और मेरी समूची चेतना तेरी चेतनामें डूब जाय तथा तेरी दिव्य दृष्टिके द्वारा सभी चीजोंका अवलोकन करे।

हे नाथ! हे स्वामिन्! ऐसी कृपा कर कि तेरी सर्वोच्च शक्ति अभिव्यक्त हो; ऐसी कृपा कर कि तेरा कार्य पूरा हो और तेरी सेविका एकमात्र तेरी ही सेवामें समर्पित हो जाय।

मेरा 'मैं'-पन सदाके लिये दूर हो जाय, और एकमात्र यह यंत्र ही बना रहे!

४ मई, १९१४

एक साथ तेरे अंदर और तेरे कार्यमें डूब जाना चाहिये....अब एक सीमित व्यक्ति नहीं रह जाना चाहिये.....एक बिंदुके भीतरसे अभिव्यक्त होनेवाली तेरी शक्तियोंका असीम आगार बन जाना चाहिये....सभी बंधनों और सभी सीमाओंसे विमुक्त हो जाना चाहिये ...समस्त बाधक विचारोंसे ऊपर उठ जाना चाहिये ...कर्म करना चाहिये और कर्मसे परे चले जाना चाहिये, व्यक्तियोंके द्वारा तथा व्यक्तियोंके लिये काम तो करना चाहिये पर एकमात्र एकत्वको, तेरे प्रेम, तेरे ज्ञान और तेरी सत्ताके एकत्वको ही देखना चाहिये.....ऐ मेरे दिव्य प्रभु, शाश्वत शिक्षक, एकमात्र सद्वस्तु! इस आधारके समस्त अंधकारको विलीन कर दे जिसे कि तूने अपनी सेवाके लिये, विश्वमें अपनेको अभिव्यक्त करनेके लिये निर्मित किया है। इसके अंदर उस परा-चेतनाको प्रस्थापित कर जिससे सर्वत्र एक जैसी ही चेतना उत्पन्न होगी।

ओ, अब बाह्य रूपोंको नहीं देखना चाहिये जो निरंतर बदलते रहते हैं; अब तो प्रत्येक चीज और प्रत्येक स्थानमें एकमात्र तेरे अक्षर एकत्वको ही देखना चाहिये!

हे भगवान्! मेरी सारी सत्ता अदम्य अनुरोधके साथ तुझे पुकारती है; क्या तू यह वरदान नहीं देगा कि मैं अपनी संपूर्ण चेतनामें 'तू' ही बन जाऊं, क्योंकि सचमुच देखा जाय तो मैं 'तू' हूं और तू 'मैं' है?

९ मई, १९१४

ठीक जिस मुहूर्त्त मैंने यह अनुभव किया कि इस आक्रामक मानसिक जड़तासे बाहर निकलनेके लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि मैं फिरसे नियमित रूपसे इन प्रार्थनाओंको लिखना आरंभ कर दूं, उसी मुहूर्त्त मेरे भौतिक शरीर-

को एक ऐसी हार खानी पड़ी जैसी हार उसे कई वर्षोंतक देखनेको नहीं मिली थी, और कुछ दिनोंके लिये मेरे शरीरकी सभी शक्तियोंने मेरा साथ छोड़ दिया; इसमें मुझे इस बातका चिह्न दिखायी दिया कि मैंने कोई भूल कर दी है, मेरी आध्यात्मिक शक्ति मुझसे दूर हट गयी है, सर्वशक्तिसंपन्न एकत्वकी मेरी दृष्टि धूमिल हो गयी है, कोई अशुभ सूचना किसी-न-किसी तरह मुझे तंग करनेमें सफल हो गयी है, और मैं, हे प्रभु, हे मेरे मधुर स्वामिन्, विनम्रताके साथ तेरे सम्मुख नतमस्तक हो गयी और साथ ही मुझमें यह ज्ञान भी बना रहा कि मैं तेरे साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करनेके योग्य अभीतक परिपक्व नहीं हुई हूं। जिस यंत्रको मैं तेरी सेवामें लगा सकती हूं उसका निर्माण करनेवाले उपादानोंकी समष्टिके अंदर कोई चीज अभी भी अंधकारपूर्ण है और उसमें समझकी कमी है; कोई चीज ऐसी है जो यथोचित रूपमें तेरी शक्तियोंको प्रत्युत्तर नहीं देती, उनकी अभिव्यक्तिको विकृत करती और धूमिल बनाती है।

एक महान् समस्या मेरे सामने उपस्थित हो गयी और मेरी बीमारीने उसे अपने पर्देसे ढक दिया और उसे हल करनेसे मुझे रोक दिया। किंतु अब फिरसे मैं तेरे एकत्वकी चेतनामें निवास कर रही हूं और इसलिये अब ऐसा प्रतीत होता है कि उस समस्याका कोई अर्थ नहीं है और मैं उसे अच्छी तरह समझती भी नहीं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने कोई चीज बहुत दूर पीछे छोड़ दी है और मैं धीरे-धीरे एक नये जीवनके विषयमें जाग्रत् हो रही हूं। मैं चाहती हूं कि यह सब कोई भ्रमजाल न हो और गभीर तथा प्रसन्नतापूर्ण शांति सदाके लिये वापस आ जाय।

हे मेरे दिव्य स्वामी! मेरा प्रेम पहलेसे कहीं अधिक तीव्रताके साथ तेरी ओर जा रहा है; संसारमें तू मुझे अपना सजीव प्रेम बना दे तथा उसके अतिरिक्त और कुछ न रहने दे! समस्त अहंभाव, सब प्रकारकी सीमाएं, संपूर्ण अंधकार दूर हो जाय; मेरी चेतना तेरी चेतनाके-साथ एकात्म हो जाय जिसमें कि एकमात्र तू ही इस भंगुर और नाशवान् यंत्रके द्वारा कार्य करने-वाली संकल्प-शक्ति बन जाय।

हे मेरे मधुर मालिक! कितनी तीव्रताके साथ मेरा प्रेम तेरे लिये अभीप्सा कर रहा है!

ऐसी कृपा कर कि मैं केवल तेरा दिव्य प्रेम बन जाऊं तथा प्रत्येक चीजके अंदर यह प्रेम शक्तिशाली और विजयी होकर जाग जाय।

मैं प्रेमकी एक विशाल चादर बन जाऊं और सारी पृथ्वीको ढक दूं, सभी हृदयोंमें घुस जाऊं तथा प्रत्येक काममें आशा एवं शांतिका तेरा दिव्य संदेश गुंजारित करूं।

हे मेरे भगवान्! कितनी तेजीके साथ मैं तेरे लिये अभीप्सा कर रही हूं! अंधकार और भूल-भ्रांतियोंकी इन जंजीरोंको तोड़ डाल; इस अविद्या-का नाश कर, मुक्त कर, मुक्त कर मुझे, दिखा मुझे अपनी ज्योति।

तोड़ डाल, तोड़ डाल इन जंजीरोंको... मैं समझना चाहती हूं और मैं होना चाहती हूं अर्थात् यह 'मैं' तेरा 'मैं' बन जाना चाहिये और जगत्-में महज एक ही 'मैं' रह जाना चाहिये।

हे प्रभु! मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मेरी विनती तीव्र भावसे तेरी ओर जा रही है।

१० मई, १९१४

हे प्रभुवर! बस तेरा ही मीठा आनंद मेरे हृदयमें भर रहा है; बस तेरी ही नीरव शांति मेरे मनमें छा रही है। सब कुछ नीरवता, समर्थता, एकाग्रता, ज्योति और आत्मप्रसाद है; और यह सब सीमा और विभाजन-से रहित है; क्या एकमात्र यह पृथ्वी ही अथवा समूचा विश्व ही मेरे अंदर निवास कर रहा है? यह मैं नहीं जानती, पर यह मैं जानती हूं कि तू ही, हे नाथ, इस चेतनामें वास कर रहा है और इसे सजीव बना रहा है; एकमात्र तू ही देख रहा है, जान रहा है और कार्य कर रहा है। केवल तुझे ही मैं सर्वत्र देख रही हूं, या यों कहूं कि, अब कोई 'मैं' यहां नहीं है, सब कुछ बस 'एक' है और यह एकत्व बस तू ही है।

जय हो तेरी हे भगवान्, हे चराचरके स्वामी! प्रत्येक वस्तुमें तू ही चमक रहा है!

१२ मई, १९१४

मुझे अधिकाधिक ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हम कर्मके एक ऐसे कालमें आ पहुंचे हैं जब कि भूतकालीन प्रयासोंका फल भी दिखायी देने लगता है — ऐसे कालमें आ गये हैं जिसमें हम उसी अनुपातमें तेरे विधानके अनुसार कार्य करते हैं जिस अनुपातमें वह विधान हमारी सत्ताका परम प्रभु होता है और हमें उस विधानके विषयमें सचेतन होनेका अवकाश भी नहीं होता।

आज सवेरे तेजीसे होनेवाली एक अनुभूतिके द्वारा मैं गहराईसे अधिक

गहराईमें पैठ गयी और सदाकी भांति एक बार फिर मैंने अपनी चेतनाको तेरी चेतनाके साथ एक कर दिया और अब केवल तेरे अंदर ही रहने लगी; कहनेका तात्पर्य, अब केवल तू ही रहने लगा; परंतु तेरी संकल्प-शक्तिने तुरत मेरी चेतनाको बाहरकी ओर, जो कार्य पूरा करना है उसकी ओर खींच लिया और तूने मुझसे कहा: "वह यंत्र बन जिसकी मुझे आवश्यकता है।"

तो फिर यही क्या अंतिम त्याग नहीं है, तेरे साथ प्राप्त तादात्म्यका त्याग, उस मधुर और पवित्र आनंदका त्याग, जो प्राप्त होता है अपने और तेरे बीच कोई विभेद न करनेसे, प्रत्येक मुहूर्त्त यह जाननेसे, केवल बुद्धिके द्वारा नहीं, वरन् एक पूर्ण अनुभूतिके द्वारा यह जाननेसे कि तू ही एकमेव सद्वस्तु है और बाकी सब कुछ केवल बाह्य रूप और माया है? बाह्य सत्ता अनुगत यंत्र बन जाय और इस बातकी भी कोई आवश्यकता न हो कि जो संकल्प-शक्ति उसे चलाये उसका उसे ज्ञान हो, यह सब तो ठीक है; पर भला इसकी क्या जरूरत है कि मैं इस यंत्रके साथ एकदम पूर्ण रूपमें एक हो जाऊं और उसके बदले यह 'मैं' केवल तेरे साथ एक न हो और तेरी पूर्ण, अखंड चेतनामें निवास न करे?

मैं पूछती तो हूं, पर इसके लिये मुझे कोई चिंता नहीं है। मैं जानती हूं कि सब कुछ तेरी इच्छाके अनुरूप है, और विशुद्ध पूजा-भावके साथ मैं सहर्ष अपने-आपको तेरी इच्छाके प्रति समर्पित करती हूं। जो तेरी इच्छा होगी, हे प्रभु, वही मैं बनूंगी, चाहे सचेतन होऊं या अचेतन, चाहे महज एक यंत्र होऊं जैसा कि यह शरीर है या परम चेतना होऊं जैसा कि तू स्वयं है।

कितना मधुर और शांतिपूर्ण आनंद प्राप्त होता है जब मैं यह कह पाती हूं कि "सब ठीक है", जब मैं यह अनुभव कर पाती हूं कि तू संसारमें उन सब लोगोंके द्वारा कार्य कर रहा है जिन्होंने तेरा वाहन होना स्वीकार किया है!

तू ही सबका परम प्रभु है, तू अगम्य, अज्ञेय, शाश्वत और परात्पर सद्वस्तु है।

हे अनुपम एकत्व! मैं तेरे अंदर विलीन हो रही हूं! . . .

१३ मई, १९१४

हे भगवान्! मेरे मनकी इस तंद्राको तू झाड़ फेंक देगा जिसमें कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो और मैं उस अनुभवको समझ सकूं जो कि तूने मेरी सत्ताको प्रदान किया है। जब मेरे अंदरकी कोई चीज तुझसे प्रश्न करती है तब तू सदा ही उसका उत्तर देता है, और जब यह आवश्यक होता है कि मैं कोई चीज जानूं तब तू उसे मुझे सिखा देता है, भले ही वह प्रत्यक्ष रूपमें हो या अप्रत्यक्ष रूपमें।

मैं अधिकाधिक यह देख रही हूं कि समस्त अधैर्यपूर्ण विद्रोह, संपूर्ण शीघ्रता निरर्थक हो जायगी; सब कुछ धीरे-धीरे सुसंगठित हो रहा है जिसमें कि मैं यथायथ रूपमें तेरी सेवा कर सकूं। इस सेवामें भला मेरा क्या स्थान है? बहुत दिनोंसे मैंने कभी यह प्रश्न नहीं उठाया है। इसकी आवश्यकता भी क्या है? क्या यह जानना आवश्यक है कि हमारा स्थान केंद्रमें है या किसी एक कोनेमें? यदि मैं संपूर्ण रूपसे तुझे समर्पित होकर, एकमात्र तेरे लिये और तेरे द्वारा जीवित रहते हुए तेरा दिया हुआ काम क्रमशः अच्छे रूपमें करती रहूं तो बाकी सब चीजोंका कोई मूल्य नहीं। बल्कि मैं इतना और कह सकती हूं कि संसारमें तेरा कार्य जितने अच्छे रूपमें और जितने पूर्ण रूपमें होना संभव है उतने उत्तम और पूर्ण रूपमें यदि वह पूरा होता रहे तो भला उस कार्यको पूरा करनेवाले किसी व्यक्ति अथवा किसी दलका आखिर क्या महत्त्व है?

हे मेरे मधुर स्वामी! शांति, आत्मप्रसाद तथा आत्माकी समताके साथ मैं अपने-आपको तुझे सौंप रही हूं और तेरे अंदर गल रही हूं, मेरा मन शांत और स्थिर है, मेरा हृदय प्रसन्न है; तेरा कार्य अवश्य पूरा होगा, मैं यह जानती हूं, तथा, तेरी विजय सुनिश्चित है।

हे मेरे मधुर राजा! तू सबको अपनी ज्योतिका परम वरदान प्रदान कर!

१५ मई, १९१४

जैसे किसी शिखरपर चढ़ जानेके बाद हमारे सामने एक विशाल क्षितिज खुल जाता है, वैसे ही, हे भगवान्, जब चेतना तेरे एकत्व तथा अभिव्यक्त जगत्के बीच स्थित उस मध्यवर्ती लोकके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेती है तब मनुष्य एक साथ ही तेरी अनंतता तथा जगत्की अनुभूति

दोनोंमें हिस्सा बंटाता है। उस समय ऐसा लगता है मानों हम एक ऐसे केंद्रमें हों जहांसे चेतना तेरी अव्यर्थ परम शक्तिमत्तासे संपूर्ण ओतप्रोत होकर तेरी शक्तियोंकी किरणोंको इस निम्नतम यंत्रके ऊपर प्रयुक्त कर सकती है जो अपने भाई यंत्रोंके बीच चल-फिर रहा है। इन परात्पर लोकोंकी ऊंचाईसे भौतिक पदार्थकी एकता स्पष्ट रूपमें दिखायी देती है और फिर भी यह शरीर जो भौतिक लोकमें एक विशिष्ट यंत्रका कार्य करता है, अत्यंत शुद्ध, और स्पष्ट रूपमें दिखायी देता है, मानों वह इस समग्रके बीच एक अत्यंत तेजोमय बिंदु हो, जो एक ही साथ बहु और एक हो तथा जिसमेंसे होकर सभी शक्तियां एक समान प्रवाहित होती हों।

इस बोधने कलसे मुझे बिल्कुल नहीं छोड़ा है। यह मानों एक सुनिश्चित वस्तुके रूपमें स्थापित हो गया है और समस्त बाह्य कार्य-कलाप ऊपरसे देखनेमें तो पूर्ववत् चल रहा है, परंतु उसने अद्भुत रूपसे गठित और संजीवित एक खिलौनेके यांत्रिक स्वभावको ग्रहण कर लिया है जिसे मेरी चेतना अपने ऊर्ध्व आसनसे परिचालित कर रही है तथा मेरी चेतना अब व्यष्टि-चेतना नहीं है बल्कि अभी भी विश्व-चेतना है, कहने-का तात्पर्य कि अभी भी वह पूर्ण रूपसे तेरे एकत्वमें विलीन नहीं हो गयी है। व्यक्तिगत अभिव्यक्तिके सभी विधान मेरे सम्मुख स्पष्ट रूपमें प्रकट हो गये हैं, पर ऐसे ढंगसे जो इतना समन्वयात्मक, इतना सर्वांगपूर्ण, इतना एककालिक था कि उसे हमारी सामान्य भाषामें अभिव्यक्त करना असंभव है।

१६ मई, १९१४

कल जिस समय मैं अपनी अनुभूतिको शब्दोंमें व्यक्त करनेकी चेष्टा कर रही थी ठीक उसी समय मेरे सामने एक बाधा उपस्थित हुई। और अब सब कुछ बदला हुआ प्रतीत होता है। वह यथार्थ ज्ञान, वह दूर-दृष्टि चली गयी है और उसके स्थानमें आ गया है, हे प्रभु, तेरे प्रति महान् प्रेम। उस प्रेमने बाहरी अंग-प्रत्यंगसे लेकर गभीरतम चेतनातक मेरी समस्त सत्ताको अधिकृत कर लिया है, और समूची सत्ता तेरे चरणों-पर साष्टांग लोट रही है तथा उसमें यह तीव्र अभीप्सा विद्यमान है कि वह तेरे साथ चरम तादात्म्य प्राप्त कर ले, तेरे अंदर घुल-मिल जाय। मेरे अंदर जितनी शक्ति थी उतनी सब शक्ति लगाकर मैंने याचना की है।

और एक बार फिर देखती हूं कि जिस समय मुझे यह मालूम हुआ कि मेरी चेतना तेरी चेतनामें विलीन होने जा रही है, जिस समय मेरी समस्त सत्ता केवल एक शुद्ध स्फटिक बन गयी जिसमेंसे तेरी उपस्थिति प्रतिफलित हो रही थी, ठीक उसी समय किसीने आकर मेरी एकाग्रतामें बाधा डाल दी।

यह उस जीवनका सच्चा प्रतीक है जो तू मुझे दे रहा है, और जिसमें बाहरी उपयोगिताको, सबके लिये किये जानेवाले कार्यको चरम सिद्धि-से भी कहीं बड़ा स्थान प्राप्त है। मेरे जीवनकी सभी परिस्थितियां तेरी ओरसे मुझे सर्वदा ही यह कहती हुई प्रतीत होती हैं:

"तू परम एकाग्रताके द्वारा एकत्व नहीं प्राप्त करेगी बल्कि सबके अंदर अपनेको उंडेलकर प्राप्त करेगी।" तेरी ही इच्छा पूर्ण हो, हे भगवान्!

अब मैं साफ-साफ समझ रही हूं कि जहांतक इस वर्तमान व्यक्तित्वका संबंध है, तेरे साथ एकत्व प्राप्त करना ऐसा लक्ष्य नहीं है कि उसका अनुसरण किया जाय; उसकी सिद्धि तो उसे बहुत दिन पहलेसे ही हो गयी है। और यही कारण है कि तू सर्वदा मुझसे यह कहता हुआ प्रतीत होता है: "इस एकत्वकी आनंदपूर्ण एकाग्रतामें विभोर मत हो; पृथ्वीपर जो कार्य करनेका भार मैंने तुझे सौंपा है उसे पूरा कर।"

जो व्यक्तिगत कार्य समष्टिगत कार्यके साथ-साथ करणीय है वह है अपनी सत्ताकी सभी प्रवृत्तियों और सभी क्षेत्रोंका ज्ञान प्राप्त करना तथा उनपर अधिकार करना, चेतनाको स्थायी रूपसे उस उच्चतम शिखरपर स्थापित करना जहांसे निर्दिष्ट कार्य करना तथा तेरे साथ सतत एकत्व बनाये रखना दोनों ही एक साथ संभव हो। परिपूर्ण एकत्वका आनंद तबतक नहीं आ सकता जबतक कि करणीय कार्य पूरा नहीं हो जाता।

सबको हमें यह उपदेश देना होगा कि सबसे पहले एकत्व प्राप्त करो और फिर उसके बाद कर्म करो; परंतु जिन्होंने एकत्व प्राप्त कर लिया है उन्हें यह कोशिश करनी चाहिये कि उनके जीवनके प्रत्येक क्षणमें उनके भीतरसे तेरी इच्छा ही पूर्ण रूपमें अभिव्यक्त हो।

१७ मई, १९१४

हे भगवान्! जो मानसिक प्रभाव मेरे ऊपर लदे हुए हैं उन सबसे मुझे मुक्त कर, जिसमें कि, पूर्ण रूपसे स्वतंत्र होकर, मैं तेरी ओर उड़ान भर सकूं।

हे विश्व-पुरुष! प्रत्यक्ष आकारमें अभिव्यक्त हे परम एकत्व! मैं एक अदम्य अभीप्साके वश तेरे हृदयमें जाकर लेट गयी, फिर मैं स्वयं तेरा हृदय ही बन गयी और उस समय मुझे मालूम हुआ कि तेरा हृदय बस एक दिव्य शिशुके सिवा और कुछ नहीं है जो खेलता और विश्वोंकी सृष्टि करता है। तूने मुझे कहा: "एक दिन तू मेरा सर्वोच्च पद प्राप्त करेगी, परंतु अभी तू अपनी दृष्टि पृथ्वीकी ओर फेर।" और पृथ्वीपर अब मैं एक प्रसन्न और खेलते हुए बच्चेके रूपमें विद्यमान हूं।

ये थे वे दो वाक्य जिन्हें मैंने एक प्रकारकी अनिवार्य आवश्यकताके वश लिखे थे। पहला था, मानों प्रार्थनाकी शक्ति केवल तभी परिपूर्ण होगी जब कि वह कागजपर लिख ली जायगी। दूसरा था, मानों उप-लब्धि केवल तभी स्थायित्वको प्राप्त हो सकेगी जब कि उसे लेखके रूपमें लिखकर उससे मैं अपने मस्तिष्कको खाली कर दूंगी।

१८ मई, १९१४

तू ही एकमात्र सद्वस्तु है, हे भगवान्, तू ही सर्वशक्तिमत्ता और शाश्वतता है। जो अपनी सत्ताकी गहराईमें तेरे साथ युक्त हो जाता है वह शाश्वत और अक्षर सर्वशक्तिमत्तासे युक्त तेरा सत्य-स्वरूप बन जाता है। परंतु दूसरे लोगोंके लिये आदेश यह है कि तेरे साथ संस्पर्श बनाये रखते हुए उन्हें अपनी दृष्टि और क्रियावलीको पृथ्वीकी ओर मोड़ना होगा; यही महान् कार्य तूने उनको सौंपा है। फिर कठिनाई उत्पन्न होती है, क्योंकि सब कुछ उनकी सत्ताके विभिन्न स्तरोंकी परिपूर्णता-पर निर्भर है, और उन्हें चरम एकत्व प्राप्त करनेके बाद भी, तेरे दिव्य संकल्पको अभिव्यक्त करनेवाले यंत्रको पूर्ण बनानेके लिये कार्य करना पड़ता है। यहींपर यह कार्य बड़ा कठिन हो जाता है। इस वर्तमान यंत्रके अंदर, जिसे तू मुझसे 'मैं' कहलवाता है, सब कुछ मानों

अति सामान्य, अपर्याप्त, गुणहीन और एकदम जड़ प्रतीत होता है; और मैं तेरे साथ जितना ही अधिक संयुक्त होती हूं उतना ही अधिक देखती हूं कि उसकी वृत्तियां और उसकी अभिव्यक्ति कितनी सामान्य हैं। इसके अंदरकी प्रत्येक चीज मुझे प्रायः असंशोधनीय प्रतीत होती है। और यदि इस बातसे मुझे किसी भी तरह उद्वेग नहीं होता तो इसका कारण यह है कि मेरा सच्चा 'मैं' तेरे चरणोंमें पड़ा हुआ है, अथवा तेरे हृदयमें सोया हुआ है, अथवा तेरी शाश्वत और अक्षर चेतनासे सचेतन हो रहा है, और संपूर्ण सृष्टिको धैर्य और ज्ञानसे पूर्ण करुणाभरी मुसकान-के साथ देख रहा है।

१९ मई, १९१४

यह मनोमय पुरुष, जो समूचे व्यक्तिगत जीवनमें सभी वृत्तियोंको सक्रिय बनानेमें सक्षम था — जैसे, तेरे प्रति गभीर भक्ति, मनुष्योंके लिये अनंत करुणा, ज्ञानके लिये तीव्र अभीप्सा, पूर्णताकी प्राप्तिके लिये प्रयास आदि —, अब गभीर निद्रामें डूबा हुआ प्रतीत होता है और किसी चीजको जरा भी सक्रिय नहीं बनाता। सभी व्यक्तिगत वृत्तियां सो रही हैं और चेतना परात्पर स्थितियोंमें अभीतक जाग्रत् नहीं हुई है; कहनेका तात्पर्य, उनमें वह कभी-कभी जागती है और बीच-बीचमें नींदमें बनी रहती है। इस सत्ताके अंदर कोई चीज एकांत और पूर्ण नीरवताकी अभीप्सा करती है, कुछ समयके लिये, जिसमें कि वह इस असंतोषजनक स्थितिसे बाहर निकल सके; और दूसरी कोई चीज यह जानती है कि इस यंत्रके लिये तेरी इच्छा यह है कि यह सर्वकी सेवाके लिये समर्पित हो जाय, भले ही वह, बाह्य रूपमें, उसकी अपनी पूर्णताके लिये हानिकारक ही क्यों न हो।

इस सत्ताके अंदरकी कोई चीज तुमसे यह कहती है, हे प्रभु:

"मैं कुछ नहीं जानती,
"मैं कुछ नहीं हूं,
"मैं कुछ नहीं कर सकती,
"मैं निश्चेतनाके अंधकारमें हूं।"

और कोई दूसरी चीज यह जानती है कि वह स्वयं तू ही है और उसी तरह परम पूर्णता भी तू ही है।

इसका परिणाम भला क्या होगा? ऐसी स्थितिका अंत भला कैसे

होगा? क्या यह जड़ता है, क्या यह सच्चा धैर्य है, मैं नहीं जानती; परंतु बिना किसी जल्दबाजीके अथवा बिना किसी कामनाके मैं तेरे चरणों-में लोट रही हूं और प्रतीक्षा कर रही हूं।

२० मई, १९१४

तेरे दिव्य और अनंत प्रेमके साथ जहां एकत्व प्राप्त होता है उस शिखरकी उच्चतासे तूने मेरी दृष्टिको इस जटिल शरीरकी ओर फेर दिया है जिसे एक यंत्रके रूपमें तेरी सेवा करनी है। और तूने मुझसे कहा है, "यह मैं ही हूं; क्या तू नहीं देखती कि मेरी ही ज्योति इसके अंदर चमक रही है?" और वास्तवमें मैंने देखा है कि तेरा दिव्य प्रेम ही पहले बुद्धिका और फिर शक्तिका जामा पहनकर इस शरीरको, इसके छोटे-से-छोटे कोषोंतकको गठित कर रहा है और इस हदतक इसमें प्रकाशित हो रहा है कि यह और कुछ नहीं बल्कि असंख्य चमचमाते स्फुलिंगोंका एक स्तूप मात्र रह गया है और वे स्फुलिंग यह प्रकट करते हैं कि वे 'तू' ही हैं।

और अब समस्त अंधकार विलीन हो गया है, और बस तू ही विभिन्न लोकोंमें, विभिन्न रूपोंमें निवास कर रहा है, सबमें एकरूप, अक्षय और अनंत जीवन है।

विशुद्ध प्रेम तथा अखंड एकत्वके तेरे अक्षय राज्यके इस दिव्य जगत्‌को हमें अन्यान्य सभी राज्योंके दिव्य जगत्‌के साथ घनिष्ठ रूपमें जोड़ देना चाहिये — यहांतक कि अत्यंत भौतिक राज्यतकको जहां तू ही प्रत्येक अणु-परमाणुका केंद्र तथा उनका पूर्ण संगठित रूप है। इन सभी दिव्य जगतोंकी क्रम-परंपराके बीच पूर्ण चेतनाका मिलन-सूत्र स्थापित करना ही वह एकमात्र साधन है जिसकी सहायतासे सर्वदा एक समान तेरे अंदर निवास किया जा सकता है तथा जो कार्य तूने इस समस्त सत्ताको सौंपा है उसे भी इसकी चेतनाकी सभी स्थितियोंमें एवं उनकी सभी कार्य-धाराओंमें संपूर्ण रूपमें संसिद्ध किया जा सकता है।

हे मेरे मधुर स्वामिन्! तूने मेरे अज्ञानका एक और नया पर्दा चीर दिया है, और, तेरे शाश्वत हृदयके अंदर अपने सुखद स्थानको छोड़े बिना, मैं उसके साथ-साथ इस शरीरका गठन करनेवाले प्रत्येक अणु-परमाणुके अदृश्य पर अनंत हृदयमें भी विद्यमान हूं।

इस सर्वांगपूर्ण अखंड चेतनाको सुदृढ़ बना। इसकी परिपूर्णताके सभी छोटे-मोटे ब्योरोंके अंदर मैं प्रवेश कर सकूं, तथा एक मुहूर्तके लिये भी तुझे छोड़े बिना, जो कार्य तूने मेरे ऊपर न्यस्त किया है उसकी आवश्यकता-के अनुसार मैं निरंतर इस अनंत सीढ़ीके ऊपर-नीचे चढ़ती-उतरती रहूं।

मैं तेरी हूं, तुझमें हूं और तू ही हूं शाश्वत आनंदकी परिपूर्णताके अंदर।

२१ मई, १९१४

समस्त अभिव्यक्तिसे बाहर शाश्वतताकी अक्षय निश्चल-नीरवताके अंदर मैं तुझमें हूं, हे भगवान्! हे अचल-अटल परमानंद! तेरी शक्ति और तेरी अद्‌भुत ज्योतिसे गृहीत जिस वस्तुसे जड़तत्त्वके परमाणुओंका केंद्र तथा वास्तविक सत्ता गठित हुई है उसके अंदर मैं फिरसे तुझे पाती हूं; और इस तरह, तेरी दिव्य उपस्थितिका त्याग किये बिना मैं तेरी परा-चेतनामें विलीन हो सकती हूं अथवा अपने आधारके प्रोज्ज्वल कणोंके अंदर तुझे देख सकती हूं। और अभी इस क्षण तेरे जीवन तथा मेरे प्रकाशकी यही परम पूर्णता है।

मैं तुझे देखती हूं, 'तू' ही हो गयी हूं, और इन दो छोरोंके बीच मेरा प्रेम तीव्र अभीप्साके साथ तेरी ओर जा रहा है।

२२ मई, १९१४

जब हम क्रमशः सत्ताकी सभी अवस्थाओंमें तथा जीवनके सभी क्षेत्रोंमें असत्य वस्तुसे अलग सत्य वस्तुको पहचान लेते हैं, जब हम तेरी अद्वितीय सद्वस्तुकी परिपूर्णता और सर्वांगीण निश्चयताको प्राप्त कर लेते हैं, तब उस परात्पर चेतनाकी ऊंचाईसे हमें अपनी दृष्टि उपादान-समष्टि-रूप इस व्यष्टिकी ओर मोड़नी चाहिये जो पृथ्वीपर तेरी अभिव्यक्तिके तात्कालिक यंत्रका काम करता है, और उसके अंदर बस तुझे ही देखना चाहिये — तुझे ही जो उसकी एकमात्र सत्य-सत्ता है। इस तरह इस समष्टि-रूप आधारका प्रत्येक अणु जग उठेगा तथा तेरे महान् प्रभावको ग्रहण करेगा; फिर अज्ञान और अंधकार न केवल सत्ताकी केंद्रीय चेतनासे

ही दूर हो जायेंगे बल्कि उसकी अत्यंत बाह्य अभिव्यक्तिकी धारासे भी निर्मूल हो जायेंगे। जब रूपांतरका यह कार्य पूरा हो जायगा तथा अपनी परिपूर्णताको प्राप्त कर लेगा केवल तभी तेरी पूर्ण शक्ति, तेरी पूर्ण ज्योति और तेरा पूर्ण प्रेम अभिव्यक्त हो सकेगा।

हे प्रभु! तू यह सब मुझे क्रमशः अधिक स्पष्ट रूपमें समझा रहा है; मुझे इस पथपर एक-एक पग आगे बढ़ा। मेरी समूची सत्ता, उसका क्षुद्रतम अणुपर्यंत, तेरी उपस्थितिका संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेकी, उसके साथ अखंड एकत्व प्राप्त करनेकी अभीप्सा कर रहा है। सभी बाधाएं दूर हो जायं और अज्ञानांधकारको दूर कर, उसके बदले सर्वत्र तेरा दिव्य ज्ञान आ जाय। जिस तरह तूने केंद्रीय चेतनाको, सत्ताके संकल्पको आलोकित कर दिया है उसी तरह इस बाह्यतम उपादानतकको आलोकित कर। और समग्र व्यक्तिगत सत्ता, अपने प्रथम मूलसे, अपने सारतत्त्वसे आरंभ कर, अपने अंतिम रूपतक, अपने अत्यंत स्थूल शरीरतक तेरी अद्वितीय सत्ताकी पूर्ण सिद्धिके अंदर, उसकी परिपूर्ण अभिव्यक्तिके अंदर एकीभूत हो जाय।

तेरी जीवनी-शक्ति, तेरी ज्योति, तेरे प्रेमके अतिरिक्त इस विश्वमें और कुछ नहीं है।

दिव्य सत्यके परम ज्ञानके द्वारा सभी चीजें उद्भासित और रूपांतरित हो जायं।

तेरा दिव्य प्रेम मेरी सत्ताको परिप्लावित कर रहा है; प्रत्येक कोषमें तेरी परा-ज्योति चमक रही है; तुझे जान लेने और 'तू' ही बन जानेके कारण सभी आनंदविभोर हो रहे हैं।

२३ मई, १९१४

हे भगवान्! मैं निरंतर तेरी चेतना प्राप्त करना चाहती हूं और अपनी सत्ताके क्षुद्रतम कोषोंमें तुझे पाना चाहती हूं; स्वयं अपनी तरह तुझे जानना चाहती हूं और सभी चीजोंमें तुझे अभिव्यक्त देखना चाहती हूं और तू ही जीवनका एकमात्र सत्य, एकमात्र कारण और एकमात्र लक्ष्य है। तू ऐसा वर दे कि तेरे प्रति मेरा प्रेम अविराम गतिसे वर्द्धित होता रहे जिसमें कि मैं संपूर्ण प्रेम ही बन जाऊं, यहांतक कि तेरा ही प्रेम बन जाऊं और तेरा प्रेम बने रहकर ही तेरे साथ संपूर्ण रूपमें युक्त हो जाऊं। यह प्रेम अधिका-

धिक तीव्र, पूर्ण, उज्ज्वल और शक्तिमान् होता जाय; यह प्रेम तेरी ओर जानेवाला अदम्य प्रवेग, तेरी अभिव्यक्तिका अव्यर्थ उपाय बन जाय। इस सत्ताके अंदरकी सभी चीजें — अतल गहराइयोंसे लेकर अत्यंत बाह्य पदार्थ-तक — विशुद्ध, प्रगाढ़, निःस्वार्थ और दिव्य प्रेम बन जायं। जो साकार भगवान् इस आधारके अंदर अभिव्यक्त हो रहे हैं वे संपूर्ण रूपमें तेरे पूर्ण और उच्च प्रेमके द्वारा सुगठित हों, उस प्रेमके द्वारा जो एक साथ ही संपूर्ण ज्ञानका मूल स्रोत और सिद्धि भी है। तेरे प्रेमके प्रभावसे विचारधारा सुस्पष्ट, सुविन्यस्त, प्रकाशित और रूपांतरित हो उठे; समस्त प्राणगत शक्तियोंमें एकमात्र तेरा प्रेम प्रविष्ट हो जाय और उनका संगठन करे तथा उसके फलस्वरूप वे अदम्य पवित्रता, और सुदृढ़ शक्ति, तेज तथा ऋजुता बन जायं। यह सत्ता जो कि माध्यम है पर दुर्बल है, अपनी दुर्बलताका लाभ उठाये और उन तत्त्वोंसे अपना पुनर्गठन करे जो संपूर्ण रूपमें तेरे प्रेमसे निर्मित हुए हों, और यह शरीर प्रज्वलित कुंड बनकर अपने सभी रोमकूपोंके द्वारा तेरे दिव्य, नैर्व्यक्तिक, परमोच्च और प्रशांत प्रेमको विकीर्ण करे....। मस्तिष्क भी तेरे प्रेमसे पुनः संगठित हो जाय। अंतमें तेरा प्रेम अपने निजी गुण-रूप, बल-वीर्य, तेज, माधुर्य और सामर्थ्यसे सभी चीजोंको पूर्ण रूपसे भर दे, परिप्लावित, परिव्याप्त और रूपांतरित कर दे, नवीन जीवन और नवीन प्राण-शक्तिसे भरपूर कर दे। तेरे प्रेममें ही है शांति, तेरे प्रेममें ही है आनंद तथा तेरे प्रेममें ही है तेरे सेवकके कार्यकी सर्वोच्च शक्ति।

तेरा प्रेम विश्वसे भी अधिक विशाल है, और युग-युगांतरोंसे भी कहीं अधिक स्थायी है: वह अनंत, शाश्वत है; वह स्वयं तू है। और मैं बस तू ही बन जाना चाहती हूं तथा बस तू ही हूं क्योंकि यही है तेरा विधान, यही है तेरी इच्छा।

२४ मई, १९१४

हे मेरे परमप्रिय प्रभु ! मुझे बाहरी चीजोंके अंदर मत डूबने दे। मेरे लिये उनमें कोई रस, कोई स्वाद नहीं है। यदि मैं उनके साथ व्यस्त रहती हूं तो इसका कारण यह है कि मैं समझती हूं कि यही तेरी इच्छा है और तेरा कार्य संपूर्ण रूपमें — कर्मके तथा उपादानके छोटे-से-छोटे ब्योरे-तकमें — अवश्य संपन्न होना चाहिये, किंतु इन सबकी ओर अपना ध्यान मोड़ देना तथा इनमें जहांतक संभव हो वहांतक तेरी शक्तियोंको संचा-

रित कर देना ही पर्याप्त है। यह आवश्यक नहीं कि इन्हें अपनी चेतनामें वास्तविक सद्वस्तुसे बढ़कर प्रधानता ग्रहण करने दी जाय।

हे मेरे मधुर स्वामी! मैं तुझे पाना चाहती हूं, जो कुछ तू है उसका ज्ञान आयत्त करना चाहती हूं, तेरे साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहती हूं। मैं एक ऐसा प्रेम पाना चाहती हूं जो बढ़ता रहे, सदा-सर्वदा अधिक शुद्ध, अधिक विशाल, अधिक तीव्र होता रहे, और मैं देखती हूं मानों जड़-तत्त्वके अंदर मैं डूब गयी हूं, क्या यही है तेरा प्रत्युत्तर? चूंकि तूने स्वयं इस प्रकार जड़तत्त्वमें डूबना स्वीकार किया है जिसमें कि तू इसे धीरे-धीरे चेतनाके प्रति जाग्रत कर सके, क्या यही तेरे साथ प्राप्त एक अधिक पूर्ण तादात्म्यका परिणाम है? क्या इसके द्वारा तू मुझे यह उत्तर नहीं दे रहा है: "यदि तू सच्चे रूपमें प्रेम करना सीखना चाहती है तो फिर यह आवश्यक है कि तू इस प्रकार प्रेम कर... अंधकार और निश्चेतनाके अंदर ?"

हे मेरे मालिक! मेरे परमप्रिय भगवान्! तू जानता है कि मैं तेरी हूं और मैं सर्वदा वही चाहती हूं जो कि तू चाहता है; परंतु जो कुछ तू चाहता है उसके विषयमें तू मेरे अंदर संदेह न उत्पन्न होने दे। मेरे हृदयकी अचल प्रशांतिके अंदर चाहे किसी भी तरह मुझे आलोक प्रदान कर। यदि आवश्यक हो तो मुझे अंधकारमें डूब जाने दे, पर कम-से-कम मुझे यह जान लेने दे कि स्वयं तू ही ऐसा चाहता है।

हे नाथ! तेरे उत्तरके रूपमें मैं अपने हृदयमें तेरी दिव्य और शाश्वत उपस्थितिसे निकलनेवाला आनंदगान सुन रही हूं।

२५ मई, १९१४

हे प्रेम और पवित्रताके परमेश्वर! यह यंत्र सुचारु रूपसे तेरी सेवा करना चाहता है, ऐसी कृपा कर कि यह अपनी निम्नतम स्थितिमें, अपनी तुच्छतम क्रियावलियोंमें संपूर्ण अहंकार, संपूर्ण भूल-भ्रांति और संपूर्ण अंधकारसे शुद्ध हो जाय जिसमें कि उसके अंदर कोई भी चीज तेरी क्रियाको दूषित, विकृत और व्याहत न कर सके। तेरी ज्योतिकी पूर्ण जगमगाहटसे दूर कितने ही कोने अंधकारसे भरे हैं: उनकी ओरसे मैं उस ज्योतिके परम सुखकी याचना करती हूं।

ओ! मैं एक विशुद्ध निष्कलंक स्फटिक बन जाऊं जो तेरी ज्योतिको

धूमिल, रंजित या विकृत किये बिना अपने अंदरसे गुजरने दे। मैं पूर्णताकी कामनावश ऐसी नहीं होना चाहती, बल्कि इसलिये होना चाहती हूं कि तेरा कार्य यथासंभव पूर्ण रूपमें संपन्न हो सके।

और जब मैं इस बातकी याचना करती हूं तब यह 'मैं' जो तुझसे बात कर रहा है, समूची पृथ्वीका 'मैं' है और यह तेरी पराज्योतिको पूर्ण रूपसे प्रतिफलित करनेवाला शुद्ध हीरा बननेकी अभीप्सा करता है। सभी मनुष्योंके हृदय मेरे हृदयमें स्पंदित हो रहे हैं, उनके सभी विचार मेरे विचारोंके अंदर स्फुरित हो रहे हैं, शांत पशु या क्षुद्र पौधेकी क्षुद्रतर अभीप्सा भी मेरी विपुल अभीप्साके साथ संयुक्त हो रही है, और सब एक साथ मिलकर तेरी ओर ऊपर उठ रही है, तेरे प्रेम और तेरी ज्योतिको जीतनेके लिये, परा-सत्ताके शिखरोंको अतिक्रम कर तुझे प्राप्त करनेके लिये, तुझे तेरे निश्चल आत्मानंदसे दूर हटानेके लिये तथा दुःख-कष्टको दिव्यानंद, परम शांतिमें रूपांतरित करनेके हेतु दुःख-कष्टके अंधकारमें तुझे उतार लानेके लिये ऊपर उठ रही हैं। और यह प्रचंड प्रवेग एक ऐसे प्रेमसे गठित हुआ है जो अपने-आपको दे देता है, एक ऐसी विश्वासपूर्ण प्रशांतिसे बना है जो तेरे अखंड एकत्वकी निश्चयताके कारण उत्पन्न प्रसन्नतासे भरपूर है।

हे मेरे मधुर राजा! तू ही विजयी और तू ही विजय है; तू ही सिद्ध और तू ही सिद्धि है!

२६ मई, १९१४

ऊपरी सतहपर तूफान है, समुद्र विक्षुब्ध है, लहरें संघर्ष कर रही हैं, एक-दूसरेपर आक्रमण करती और भीषण गर्जनके साथ भंग हो रही हैं, और इस क्रुद्ध जलके नीचे सर्वदा विशाल प्रसारताएं विद्यमान हैं, जो स्थिर, प्रशांत और हास्यपूर्ण हैं; वे ऊपरी सहतके इस आंदोलनको एक अनिवार्य क्रियाके रूपमें देखती हैं; यह आवश्यक है कि जड़तत्त्वका कठोरतापूर्वक मंथन किया जाय जिसमें कि वह भागवत ज्योतिको संपूर्ण रूपमें व्यक्त करनेके योग्य बने। विक्षुब्ध बाह्य रूपके पीछे, द्वंद्व और दारुण संघर्षके पीछे चेतना अपने स्थानपर दृढ़तापूर्वक अवस्थित है, बाह्य सत्ताकी सभी गतियोंका निरीक्षण करती है, केवल उनकी दिशामें, उनकी स्थितिमें संशोधन करनेके लिये हस्तक्षेप करती है जिसमें कि उनका खेल अत्यंत नाटकीय ढंगका न हो

जाय। और यह हस्तक्षेप कभी सुदृढ़ और थोड़ा-सा कठोर तो होता है, कभी व्यंगपूर्ण, समुचित स्थितिमें आनेकी एक पुकार अथवा एक उपहास तो होता है, पर वह सर्वदा ही एक प्रबल, मधुर, प्रशांत और हास्यपूर्ण करुणासे भरपूर होता है।

निश्चल-नीरवताके अंदर मैंने देखा तेरा अनंत और शाश्वत आनंद।

फिर अब भी अंधकार और संघर्षमें पड़ी हुई वस्तुकी यह प्रार्थना धीरे-धीरे तेरी ओर उठ रही है: "हे परमप्रिय स्वामी, हे परम प्रकाशदायक, चरम शुद्धिदाता, ऐसी कृपा कर कि समस्त उपादान और समस्त क्रिया-कलाप एकमात्र तेरे दिव्य प्रेम और तेरे सर्वोच्च आत्मप्रसादकी ही सतत अभिव्यक्ति हो।"

और मेरे हृदयमें हो रहा है तेरी महान् महिमाका स्तवगान।

२७ मई, १९१४

सत्ताके प्रत्येक स्तरमें हमें चेतनाको जाग्रत् करना चाहिये जिससे उसे पूर्ण स्थिति, ज्ञान और आनंदका बोध प्राप्त हो। ये तीनों जगत् या भगवान्‌की तीनों धाराएं जिस तरह दिव्य शक्ति और ज्योतिके लोकमें हैं तथा जिस तरह नैर्व्यक्तिक, अनंत एवं शाश्वत स्थितियोंमें हैं, उसी तरह भौतिक वस्तु-सत्तामें भी हैं। जब हम पूर्ण सचेतन होकर उच्चतर लोकोंमें प्रवेश करते हैं तब इस स्थिति, इस ज्योति और इस आनंदको जीवनमें उतारना आसान होता है, प्रायः अनिवार्य होता है। परंतु जो बात बहुत महत्त्वपूर्ण है, और साथ ही बहुत कठिन भी है, वह है अत्यंत स्थूल जगतोंमें सत्ताको इस त्रिविध चेतनाके प्रति जागृत करना। यही है पहली बात। उसके बाद हमें ढूंढ़ निकालना होगा सभी दिव्य जगतोंका केंद्र (निस्संदेह मध्यवर्ती जगत्‌के अंदर), जहांसे हम इन दिव्य जगतोंकी चेतनाको एक साथ युक्त कर सकें, उनमें समन्वय स्थापित कर सकें तथा उन सभी लोकोंमें एक साथ तथा पूर्ण चेतनासे युक्त होकर कार्य किया जा सके।

हे भगवान्! मैं जानती हूं कि जो परम सत्य तुझे अभिव्यक्त करता है, उससे ये सब अपूर्ण और अधूरी व्याख्याएं कितनी दूर अलग पड़ी हुई हैं। तेरी ज्योति, तेरी शक्ति, तेरी महिमा और तेरा अपरिमेय प्रेम समस्त व्याख्या और समस्त भाष्यके परे हैं। परंतु मेरी बुद्धिको इस बातकी आवश्यकता है कि वह चीजोंको कम-से-कम एक कटी-छंटी परिकल्पनाके

रूपमें अपने सामने रखे जिसमें कि सत्ताके जड़तम भाग भी यथासंभव पूर्ण रूपमें अपने-आपको तेरी इच्छाके अनुरूप बना सकें।

फिर भी, अपनी मौन और अखंड आराधनाकी गभीर नीरवतामें ही मैं तुझे सबसे अधिक समझ पाती हूं। क्योंकि उस समय कौन कह सकता है कि कौन प्रेम करता है, किसे प्रेम किया जाता है और स्वयं प्रेमकी शक्ति क्या है? उस समय तीनों ही अनंत आनंदके अंदर घुल-मिलकर एक बन जाते हैं।

हे भगवान्! सबको इस अनुपम आनंदका वरदान प्रदान कर!

२८ मई, १९१४

इस जगत्के अगणित तत्त्वोंको तू ही चलाता है, तू ही उन्हें एक साथ मिला देता और मथ देता है जिसमें कि वे अपने आदि-अंधकारसे, अपनी आदिम अस्त-व्यस्ततासे जगकर सचेतन हो जायं तथा ज्ञानके पूर्ण आलोकमें आ जायं। और तेरा परम प्रेम ही वह वस्तु है जिसका व्यवहार तू इस तरह इन सब तत्त्वोंका मंथन करनेके लिये करता है। और इस प्रेमकी अक्षय धाराएं तेरे असीम, अपरिमेय हृदयसे ही फूट निकलती हैं। तेरा हृदय ही मेरा निवास-स्थान है। तेरा हृदय ही है मेरी सत्ताका सत्-स्वरूप। तेरे हृदयमें ही मैंने आश्रय लिया है और मैं तेरा हृदय ही बन गयी हूं।

शांति, समस्त जीवोंको शांति प्राप्त हो!

२९ मई, १९१४

हे मेरे मधुर भगवान्! जो लोग तेरे मस्तकमें वास करते हैं अर्थात् बुद्धिकी भाषामें कहें तो, जिन लोगोंने तेरी अखंड चेतनाके साथ अपनी चेतना एक कर दी है, जो लोग तेरा परम ज्ञान बन गये हैं, उनमें तेरे लिये अब प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि वे तो स्वयं 'तू' ही बन गये हैं। वे उस असीम आत्मानंदका उपभोग करते हैं जो चेतनाके तेरी परासत्तामें पूर्ण प्रवेश पा जानेपर ही उपलब्ध होता है, परंतु उनमें उस भक्तकी भक्ति बिलकुल नहीं होती जो अपने ऊर्ध्वमें विद्यमान भगवान्की ओर हर्षातिरेकके साथ

मुड़ता है। अतएव, जिसका पार्थिव व्रत तेरे प्रेमको अभिव्यक्त करना है उसे तू समस्त अभिव्यक्त जगत्के लिये यह शुद्ध और अनंत प्रेम रखनेकी शिक्षा देता है; जो प्रेम आरंभमें पूजा और श्रद्धासे गठित था वह पीछे एक ऐसे प्रेममें रूपांतरित हो जाता है जो करुणा तथा एकनिष्ठतासे गठित होता है।

कितनी दिव्य प्रभा है तेरे सनातन एकत्वकी !
कितनी असीम मिठास है तेरे परमानंदकी !
कितनी महान् महिमा है तेरे ज्ञानकी !
तू तो अचिंत्य है, अद्भुत है !

३१ मई, १९१४

प्रशांत संध्याकी आत्मसमाहित निश्चलतामें जब सूर्य डूब गया तब, हे प्रभु, मेरी समूची सत्ता मौन पूजा तथा पूर्ण समर्पण-भावके साथ तेरे चरणोंमें साष्टांग लोट गयी। फिर मैं संपूर्ण पृथ्वी बन गयी और संपूर्ण पृथ्वी तेरे सम्मुख साष्टांग गिर पड़ी तथा तेरी ज्योतिके आशीर्वाद एवं तेरे प्रेमके परमानंदकी याचना करने लगी। ओ, किस प्रकार तेरे सामने अनुनय-विनय करनेके लिये पृथ्वीने घुटने टेक दिये और फिर रात्रिकी निश्चल-नीरवतामें स्वयं अपने अंदर केंद्रित होकर, युगपत् धैर्य और उत्सुकताके साथ, वह परम काम्य ज्योतिकी प्रतीक्षा करने लगी। यदि संसारमें कर्मरत तेरा दिव्य प्रेम बननेमें माधुर्य है तो उस अनंत प्रेमके लिये उठनेवाली असीम अभीप्सा बननेमें भी उतना ही अधिक माधुर्य है और इस प्रकार अपने-आपको परिवर्तित करनेमें समर्थ होना, क्रमसे, लगभग साथ-ही-साथ ग्रहण करनेवाला और देनेवाला, रूपांतरित करनेवाला और रूपांतरित होनेवाला बनना, एक ओर वेदनायुक्त अंधकारके साथ और दूसरी ओर सर्वशक्तिमान् ज्योतिके साथ एकात्मता स्थापित करना तथा इस द्विविध तादात्म्यके अंदर तेरे सर्वोच्च एकत्वका रहस्य ढूंढ़ निकालना — क्या यही तेरी परम इच्छाको अभिव्यक्त करने, उसे चरितार्थ करनेका एकमात्र पथ नहीं है...?

हे मेरे मधुर स्वामिन् ! मेरा हृदय एक प्रज्वलित पूजागृह है, और तू उसमें सभी मूर्तियोंमें श्रेष्ठ मूर्तिके रूपमें स्थायी रूपसे विराजमान है; ऐसा, ऐश्वर्य-मंडित, तेरा रूप मुझे दिखायी देता है तेरे लिये उद्दीप्त मेरे हृदयकी ज्वालाओंके बीच, और उसके साथ-ही-साथ अपने मस्तकमें मैं तुझे देखती

हूं, मैं तुझे जानती हूं अचिंत्य, अज्ञेय, निराकारके रूपमें; और इस द्विविध अनुभूति, इस द्विविध ज्ञानके अंदर ही निहित है तृप्तिकी परिपूर्णता।

१ जून, १९१४

हे दिव्य प्रेमकी विजयिनी शक्ति! हे भगवान्! तू ही इस विश्वका राजाधिराज है, तू ही इसका स्रष्टा और इसका त्राता है, तूने ही इसे अस्त-व्यस्तताकी स्थितिसे बाहर निकलने दिया है, और अब तू ही इसे इसके शाश्वत लक्ष्योंकी ओर ले जा रहा है।

ऐसी कोई तुच्छ वस्तु नहीं जिसमें मैं तुझे चमकता हुआ नहीं देखती, ऐसी कोई सत्ता आपाततः तेरी इच्छाकी विरोधिनी नहीं जिसमें मैं तुझे सजीव, सक्रिय, ज्योतिर्मय नहीं अनुभव करती।

हे मेरे मधुर मालिक! इस प्रेमके साररूप! मैं तेरा हृदय हूं, और तेरे प्रेमकी धाराएं इस संपूर्ण आधारके भीतरसे होकर प्रवाहित हो रही हैं जिसमें कि तेरे प्रेमको सभी वस्तुओंमें जगा सकें, या यों कहें कि, सबको संजीवित करनेवाले तेरे प्रेमकी चेतनाके प्रति सभी चीजोंको जागृत कर सकें।

जो लोग तुझे नहीं पहचानते, जो लोग तुझे नहीं जानते, जो लोग तेरे दिव्य और मधुर विधानकी ओरसे मुंह मोड़ लेनेकी चेष्टा करते हैं उन सबको मैं अपनी प्रेममयी बांहोंमें ले रही हूं, मैं उन्हें अपने प्रेमपूर्ण हृदयके पालनेमें झुला रही हूं और उन्हें तेरी दिव्य अग्निशिखामें समर्पित कर रही हूं जिससे कि तेरे चमत्कार करनेवाले तप्त तेजसे परिपूर्ण होकर वे तेरे परमानंदमें परिवर्तित हो जायं।

हे प्रेम! हे ज्योतिर्मय प्रेम! तू सबमें प्रविष्ट होकर सबको रूपांतरित कर रहा है।

२ जून, १९१४

अंतर्मुखी नीरवताके अंदर, मौन पूजाके अंदर, अंधकाराच्छन्न और दुःख-कातर भूतमात्रके साथ एक होकर मैं तुझे एक अवतारी त्राता पुरुषके रूपमें नमस्कार करती हूं हे भगवान्! मैं परम मुक्तिदाताके रूपमें तेरे प्रेमका अभिवादन करती हूं, उसके असंख्य वरदानोंके लिये उसके प्रति कृतज्ञता

प्रकट करती हूं, और तेरे हाथोंमें मैं अपनेको समर्पित करती हूं जिसमें कि तू अपना पूर्णता ले आनेका कार्य पूरा कर सके। फिर मैं तेरे प्रेमके साथ एकीभूत हो रही हूं, मैं अब केवल तेरा अक्षय प्रेम ही बन गयी हूं: मैं सब वस्तुओंमें प्रवेश कर रही हूं, प्रत्येक अणुके हृदयमें निवास करती हुई मैं उसमें वह आग जला रही हूं जो पवित्र बनाती और रूपांतरित करती है, वह आग जो कभी नहीं बुझती, जो तेरे दिव्यानंदकी संदेशवाहिका लौ है, सब प्रकार-की पूर्णता ले आनेवाली है।

फिर स्वयं यह प्रेम चुपचाप आत्मस्थ हो रहा है, और तेरी ओर मुड़-कर, हे अज्ञेय ज्योतिपुंज, परम आनंदके साथ तेरी नवीन अभिव्यक्तिकी प्रतीक्षा कर रही हूं...।

३ जून, १९१४

अब, जब कि समग्र सत्ता अधिकाधिक स्थूल कार्योंमें और भौतिक स्तर-की साधनामें डूबती चली जा रही है और वहां ब्योरेकी वस्तुओंकी इतनी अधिकता है, मुझे इन सब बातोंपर थोड़ा विचार करने और उन्हें व्यवस्थित करनेकी जरूरत है, इसीलिये, हे भगवान्, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं कि मेरी चेतना इस तरह बाहरकी ओर मुड़ी हुई होनेपर भी तेरे साथ यह संपर्क निरंतर बनाये रह सके। तू ही तो समस्त शांति, समस्त शक्ति और समस्त आनंदका मूल स्रोत है।

हे मेरे परमप्रिय ईश्वर! तू ही व्यष्टि-सत्ताके द्वारा सभी कार्योंको सर्वां-गीण रूपमें पूरा कर। या यों कहें कि किसी क्षण इस व्यष्टि-सत्ताके अंदर-की किसी भी चीजको यह मत भूलने दे कि वह महज एक यंत्र है, — एक भ्रम है जो इसलिये सत्य बनाया गया है कि तू इसमें हस्तक्षेप कर सके, — और केवल तू ही विद्यमान है और कार्य कर रहा है।

ओ, तेरी चिरस्थायी उपस्थितिका यह कैसा आशीर्वाद है!

४ जून, १९१४

हे सर्वविघ्नविजेता ! जो कुछ तेरे भागवत विधानकी सिद्धिमें बाधा उपस्थित करना चाहता है उस सबपर विजय-श्री बनकर तू हमारे अंदर निवास करेगा। तू अज्ञानके अंधकारको तथा अहंजन्य अशुभ इच्छाके काले धुंएको दूर कर देगा; तू अशुभ सूचनाओंको विलीन कर देगा तथा हमारे अंदर विशुद्ध और स्पष्ट दृष्टिको सुदृढ़ बनायेगा, उस तीव्र बुद्धिको समर्थ बनायेगा जो विनाशकारी विचारों तथा अराजक प्रवृत्तियोंके धोखेमें कभी नहीं आती।

हे मेरे प्रियतम राजा ! तेरा अनंत प्रेम ही हमारी सत्ताकी सद्वस्तु है; कौन भला उसके सर्वसमर्थ कार्यके विरुद्ध संघर्ष कर सकता है ? वह सबमें प्रवेश करता है, सभी बाधाओंको अतिक्रम कर जाता है, भले ही बाधा चाहे भारी अज्ञानकारी जड़ताकी हो अथवा समझहीन अशुभ इच्छाके प्रतिरोधकी। हे मेरे मधुर स्वामी ! इसी प्रेमके भीतरसे, इसी प्रेमके द्वारा तू सभी वस्तुओंमें चमक रहा है, और यह प्रभा क्रमशः शक्तिशाली बनकर समस्त पृथ्वीपर सक्रिय रूपमें विकीर्ण होगी तथा सभी चेतनाओंके लिये बोधगम्य हो उठेगी।

कौन भला तेरी दिव्य शक्तिके सामने बाधा खड़ी कर सकता है ?

तू तो अद्वितीय और परम सद्वस्तु है !

मेरी सत्ता मौन पूजाके भावमें समाहित हो रही है और जो कुछ तू नहीं है वह सब तिरोहित हो रहा है।

९ जून, १९१४

हे भगवान् ! मैं तेरे सम्मुख विद्यमान हूं एक आहुतिके रूपमें जो दिव्य एकत्वकी ज्वलंत अग्निसे प्रज्वलित हो रही है....।

इस मकानके सब पत्थर और इसके अंदरकी सभी चीजें, वे सब लोग जो इसकी देहलीको पार करते हैं और वे सब लोग जो इसे देखते हैं, वे सब लोग जो किसी-न-किसी रूपमें इसके साथ संबंधित हैं, वे सभी इस प्रकार तेरे सम्मुख विद्यमान हैं और धीरे-धीरे सारी पृथ्वी भी इसी तरह उपस्थित होगी।

इस केंद्रसे, इस ज्वलंत नाभिस्थलसे, जो तेरी ज्योति और तेरे प्रेमसे भरपूर है और अधिकाधिक भरपूर होता रहेगा, तेरी शक्तियां समस्त पृथ्वी-

पर विकीर्ण होंगी, दृश्यतः और अदृश्यतः मनुष्योंके हृदयों तथा उनके विचारोंमें समा जायंगी . . . ।

तेरे लिये मेरी जो अभीप्सा है उसके उत्तरमें तू मुझे ऐसी ही दृढ़ प्रतीति प्रदान कर रहा है।

प्रेमकी एक विशाल तरंग प्रत्येक चीजके ऊपर उतर रही है और सबके अंदर प्रविष्ट हो रही है।

शांति, समस्त पृथ्वीपर शांति, विजय, प्राचुर्य, महाश्चर्य . . . ।

ऐ मेरे प्यारे दुःखी और अज्ञ बच्चो ! और तुम, ऐ विद्रोहिनी प्रचंड प्रकृति ! अपने हृदयोंको उन्मुक्त करो, अपने वेगको शांत करो, वह देखो, दिव्य प्रेम अपनी सर्वशक्तिमत्ताके साथ तुम्हारी ओर आ रहा है, वह देखो, ज्योति अपनी निर्मल प्रभाके साथ तुम्हारे अंदर प्रविष्ट हो रही है। यह मानवीय, यह पार्थिव काल सभी कालोंमें सबसे अधिक सुन्दर है। हरएक, सभी इसे जानें और उपभोग करें यह परम पूर्णता जो प्रदान की गयी है। उसे सभी, बिना अपवाद, एक-एक व्यक्ति जान सकें और उसका रस ले सकें।

ओ शोकाकुल हृदयो और दुश्चिताग्रस्त ललाटो ! ओ मूढ़ अंधता और अज्ञ अशुभ इच्छा ! तुम्हारी दुस्सह वेदना शांत हो जाय और एकदम दूर हो जाय।

यही है उस नवीन वाणीकी महिमा जो आ रही है ;

"मैं यहां हूं।"

१० जून, १९१४

प्रत्येक दिन सवेरे, हे भगवान्, तेरी ओर अगणित नमस्कार उठते हैं, सत्ताके सभी स्तरों तथा उनके बहुसंख्यक उपादानोंके नमस्कार उठते हैं। और यह है सर्वमयके प्रति सबका दैनिक आत्मनिवेदन, तेरी ज्योति और तेरे प्रेमके प्रति अज्ञान तथा अहंकारका आवेदन। तेरा प्रत्युत्तर निरंतर आ रहा है और संपूर्ण रूपमें ज्ञात हो रहा है : सब कुछ है प्रकाश, सब कुछ है प्रेम; अज्ञान और अहंकार महज निस्सार छायामूर्तियां हैं जो विनष्ट की जा सकती हैं।

तेरी परम शांति, तेरी फलोत्पादिका प्रशांति सबके ऊपर फैली हुई है।

१२ जून, १९१४

हे मेरे मधुर प्रभु! हे शाश्वत ज्योति! मैं केवल नीरवता और शांतिमें ही तेरे साथ युक्त हो सकती और कह सकती हूं कि जैसे संपूर्णमें वैसे ही प्रत्येक ब्योरेमें तेरी इच्छा पूर्ण हो। अपने राज्यपर अधिकार जमा ले, तेरे विरुद्ध जो भी विद्रोह करता हो उस सबका दमन कर; जो जीव तुझे नहीं जानते, जो बुद्धियां तेरे सम्मुख नत होना तथा तुझे समर्पित होना नहीं चाहतीं उन सबको स्वस्थ बना। प्रसुप्त शक्तियोंको जाग्रत कर, साहसको उद्‌बुद्ध कर, हे भगवान्, हमें प्रकाश दे, हमें सुपथ दिखा।

मेरा हृदय परम शांतिसे भरपूर है, मेरा विचार शांत-स्थिर और नीरव है।

जो कुछ है, जो कुछ होगा, जो कुछ नहीं है उस सबके अंतस्तलमें तेरी दिव्य चिरस्थायी मुस्कान विद्यमान है।

१३ जून, १९१४

हमें सबसे पहले ज्ञान आयत्त करना चाहिये, यह सीखना चाहिये कि तुझे कैसे जाना जाता है, तेरे साथ कैसे युक्त हुआ जाता है, और इस उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये सभी साधन अच्छे हैं तथा सबका व्यवहार किया जा सकता है। परंतु यह समझना एक बड़ी भारी भूल होगी कि जब यह उद्देश्य सिद्ध हो गया तब सब कुछ किया जा चुका। मूल तत्त्व-रूपमें सब कुछ हो चुका, सिद्धांत-रूपमें विजय-श्री प्राप्त हो गयी, और जिन लोगोंका उद्देश्य अपनी निजी मुक्तिके लिये अहंकारपूर्ण अभीप्सा करना है वे संतुष्ट हो सकते हैं तथा तेरी अभिव्यक्तिकी कोई परवा न करते हुए केवल इसी अंतर्मिलनमें और इसी मिलनके लिये जीवन धारण कर सकते हैं।

परंतु जिन लोगोंको तूने पृथ्वीपर अपना प्रतिनिधि बननेके लिये चुना है वे इस प्रकार प्राप्त परिणामसे कभी संतुष्ट नहीं हो सकते। सर्वप्रथम, प्रत्येक दूसरी वस्तुसे पहले तुझे जानना होगा, पर एक बार तेरे विषयमें ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर तेरी अभिव्यक्तिका सारा ही कार्य बाकी रह जाता है, और उसके बाद उस अभिव्यक्तिका आकार-प्रकार उसकी शक्ति, बहुविधता तथा परिपूर्णता सामने आ उपस्थित होती है।

बहुधा ऐसा होता है कि जिन लोगोंने तुझे जान लिया है वे उस ज्ञानसे अभिभूत तथा उसके परमानंदमें पागल होकर स्वयं अपने लिये तेरा दर्शन पाने और यथासंभव अच्छे-से-अच्छे या बुरे-से-बुरे रूपमें तुझे अपनी बाह्यतम सत्तामें अभिव्यक्त करनेसे ही संतुष्ट हो जाते हैं। परंतु जो मनुष्य तेरी अभिव्यक्तिमें पूर्ण बनना चाहता है वह इस बातसे संतुष्ट नहीं हो सकता; उसे अपनी सत्ताके सभी स्तरोंमें, सभी अवस्थाओंमें, तुझे अभिव्यक्त करना होगा और इस तरह जो ज्ञान उसने प्राप्त किया है उसे समूचे विश्वके लिये उससे यथासंभव अधिक-से-अधिक लाभ आहरण करना होगा।

इस कार्यक्रमकी विशालताको देखकर मेरी समूची सत्ता पुलकित हो रही है तथा तेरा स्तवगान कर रही है।

समस्त प्रकृति सचेतन रूपसे संपूर्ण सक्रिय है, तेरी सर्वोच्च शक्तियोंके द्वारा स्पंदित हो रही है, उनकी अनुप्रेरणाका प्रत्युत्तर दे रही है तथा उनके द्वारा प्रकाशित और रूपांतरित होना चाहती है। तू ही इस जगत्का अधीश्वर है, अद्वितीय सद्वस्तु है!

१४ जून, १९१४

यह वास्तवमें एक सृजनका कार्य है जिसे हमें करना है: नवीन कार्यावलियों और सत्ताके नवीन रूपोंकी सृष्टि करनी होगी जिसमें कि अभीतक पृथ्वीके लिये अज्ञात यह दिव्य शक्ति अपनी पूर्णताके साथ अभिव्यक्त हो सके। हे प्रभु, इसी जन्म देनेके कार्यके लिये मैंने अपने-आपको उत्सर्ग किया है, क्योंकि तू मुझसे इसी बातकी मांग करता है। परंतु तूने जब इसी कार्यके लिये मुझे चुना है तब तू मुझे इसके साधन भी अवश्य देगा, अर्थात्, इसकी सिद्धिके लिये आवश्यक ज्ञान भी देगा। हम दोनों एक साथ मिलकर प्रयास करेंगे; समस्त व्यष्टिगत सत्ता उस दिव्य शक्तिकी अभिव्यक्तिकी पद्धतिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये निरंतर पुकार करेगी और उसीमें संपूर्ण एकाग्र हो जायगी, तथा तू, जो कि मेरी सत्ताका सर्वोत्तम केंद्र है, शक्तिको पूर्ण रूपसे प्रवाहित करेगा जिसमें कि वह सभी बाधाओंमें प्रवेश करे, उन्हें रूपांतरित करे तथा पराजित करे। यही है वह शर्त्तनामा जिसे तूने व्यष्टि-जीवनके जगतोंके साथ अपनी सही देकर पक्का किया है। तूने एक वचन दिया है, तूने इन जगतोंमें उन सबको भेजा

है जो योग्य हैं तथा जिन्हें इस वचनको पूरा करनेकी क्षमता दी गयी है। यह बात अब तेरे सर्वांगपूर्ण साहाय्यकी मांग करती है जिसमें कि जिस बातकी प्रतिज्ञा की गयी है वह पूरी हो जाय।

हमारे अंदर इन दोनों संकल्पों तथा दोनों धाराओंका संयुक्त होना अत्यंत आवश्यक है जिसमें कि उनमें संपर्क होनेके कारण प्रकाशदात्री चिनगारी उत्पन्न हो।

और, चूंकि यह कार्य करना ही है, यह अवश्य पूरा होगा।

१५ जून, १९१४

"मेरे हृदयमें चुपचाप पड़ी रह और कोई दुश्चिंता मत कर: जो कुछ करणीय है वह अवश्य पूरा होगा। और जब तू उसे बिना जाने करेगी ठीक तभी वह सबसे उत्तम रूपमें पूरा होगा....।"

हे नाथ! मैं तेरे हृदयमें विद्यमान हूं, और कोई भी चीज मुझे उससे दूर नहीं ले जा सकती। और इस हृदयकी अतल गहराइयोंसे, इसके दिव्यानंदकी प्रसन्नतापूर्ण शांतिके अंदर मैं तेरी अभिव्यक्तिके सभी बाहरी रूपोंका अवलोकन कर रही हूं जो तुझे अधिक अच्छी तरह समझने और अभिव्यक्त करनेके लिये संघर्ष कर रहे हैं, प्रयास कर रहे हैं।

यदि तेरी सिद्धिके लिये आवश्यक नये आकारोंके उत्पन्न होनेका समय आ गया हो, जैसा कि तू मुझे सूचित कर रहा है, तो अब उन रूपोंका उत्पन्न होना अत्यंत आवश्यक है। मेरी सत्ताके अंदरकी किसी चीजको इसका पूर्वाभास हो रहा है पर उसे उसका अभी ज्ञान नहीं है; अतएव वह अपनेको उसके अनुकूल बनानेका, जिस उच्चतातक तू इससे उठनेकी मांग कर रहा है उस उच्चतातक उठनेका प्रयास कर रही है। परंतु जो चीज तेरे विषयमें सचेतन है और जो तेरी शक्तिके अंदर निवास करती है, वह जानती है कि यह नया आकार तेरी अभिव्यक्तिकी अनंत प्रगतिके अंदर थोड़ा-सा उत्थान मात्र है, और वह सभी आकारोंको शाश्वत पूर्णत्वकी प्रशांत दृष्टिसे निहारती है।

और इस प्रशांतिके अंदर ही निहित है सिद्धिके लिये आवश्यक समस्त शक्ति।

हमें अचल निष्ठाके साथ उड़ान भरना अवश्य सीखना चाहिये; सुनिश्चित उड़ानमें ही पूर्ण ज्ञान निवास करता है।

१६ जून, १९१४

सूर्यकी तरह तेरी ज्योति पृथ्वीपर उतर रही है और तेरी किरणें विश्वको आलोकित कर देंगी। जो सब आधार केंद्रीय अग्निके तेजको अभिव्यक्त करनेके लिये पर्याप्त रूपमें शुद्ध, नमनीय और ग्रहणशील हैं वे एकत्र हो रहे हैं। यह कार्य बिलकुल ही मनमाने ढंगसे नहीं चल रहा है और न यह किसी एक या दूसरे आधारकी इच्छा या अभीप्सापर ही निर्भर है, बल्कि यह निर्भर है उसपर जो कि वह है, जो कि समस्त व्यक्तिगत निर्णयसे स्वतंत्र है। तेरी ज्योति विकीर्ण होना चाहती है; जो उसे अभिव्यक्त करनेमें समर्थ है वह उसे अभिव्यक्त करता है। और ये आधार इसलिये संघबद्ध हो रहे हैं कि जिस भागवत केंद्रको अभिव्यक्त करना है उसे वे, इस विभेदपूर्ण जगत्में जितनी पूर्णताके साथ गठित करना संभव हो उतनी पूर्णताके साथ गठित करें।

इस ध्यानकी अद्‌भुत अवस्थामें मग्न होकर मेरी सत्ताके सभी कोष उल्लसित हो रहे हैं; और जो कुछ चिर-विद्यमान है उसे देखकर सत्ताका सर्वांग आनंदमें डूब गया है। अब भला तुझसे इस सत्ताको कैसे पृथक् किया जाय? अब यह तेरे साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त कर संपूर्ण रूपसे, सर्वांगीण रूपसे और घनिष्ठ रूपसे 'तू' बन गयी है।

१७ जून, १९१४

अबतक मैंने जो धारणा बनायी है और जो कुछ उपलब्ध किया है वह सब जो होना चाहिये उसके मुकाबले अति सामान्य, साधारण, अपर्याप्त है। भूतकालकी पूर्णताओंमें आज कोई शक्ति नहीं है। अब तो नयी शक्तियोंको रूपांतरित करनेका तथा तेरे दिव्य संकल्पकी अधीनतामें ले आनेके लिये एक नयी ही शक्तिमत्ताकी आवश्यकता है। — "मांग और जो मांगेगी वही होगा," बस यही है तेरा सतत उत्तर। और अब, हे भगवान्, तुझे इस सत्ताके अंदर एक ऐसी सतत, निरवच्छिन्न, तीव्र और उद्दाम अभीप्सा उत्पन्न करनी चाहिये जो अचल-अटल प्रशांतिके ऊपर प्रतिष्ठित हो। निश्चल-नीरवता, शांति वहां विद्यमान हैं। बस तीव्रताके अंदर उत्पन्न होनी चाहिये दृढ़ निष्ठा। हे भगवान्! तेरा हृदय आनंदपूर्ण जयगान कर रहा है मानों जो कुछ तू चाहता है वह सिद्धिके पथपर हो . . . इन

सभी उपकरणोंको ध्वंस कर दे जिसमें कि उनकी राखसे प्रकट हो जायं नयी अभिव्यक्तिके अनुकूल नये-नये उपकरण।

ओ, कितनी विशाल है तेरी ज्योतिर्मय शांति!

ओ, कैसा सर्वशक्तिमान् है तेरा सर्वोच्च प्रेम!

और हम जो कुछ चिंतन कर सकते हैं उस सबके परे है उस सद्वस्तुकी अनिर्वचनीय गरिमा जिसका हम भविष्य-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमें प्रदान कर सत्य-विचार, प्रदान कर सत्य-वचन, प्रदान कर सत्य-शक्ति . . .।

विश्वके रणांगनमें प्रवेश कर, हे अज्ञात नव-जातक!

१८ जून, १९१४

सर्वदा एक ही संकल्प-शक्ति कार्य कर रही है। शक्ति विद्यमान है और जबतक वह अभिव्यक्त नहीं हो पाती तबतकके लिये प्रतीक्षा कर रही है; नये आकारको ढूंढ़ निकालना होगा जो नवीन अभिव्यक्तिको संभव बनाये। और, हे प्रभु! तेरे सिवा और कोई भी हमें यह ज्ञान नहीं दे सकता। यह कार्य हमारी समग्र सत्ताका है कि वह प्रयास करे, मांगे और अभीप्सा करे। परंतु यह कार्य तेरा है कि तू ज्योति, ज्ञान और शक्तिके द्वारा उसका प्रत्युत्तर दे।

ओ, तेरी विजयिनी उपस्थितिका कैसा आनंद-गान चल रहा है . . .।

१९ जून, १९१४

अपने प्रेमके आनंदसे हमारे हृदयोंको भर दे।

अपनी ज्योतिकी जगमगाहटसे हमारे मनोंको परिप्लावित कर दे।

ऐसा वर दे कि हम तेरी विजयको अभिव्यक्त करें।

२० जून, १९१४

रूपांतरका कार्य तुझे पूर्ण करना ही होगा, जिस मार्गपर हमें चलना है उसे हमें दिखाना ही होगा और हमें वह शक्ति देनी होगी जिससे हम अंत-तक उसका अनुसरण कर सकें...।

हे भगवान्! तू समस्त प्रेम और समस्त ज्योतिका मूल स्रोत है; हम तेरा स्वरूप तो नहीं जान सकते, पर हम उसे क्रमशः अधिक पूर्ण और अखंड रूपमें अभिव्यक्त कर सकते हैं; तुझे हम अपने चिंतनद्वारा तो नहीं पकड़ सकते, पर हम गभीर नीरवतामें तेरे समीप पहुंच सकते हैं। हे प्रभु! तुझे अपने अपरिमेय दानोंकी मात्रा पूर्ण करनी होगी, हमारी सहा-यताके लिये तुझे आना होगा जबतक कि हम तेरी विजय अधिगत नहीं कर लेते...।

उस सत्य प्रेमको उत्पन्न कर जो सभी कष्टोंका शमन करता है; उस अचल-अटल शांतिको स्थापित कर जिसमें निवास करती है सच्ची शक्ति; प्रदान कर हमें चरम ज्ञान जो समस्त अंधकारका विनाश कर देता है...।

असीम गहराइयोंसे लेकर इस अत्यंत बाह्य शरीरतकमें, इसके छोटे-से-छोटे उपादानोंतकमें तू प्रवाहित हो रहा है, तू संजीवित हो रहा है, स्पंदित हो रहा है, सबको चला रहा है और यह समस्त सत्ता अब महज एक अखंड वस्तु है, अनंत-रूपोंवाली पर पूर्ण रूपसे संहत है, एक अद्वितीय और दुर्धर्ष स्पंदनद्वारा अनुप्राणित हो रही है, वह 'तू' ही है।

२१ जून, १९१४

एक ऐसा दर्पण बनना होगा जो चुपचाप प्रतिफलित भी करे और संपूर्ण रूपसे निर्मल भी बना रहे, एक साथ ही आंतर और बाह्य चीजोंकी ओर, अभिव्यक्तिके परिणामोंकी ओर तथा अभिव्यक्तिके मूल स्रोतकी ओर मुड़ा रहे जिसमें कि सभी कार्य परिचालिका संकल्प-शक्तिके सम्मुख स्थापित हो सकें, और उसके साथ-ही-साथ बनना होगा उस संकल्प-शक्तिकी संसिद्धि लानेवाली कार्यावली — बस, लगभग यही चीज है जो मनुष्यको बनना चाहिये....। पर इन दो भावोंको, निष्क्रिय रहकर ग्रहण करने तथा सक्रिय रहकर संसिद्ध करनेकी क्षमताको संयुक्त करना ही वह कार्य है

जिसे पूरा करना सबसे अधिक कठिन है। और इसी चीजकी तू हमसे अपेक्षा रखता है, हे प्रभु ! चूंकि तू हमसे इसीकी अपेक्षा रखता है इसलिये इसमें कोई संदेह नहीं कि तू हमें इसे संसिद्ध करनेका उपाय भी प्रदान करेगा।

क्योंकि जो कुछ होना उचित है वह होगा ही और इतने अधिक शानदार रूपमें होगा कि हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

हे भगवान्! तेरा प्रेम अभिव्यक्तिके अंदर अधिकाधिक विस्तारित होता रहे, प्रतिक्षण अधिक महान्, अधिक गभीर, अधिक विशाल बनता रहे ...।

२२ जून, १९१४

जो कुछ होना है वह होगा ही, जो कुछ करना है वह किया ही जायगा ...।

हे भगवान्! तूने मेरी सत्तामें कैसी स्थिर निश्चयता भर दी है? कौन अथवा क्या तुझे अभिव्यक्त करेगा? भला अभी कौन कह सकता है? ... जो चीजें एक पूर्णतर और उच्चतर नवीन अभिव्यक्तिके लिये प्रयास करती हैं उन सबमें तू विद्यमान है। परंतु ज्योति-केंद्र अभीतक प्रकट नहीं हुआ है, क्योंकि अभिव्यक्तिका केंद्र अभीतक पूर्ण रूपमें उसके अनुरूप गठित नहीं हुआ है।

हे परमेश्वर! जो कुछ होना है वह होगा ही और संभवतः सब लोग जैसी आशा करते हैं उससे बहुत भिन्न होगा ...।

परंतु किन्हीं नीरव गूढ़ रहस्योंको भला कैसे व्यक्त किया जाय?

शक्ति विद्यमान है; उसीमें है मेरा 'मैं'।

वह शक्ति कब और कैसे बाहर फूट निकलेगी? तभी जब तू निर्णय देगा कि यंत्र तैयार हो गया है।

तेरी शांत निश्चयतामें कैसी मिठास है, तेरी शांतिमें कितनी शक्ति है...!

२३, जून, १९१४

तू पूर्ण रूपांतरकी शक्ति है; जो लोग हमारे द्वारा तेरे संपर्कमें आये हैं उनके ऊपर भला तू क्यों नहीं कार्य करेगा? तेरी शक्तिपर हमें विश्वास नहीं है; हम सर्वदा ही यह समझते हैं कि मनुष्योंको अपने सचेतन विचारके अंदर इस सर्वांगपूर्ण रूपांतरकी कामना अवश्य करनी चाहिये अन्यथा वह कभी साधित नहीं हो सकता; हम यह भूल जाते हैं कि उनके अंदर तू ही कामना करता है और तू ऐसे ढंगसे कामना कर सकता है कि उसके फलसे उनकी समस्त सत्ता आलोकित हो सके ...। हम तेरी शक्तिपर संदेह करते हैं, हे प्रभु, और इस कारण हम उसके अधूरे मध्यस्थ बन जाते हैं तथा उसकी रूपांतरकारिणी शक्तिके अधिकांश भागको ढक रखते हैं।

हे प्रभु! वह विश्वास हमें प्रदान कर जिसकी हममें कमी है, छोटी-मोटी सभी बातोंमें रहनेवाला यह दृढ़ प्रत्यय प्रदान कर जिसका हमारे अंदर अभाव है। हमें सोचने और निर्णय करनेके साधारण तरीकेसे मुक्त कर; ऐसी कृपा कर कि तेरे असीम प्रेमकी चेतनामें निवास करते हुए उस प्रेमको प्रति मुहूर्त कार्य करता हुआ देखें तथा उसके विषयमें हम जितने सचेतन हों उसके द्वारा हम उस सत्ताको अत्यंत स्थूल भूमिकाओंके साथ संयुक्त कर दें ...।

हे भगवान्! हमें समस्त अज्ञानसे मुक्त कर, हमें सच्चा विश्वास प्रदान कर।

२४ जून, १९१४

अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे, पृथ्वीपर जो कार्य जारी रखना है उसकी दृष्टि-से एक क्रमबद्ध व्यवस्थाकी आवश्यकता है। इस जगत्में, जो कुछ अभी भी अव्यवस्थित है, क्या उसे किसी प्रकारकी स्वैरेच्छाके दबावके बिना, अर्थात्, तेरे विधानके साथ पूर्ण सामंजस्य रखते हुए स्थापित किया जा सकता है? ... साक्षी पुरुष स्थिर, उदासीन, प्रफुल्ल है, इस लीलाको, यह जो प्रहसन चल रहा है इसको निहार रहा है, प्रशांत भावसे सभी परिस्थितियोंमें प्रतीक्षा करता है, वह यह जानता है कि जो कुछ होना चाहिये उसके ये बहुत ही अपूर्ण प्रतिरूप हैं।

परंतु भक्तिभावपूर्ण मेरी सत्ता प्रेमकी एक महान् अभीप्सा लेकर तेरी

ओर मुड़ रही है, भगवन्, और तेरी सहायताकी प्रार्थना कर रही है जिसमें कि जो कुछ संसिद्ध हो वह सर्वोत्तम हो, जिसमें कि सभी संभवनीय बाधाएं पार कर ली जायं, समस्त संभाव्य अंधकार विलीन हो जाय, सभी संभावित अहंजन्य अशुभ इच्छाएं जीत ली जायं। वर्तमान अव्यवस्थाकी परिस्थितियोंके अंदर जो कुछ सर्वोत्तम हो, बस वही न घटित हो — क्योंकि वैसा तो बराबर ही घटित होता है — बल्कि स्वयं ये परिस्थितियां ही, पहलेकी अपेक्षा कहीं महत्तर प्रयासोंके द्वारा, रूपांतरित हो जायं जिसमें कि गुण और परिणाम दोनों ही दृष्टियोंसे कोई नवीन सर्वोत्तम वस्तु, कोई एकदम अद्भुत सर्वोत्तम वस्तु घटित हो जाय।

ऐसा ही हो!

* * *

भविष्यसंबंधी अपनी किसी धारणाके आधारपर भविष्यका विचार करना अथवा उसे आगेसे देख लेनेकी चेष्टा करना सर्वदा ही हमारे लिये भूल भरा होता है; क्योंकि यह धारणा वर्तमान समयकी होती है, और वह, चाहे जितने अंशमें भी निर्वैयक्तिक क्यों न हो, पार्थिव समस्याके सभी अंगोंके बीचके वर्तमान सम्बन्धोंका ही रूपांतर होता है और यह जरूरी नहीं कि वर्तमान कालके संबंध अनिवार्य रूपसे भविष्यके ही संबंध हों। वर्तमान परिस्थितियोंके आधारपर भावी परिस्थितियोंका अनुमान लगाना युक्ति-तर्ककी कोटिकी एक मानसिक क्रिया है, यद्यपि यह अनुमान अचेतनाके अंदर उत्पन्न होता है और सत्ताके अंदर संबोधिके रूपमें रूपांतरित होता है; और युक्ति-तर्ककी प्रेरणा अनंतसे, असीमसे, भगवान्से नहीं आती। केवल सर्व-ज्ञानके अंदर चले जानेपर ही, जब हम एक साथ ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान-शक्ति बन जाते हैं केवल तभी हम भूत, भविष्य और वर्तमानके सभी संबंधोंके विषयमें सचेतन हो सकते हैं; परंतु उस स्थितिमें न तो भूत रह जाता है न भविष्य और न वर्तमान ही, उस समय तो सब कुछ शाश्वत रूपसे विद्यमान रहता है। और इन सब संबंधोंकी अभिव्यक्तिका क्रम केवल परात्पर प्रेरणाके ऊपर, भागवत विधानके ऊपर ही नहीं निर्भर होता, बल्कि उस दिव्य विधानके विरुद्ध जो बाह्यतम जगत्की ओरसे बाधा आती है उसपर भी निर्भर होता है; इन दोनोंका संमिश्रण होनेपर ही जागतिक लीला उत्पन्न होती है और वर्तमान कालकी चेतनाके द्वारा जहांतक जानना मेरे लिये संभव है उससे मैं देखती हूं कि वह संमिश्रण

एक प्रकारसे अनिर्दिष्ट है। और ठीक यहींपर तो लीला है, उस लीला-का अनपेक्षित रूप...।

२५ जून, १९१४

भला, इस प्रकारके होंगे या उस प्रकारके ऐसी इच्छा करनेमें कौन-सी बुद्धिमानी है? इस प्रकार परेशान होनेका क्या कारण है? हे भगवान्? क्या तू सर्वश्रेष्ठ कर्मी नहीं है? क्या तेरा अनुगत यंत्र बनना ही हमारा कर्तव्य नहीं है? और यदि तू अपने यंत्रको कुछ समयके लिये एक कोनेमें रख दे तो क्या वह शिकायत करेगा कि तूने उसका त्याग कर दिया है और उससे तू कोई काम नहीं ले रहा है? क्या क्रिया-शीलता और संघर्षका आनंद लेनेके बाद वह शांति और विश्रामका आनंद लेना नहीं सीखेगा?

हमें सदा सजग रहना चाहिये, छोटी-से-छोटी पुकारका उत्तर देनेके लिये भी सर्तक रहना चाहिये, जिसमें कि, जब तू हमें मन, हृदय या शरीरसे काम करनेका संकेत दे तब हम बिलकुल सोये न रह जायं, निष्क्रिय न बने रहें। हमें सतत प्रतीक्षा और अनुगत शुभेक्षाको भूलवश एक प्रकारका दुश्चितापूर्ण अस्थिर चंचलताका, यह या वह न हो सकने और तुझे असंतुष्ट करनेका, अर्थात् तू हमसे जो आशा करता है वैसा न बननेका भय नहीं समझ लेना चाहिये।

तेरा हृदय परम आश्रय-स्थान है जिसमें सभी दुश्चिताओंका अवसान हो जाता है। हे भगवान्! उस हृदयको एकदम खोल दे जिसमें कि जो लोग व्यथित हैं वे वहां सर्वोत्तम आश्रय पा सकें ...।

इस अंधकारको विदीर्ण कर, ज्योतिके फौवारेको उन्मुक्त कर।
इस तूफानको निस्तब्ध कर, शांतिको स्थापित कर।
यह हिंस्र-भाव शांत कर, प्रेमका राज्य स्थापित कर।
योद्धा बन, विघ्न-बाधाओंका विजेता बन, विजय ले आ।

२६ जून, १९१४

तुझे प्रणाम है हे भगवान्! हे संसारके स्वामी! हमें ऐसी शांति दे कि हम कर्ममें आसक्त हुए बिना उसे पूरा कर सकें। व्यष्टि-भावके मोहमें निवास किये बिना लीलाके अपने व्यक्तिगत सामर्थ्योंको विकसित कर सकें। हमारी सत्य-दृष्टिको सबल बना; हमारे एकत्वके अनुभवको सुदृढ़ बना; समस्त अज्ञानसे, समस्त अंधकारसे हमें मुक्त कर।

हम यंत्रकी परिपूर्णताकी मांग नहीं करते, हम जानते हैं कि इस आपेक्षिक जगत्में सब परिपूर्णताएं भी आपेक्षिक हैं; इस यंत्रको, जो इस जगत्में कार्य करनेके लिये अभिप्रेत है, इस कार्यके योग्य बननेके लिये इसी जगत्से संबंध रखना होगा; परंतु जो चेतना इसे संजीवित करती है उसे तेरी चेतनाके साथ एक होना होगा, उसे वह विश्वगत और शाश्वत चेतना बन जाना होगा जो नाना प्रकारके असंख्य शरीरोंको अनुप्राणित करती है।

हे नाथ, ऐसा वर दे कि हम सृष्टिके साधारण रूपोंको अतिक्रम कर ऊपर उठ जायं जिससे कि तू अपनी नयी अभिव्यक्तिके लिये आवश्यक उपकरण प्राप्त कर सके।

हमें लक्ष्य न भूलने दे; ऐसी कृपा कर कि हम सर्वदा तेरी शक्तिके साथ संयुक्त रहें — उस शक्तिके साथ जिसे पृथ्वी अभीतक नहीं जानती और जिसे प्रकट करनेका कार्य तूने हमें सौंपा है।

गभीर अंतर्मुखी एकाग्रताके अंदर अभिव्यक्तिकी सभी अवस्थाएं तेरी अभिव्यक्तिके हेतु आत्मसमर्पण करती हैं।

२७ जून, १९१४

तूने जो कुछ मेरी सत्ताको दिया है उससे वह संतुष्ट है; तू उससे जो कुछ आशा करता है वह वही करेगी, कोई दुर्बलता, कोई मिथ्या विनय नहीं दिखायेगी, कोई निरर्थक महत्त्वाकांक्षा नहीं रखेगी। भला इससे क्या आता-जाता है कि कोई किस पदपर है, तूने किसको कौन-सा व्रत पूरा करनेके लिये दिया है? ... क्या यही सब कुछ नहीं है कि मनुष्य, जितने पूर्ण रूपमें संभव हो उतने पूर्ण रूपमें, संपूर्ण तेरा बन जाय और किसी प्रकारकी चिंता न करे?

जब यह गभीर और अचल-अटल विश्वास प्राप्त है कि तेरा कार्य पूरा होगा और जो लोग यह कार्य करेंगे उन्हें तूने उत्पन्न किया और निर्वाचित किया है, तब भला जो कुछ सिद्ध हो चुका है उसके लिये वृथा शक्तिका अपव्यय क्यों किया जाय और उसकी इच्छा क्यों की जाय? हे भगवान् ! तूने मुझे इस विश्वाससे प्राप्त होनेवाली परम शांति प्रदान की है; तूने मुझे अपने प्रेमके अंदर अपने प्रेमके द्वारा जीवन धारण करने तथा अधिकाधिक तेरा प्रेम ही बनते जानेका अनुपम वरदान दिया है; और उस प्रेममें ही निहित है पूर्ण और एकरस परमानंद ।

मैं तुझसे केवल एक ही प्रार्थना करती हूं, यद्यपि मैं जानती हूं कि वह पहले ही स्वीकृत हो चुकी है: उन सब उपकरणोंकी संख्या — भले ही वे अणु हों या विश्व — निरंतर बढ़ाता रह जो संपूर्ण रूपसे तेरे प्रेममें और तेरे प्रेमके द्वारा जीवन धारण करनेमें समर्थ हों . . .।

शांति, समस्त पृथ्वीपर शांति . . .।

२८ जून, १९१४

हे प्रभु ! समस्त प्रकृति तुझे नमस्कार करती है, तथा अपनी भुजाओंको उठाकर, अपने हाथोंको पसारकर तुझसे याचना करती है। यह बात नहीं कि वह तेरी असीम उदारतामें संदेह करती है और यह समझती है कि पाने लिये उसे तुझसे मांगना ही चाहिये; बल्कि यह तो तुझे प्रणाम निवेदन करने तथा तुझे आत्मदान करनेका उसका एक तरीका है, क्योंकि यह आत्मदान उसकी ग्रहण करनेकी तैयारीके सिवा क्या और कोई चीज है? इस तरह तुझे एक प्रार्थना सुनाना उसे प्रिय लगता है यद्यपि वह जानती है कि यह प्रार्थना अनावश्यक है। फिर भी यह एक तीव्र और आनंदप्रद आराधना है। और इससे उसकी भक्ति-भावना संतुष्ट होती है और जो बौद्धिक चेतना यह जानती है कि तू सबके साथ एक है तथा सबमें विराजमान है, उसे भी किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचती।

परंतु सभी पर्दे दूर होने चाहियें तथा सबके हृदयमें पूर्ण ज्योति प्रकाशित होनी चाहिये।

हे भगवान् ! कर्म होते हुए, उस कर्ममें ही, हमें आत्माकी वह पूर्ण शांति प्रदान कर जिसके फलस्वरूप दिव्य एकत्व, सर्वांगपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

हे नाथ! तेरे लिये जो मेरा प्रेम है वह तो 'तू' ही है और फिर भी मेरा प्रेम भक्ति-भावके साथ तेरे सामने नतमस्तक हो रहा है।

२९ जून, १९१४

तू उन सबको प्रसन्नता दे, शांति और सुख . . .। यदि वे दुःखी हों तो उनके दुःखको अपनी ज्योतिसे प्रज्वलित कर और उस दुःखको रूपांतरका एक साधन बना दे: तू उन्हें अपने प्रेमका परमानंद तथा अपने एकत्वकी प्रशांति प्रदान कर; उनके हृदय तेरी शाश्वत उपस्थितिको अपने अंदर स्पंदित होते हुए अनुभव करें। वे सब मेरे अंदर हैं, हे भगवान्, तथा मैं उन सबके भीतर हूं; और चूंकि मेरे 'मैं' के स्थानमें अब केवल तेरा परम प्रेम विद्यमान है, वे सब तेरे प्रेमके अंदर हैं और उसके द्वारा वे रूपांतरित होंगे।

हे प्रभु! हे मेरे परम प्रिय परमेश्वर! तू अज्ञेय ज्योति है; प्रदान कर उन्हें प्रसन्नता, शांति और सुख।

३० जून, १९१४

प्रत्येक कर्म-वृत्ति अपने निजी क्षेत्रोंमें यदि अपने विशिष्ट उद्देश्यको पूरा करती, कोई विशृंखला, कोई अस्त-व्यस्तता नहीं उत्पन्न करती, परस्पर एक-दूसरेको ढके रहती, और सभी एक ही केंद्र अर्थात् तेरी इच्छाके इर्द-गिर्द क्रमशः विभिन्न स्तरोंमें सुविन्यस्त होतीं तो . . .। सभी जीवोंमें सबसे अधिक अभाव जिस चीजका है वह है स्वच्छता और सु-श्रृंखला; प्रत्येक अंग, सत्ताका प्रत्येक स्तर, अन्य दूसरोंके साथ मेल रखते हुए अपना कार्य पूरा करनेके बदले स्वयं ही सर्वेसर्वा होना चाहता है, पूर्ण स्वाधीन और स्वतंत्र होना चाहता है। परंतु ठीक यहींपर समस्त विश्वकी अज्ञानजनित भूल है जो एक विश्वजनीन भूल है और सहस्र-सहस्र उदाहरणोंमें पुनरावर्तित होती रहती है। परंतु यह बहाना बनाना कि ये सब क्रियाएं विभक्त तथा अव्यवस्थित हैं और इसलिये इन्हें रद्द कर देनेकी इच्छा करना जिसमें कि एकमात्र तेरी ही इच्छा बनी रहे,—

यद्यपि ऐसी निःसंग इच्छाके अस्तित्वका भी कोई प्रयोजन नहीं, — एक ऐसी प्रचेष्टा होगी जो एक साथ ही निरर्थक और असाध्य भी है। निश्चय ही, व्यवस्थित करनेकी अपेक्षा रद्द कर देना अधिक आसान है; पर सुसमंजस रूपमें व्यवस्था करना एक ऐसी सिद्धि है जो रद्द कर देनेकी अपेक्षा कहीं अधिक महान् है। और यदि अंतिम लक्ष्य असत्की ओर लौट आना भी हो तो भी मुझे ऐसा लगता है कि यह प्रत्यावर्तन सत्ताकी सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त करनेके बाद ही संभव होगा ...।

हे मेरे परम प्रिय राजा, ऐसी कृपा कर कि ये तेरे अनंत स्नेहको अनुभव कर सकें तथा वह स्नेह जो प्रशांत विश्रांति प्रदान करता है उसके अंदर वे तेरे विधानकी परम व्यवस्थाको देखने और संसिद्ध करनेमें समर्थ हों।

तेरी जो प्रेममयी इच्छा है, तथा तेरी जो शांति है वे दोनों अभिव्यक्त हों।

१ जुलाई, १९१४

हे भगवान्! आदर और प्रसन्नताके साथ हम तुझे प्रणाम करते हैं तथा नित नूतन होनेवाले एक दानके रूपमें हम अपने-आपको तुझे दे रहे हैं जिसमें कि तेरी इच्छा इस पृथ्वीपर, इस विश्वके सभी स्थानोंमें पूर्ण हो।

जब हम तेरी ओर मुड़ते हैं तब हमारे विचार मौन हो जाते हैं, पर हमारा हृदय उल्लसित हो उठता है, क्योंकि तू सभी चीजोंमें चमकता और बालूका एक छोटे-से-छोटा कण भी तेरी पूजाका एक सुअवसर प्रदान कर सकता है।

हम तेरे सामने नतमस्तक हैं, हम तेरे साथ युक्त हो रहे हैं, हे भगवान्, एक असीम प्रेमके साथ जो एक अनिर्वचनीय आनंदसे भरा हुआ है।

ओ! यह परमोल्लास सबको प्रदान कर।

४ जुलाई, १९१४

हे चरम शक्ति, विजयी सामर्थ्य, पवित्रता, सौंदर्य, परात्पर प्रेम! ऐसी कृपा कर कि यह अखंड सत्ता, यह समग्र शरीर श्रद्धा-भक्तिके साथ तेरे निकट पहुंचे और पूर्ण तथा विनम्र आनुगत्यके साथ सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्ति-

के इस उपकरणको तुझे अर्पित कर दे, जो, यदि अभी इस सिद्धिके लिये पूर्णतः परिपक्व न हो तो भी, तेरी इच्छाके प्रति निवेदित तो हो ही चुका है....।

इस शांति और दृढ़ विश्वासके साथ कि एक दिन तू अपेक्षित चमत्कार-को अवश्य पूरा करेगा तथा अपने परम ऐश्वर्यको पूर्ण रूपसे अभिव्यक्त करेगा, हम गंभीर आनंदके साथ तेरी ओर मुड़ रहे हैं और नीरव होकर तुझसे विनती कर रहे हैं....।

विशाल, अनंत, आश्चर्यमय...एकमात्र तू ही विद्यमान है और तू ही समस्त वस्तुओंमें चमक रहा है। तेरी सिद्धिका मुहूर्त सन्निकट है। समग्र प्रकृति गंभीरतापूर्वक आत्म-समाहित हो रही है। उसकी तीव्र पुकारका तू उत्तर दे रहा है!

५ जुलाई, १९१४

बाह्य और निम्न सत्ता अभी भी तमसाच्छन्न है और उससे संबंध रखने-वाली सभी चीजें एक मौन तथा तीव्र पूजा-भावके साथ साष्टांग प्रणाम कर रही हैं। वे अपनी सारी शक्ति लगाकर तेरी शुद्धिदायिनी क्रियाका आवाहन कर रही हैं जो उन्हें तुझे पूर्ण रूपसे प्रकट करनेके योग्य बना देगी।

और इस पूजा-भावमें निहित है पूर्ण नीरवता तथा परिपूर्ण आनंद।

करुणापूर्वक तू उस आवाहनका उत्तर दे रहा है: "जो कुछ होना उचित है वह होगा ही। आवश्यक उपकरण तैयार किये जायंगे। दृढ़ विश्वासकी प्रशांतिके साथ तू प्रयास कर।"

६ जुलाई, १९१४

कितनी पूर्ण है यह उपलब्धि! समूची व्यष्टि-सत्ता विनम्र, विनीत, अनु-गत, अनुरक्त, प्रशांत और प्रफुल्लित है, वह अपनेको सबके साथ एक अनु-भव करती है, वह मूल्यकी दृष्टिसे कोई पार्थक्य नहीं कर सकती, वह 'सर्व'के साथ संपूर्ण रूपसे युक्त है और उस 'सर्व' को एक संग लेकर तेरे सम्मुख घुटने टेक रही है; और फिर उसके साथ-ही-साथ वहां विद्यमान है दुर्दम-नीय सर्वसामर्थ्यशालिनी तेरी शक्ति, जो अभिव्यक्त होनेके लिये तत्पर है,

प्रतीक्षा कर रही है, शुभ मुहूर्तका, अनुकूल अवसरका निर्माण कर रही है, जो तेरे विजयी एकाधिपत्यकी अतुलनीय महिमा है।

देखो, शक्ति यहां विद्यमान है। आनंद मनाओ तुम लोगो, जो प्रतीक्षा कर रहे हो, आशा लगाये हुए हो; नया प्रादुर्भाव निश्चित है; नये आविर्भावका समय समीप आ गया है।

देखो, शक्ति यहां विद्यमान है।

समस्त प्रकृति उल्लसित हो रही है और आनंदमें गा रही है, संपूर्ण प्रकृति उत्सव मना रही है। देखो, शक्ति यहां विद्यमान है।

उठो और सजीव बनो, उठो और ज्योतिर्मय बनो; उठो और सबके रूपांतरके लिये युद्ध करो।

देखो, शक्ति यहां विद्यमान है।

७ जुलाई, १९१४

शांति, समस्त पृथ्वीपर शांति....।

किसी अचेतन निद्राकी अथवा किसी आत्म-संतुष्ट तामसिकताकी शांति नहीं चाहिये; किसी आत्मविस्मृत अज्ञानकी तथा किसी तमसाच्छन्न और भाराक्रांत उदासीनताकी शांति नहीं चाहिये; बल्कि सर्व-समर्थ शक्तिकी शांति, परिपूर्ण एकत्वकी शांति, सर्वांगीण जागृतिकी, समस्त सीमाबंधन तथा समस्त अंधकारके अपसारित होनेकी शांति चाहिये...।

भला यह संताप और कष्ट क्यों? यह कठोर संघर्ष तथा यह दुःखदायी विद्रोह क्यों? भला यह व्यर्थका हिंसा-द्वेष क्यों? यह अचेतन और भार-ग्रस्त निद्रा क्यों? निर्भय होकर जग जाओ, अपने संघर्षोंको शांत करो, अपने कलहोंको बन्द करो, अपनी आंखों तथा अपने हृदयोंको खोलो: देखो, शक्ति विद्यमान है; वह है परम पवित्र, ज्योतिर्मय, सामर्थ्यपूर्ण; वह विद्यमान है असीम प्रेमके रूपमें, चरम बल-वीर्यके रूपमें, निर्विवाद सत्यके रूपमें, अविमिश्र शांतिके रूपमें, अविच्छिन्न आनंदके रूपमें, परम श्रेयके रूपमें; वह स्वयं सत् है, अनंत ज्ञानकी असीम तृप्ति है...और वह और भी अधिक कुछ चीज है जिसे अभी कहा नहीं जा सकता, पर जो विचार जगत्से ऊपर स्थित उच्चतर लोकोंमें चरम रूपांतर लानेवाली शक्तिके रूप-में कार्य कर रही है तथा जड़तत्त्वके निश्चेतन गहराइयोंमें भी अव्यर्थ रोग-नाशिनी शक्तिके रूपमें कार्य कर रही है...।

सुन, सुन, ऐ जाननेकी इच्छा रखनेवाले, सुन। ध्यानपूर्वक देख और जीवनमें उतार। देख, ऐ देखनेकी इच्छा रखनेवाले, शक्ति यहां विद्यमान है!

८ जुलाई, १९१४

हे भागवत शक्ति! हे परम प्रकाशदात्री! हमारी प्रार्थना सुन, हमसे दूर मत जा, पीछे मत हट, अच्छे ढंगसे युद्ध करनेमें हमारी सहायता कर, युद्धके लिये हमारी शक्ति-सामर्थ्यको सुदृढ़ बना, हमें विजय प्राप्त करनेकी क्षमता प्रदान कर।

हे मेरे मधुर ईश्वर! मैं तेरी पूजा करती हूं पर तुझे जाननेकी शक्ति मुझमें नहीं है, मैं 'तू' ही हूं पर तुझे उपलब्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है; मेरा समस्त सचेतन व्यक्तित्व तेरे सम्मुख साष्टांग प्रणाम कर रहा है और संघर्ष करनेवाले कार्यकर्ताओं तथा आर्त्त पृथ्वीके नामपर, दुःखी मानव-जाति तथा प्रयासशील प्रकृतिके नामपर अनुनय-विनय कर रहा है; हे मेरे परम प्रिय देवता, अनुपम अज्ञेय, निखिल श्रेयके विधाता, तू ही अंधकार-के भीतरसे ज्योतिकी धारा बहा देता है और दुर्बलताके भीतरसे शक्ति उत्पन्न कर देता है, तू हमारे प्रयासोंको सहारा दे, हमारे पगोंको रास्ता दिखा, विजय-द्वारतक हमें पहुंचा दे।

१० जुलाई, १९१४

हे भगवान्! सनातन रूपमें, अक्षय रूपमें तेरा अस्तित्व है और तूने इस जगत्में संभूत होना स्वीकार किया है जिसमें कि तू इसे एक ज्योति दे सके, एक नवीन प्रेरणा इसमें भर सके। तू यहां मौजूद है, अधिकाधिक परिपूर्णताके साथ, सर्वांगीण रूपमें तू अभिव्यक्त हो; यंत्रने अपने-आपको दे दिया है और उसने एक उत्साहपूर्ण निष्ठाके साथ, एक सर्वांगपूर्ण समर्पण-भावके साथ अपने-आपको तुझे दे डाला है; तू उसे धूलि कणमें परिणत कर सकता है अथवा सूर्यमें रूपांतरित कर सकता है, तेरी इच्छा जो भी क्यों न हो वह उसमें कोई बाधा नहीं डालेगा। इस आनुगत्यमें ही तो है उसकी सच्ची शक्तिमत्ता और आनंद।

पर इस शरीरके पशुत्वके साथ तू दयाका व्यवहार क्यों करता है? क्या इसका कारण यह है कि तेरी शक्तिकी अद्भुत बहुविधता, अनंत शक्तिशालिताके साथ मेल बैठानेके लिये उसे समय देनेकी आवश्यकता है? क्या तेरी इच्छा-शक्ति ही कोमल और धैर्यशील बन जाती है और हठात् बलपूर्वक कोई काम नहीं करना चाहती बल्कि उपादानोंको अवकाश देती है जिसमें ये अपने-आपको उपयुक्त बना सकें? .... तात्पर्य : क्या ऐसा करना ही सबसे उत्तम है अथवा अन्य रूपमें करना असंभव है? क्या तू किसी विशेष अक्षमताको उदारतापूर्वक सहन करता है अथवा यह कोई साधारण नियम है और जो कुछ रूपांतरित करना है उसीका यह भी एक अनिवार्य अंग है? ....

जब बात ऐसी ही है तब भला इससे क्या आता-जाता है कि हम इसके विषयमें क्या सोचते-समझते हैं? केवल मनोभाव ही महत्त्वपूर्ण है : उसके साथ युद्ध करना होगा, या उसे स्वीकार कर लेना होगा? और मनोभाव भी तो तू ही देता है, तेरी संकल्प-शक्ति ही प्रतिमुहूर्त्त उसका निर्णय करती है। तब भला भविष्यको जानने तथा पहलेसे ही चाल ठीक कर लेनेकी क्या आवश्यकता है जब कि जो कुछ हो रहा है उसे देखना और पूर्णतः उसे मान लेना ही यथेष्ट है? ....

शरीरके कोषाणुओंके गठनमें जो कार्य चल रहा है वह दिखायी दे रहा है : उनमें यथेष्ट मात्रामें शक्ति भर गयी है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे फूलकर बड़े हो रहे हैं और अधिक हलके बनते जा रहे हैं। परंतु मस्तिष्क अभी भी भाराक्रांत और प्रसुप्त है...।

हे भगवान्! मैं इस शरीरके साथ युक्त हो रही हूं और तुझसे प्रार्थना कर रही हूं : मुझपर दया न दिखा, अपनी चरम शक्तिमत्ताके साथ कार्य कर; मेरे अंदर तूने ही तो सर्वांगपूर्ण रूपांतरकी इच्छा भर दी है।

११ जुलाई, १९१४

समस्त स्थूल आधार एक अंतहीन आराधनाके अंदर गल जाना और पुनर्गठित होना चाहता है। हे भगवान्! तू चरम महाशक्ति और महानंदका दूत बनकर आया है और तूने जड़को स्पर्श किया है, सर्वांगीण सिद्धिका जो स्वरूप होगा उसका बोध तूने उत्पन्न किया है। और जब आधारको विश्वास हो गया कि उसे महान् आज्ञापत्र सुनिश्चित रूपसे मिल गया

है तब तू अंतर्धान हो गया, उसे बता दिया कि यह तो केवल एक आश्वासन था, जो कुछ हो सकता है उसका पूर्वचिह्न था। हाय, इस जड़तत्त्वकी अपूर्णता कितनी बड़ी है कि हम तुझे पकड़कर नहीं रख सकते! हे प्रभु! अपनी सर्वशक्तिमत्ताका प्रयोग कर, स्थायी रूपसे यहां अभिव्यक्त होनेका चमत्कार पूरा कर, भला इतनी दया-माया क्यों? हम चाहे विजयी हों या ध्वंसको प्राप्त हो जायं!

जय! जय!! जय!!! हम चाहते हैं परम रूपांतरकी जय!

१२ जुलाई, १९१४

सत्ताके सभी स्तरोंमें, कर्मकी सभी धाराओंमें, सभी वस्तुओंमें, सभी लोकोंमें, हम तेरा साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं तथा तेरे साथ युक्त हो सकते हैं, क्योंकि तू सर्वत्र और सर्वदा उपस्थित है। जिसने अपनी सत्ताकी किसी एक क्रियामें अथवा किसी एक विश्वव्यापी जगत्‌में तेरा साक्षात्कार प्राप्त किया है वह कहता है: "मैंने उसे पा लिया है" और फिर अन्य किसी चीजकी खोज नहीं करता; वह समझता है कि वह मानवीय संभावनाओंके शिखरपर पहुंच गया है। कैसी भूल है यह! हमें तो सभी स्तरोंपर, सभी धाराओंमें, सभी वस्तुओंमें और सभी लोकोंमें, प्रत्येक उपकरणके अंदर तेरा आविष्कार करना होगा और तेरे साथ युक्त होना होगा और यदि हम किसी एक उपकरणको, चाहे वह जितना भी तुच्छ क्यों न हो, एक किनारे छोड़ दें तो तेरे साथ हमारा मिलन पूर्ण नहीं हो सकता, सिद्धि संपादित नहीं हो सकती।

और यही कारण है कि तुझे पा लेना अनंत सोपानके अंदर महज पहली सीढ़ी है ...।

हे प्यारे भगवान्, हे चरम रूपांतर-साधक, समस्त अवहेलना, समस्त आलस्यपूर्ण अकर्मण्यताका अवसान कर दे, हमारी सभी शक्तियोंको एक साथ एकत्रित कर एक पोटलीमें बांध दें, उन्हें एक अदम्य, अबाध संकल्पशक्तिमें परिणत कर दे।

हे प्रकाश, प्रेम, अनिर्वचनीय शक्ति, सभी अणु-परमाणु तुझे पुकार रहे हैं जिसमें कि तू उनमें प्रवेश करे और उन्हें रूपांतरित कर दे ...।

सबको मिलनका परम सुख प्रदान कर!

१३ जुलाई, १९१४

चाहिये बस धैर्य, बल, साहस, शांति और अदम्य कर्म-शक्ति ...।

मन निश्चल-नीरव हो जाना सीख जाय और जो शक्तियां सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्तिके लिये तेरे यहांसे हमारे पास आती हैं उनसे तुरत लाभ उठाना न चाहे ...।

किंतु तूने अपनी इच्छाको अभिव्यक्त करनेके लिये इस अत्यंत दीन, अत्यंत साधारण, अत्यंत अपूर्ण आधारको क्यों चुना है? ...

१५ जुलाई, १९१४

हे ईश्वर! फिर क्या? ...

तेरी इच्छा, तेरी इच्छा ...।

यह यंत्र दुर्बल और सामान्य है; तूने इसे बताया है कि सभी कार्य इसके लिये संभव हैं, समस्त मानवीय कर्मोंके अंदर कोई भी कार्य इसके लिये मूलतः अस्वाभाविक नहीं है; परंतु केवल तीव्रताके अंदर, पूर्णताके अंदर ही भगवान् आरंभ करते हैं, और आजतक तूने इसे कोई असाधारण तीव्रता, कोई सच्ची पूर्णता नहीं प्रदान की है ...।

सब कुछ आश्वासनकी स्थितिमें है, अवश्य ही व्यक्तिगत रूपमें नहीं बल्कि समष्टिगत रूपमें; और कुछ भी अभी पूर्णतः सिद्ध नहीं हुआ है।

हे प्रभु! क्यों?

तूने मेरे हृदयमें वह शांति भर दी है और यह इतनी सर्वांगपूर्ण है कि वह लगभग उदासीनता प्रतीत होती है तथा वह अपनी विपुल अचंचल प्रशांतिके अंदर कहती है:

जो तेरी इच्छा, जो तेरी इच्छा ...।

१६ जुलाई, १९१४

नीरव और विनम्र आराधनाके साथ वंदन ...।

मैं तेरी महिमाके सामने सिर झुकाती हूं क्योंकि वह अपनी समस्त दीप्तिसे मुझे अभिभूत कर रही है ...।

हे प्रभु! अपने चरणोंमें मुझे गल जाने दे, अपने अंदर घुल-मिल जाने दे।

१७ जुलाई, १९१४

पार्थिव सिद्धियां हमारी नजरोंमें बहुत आसानीसे बहुत बड़ा महत्त्व धारण कर लेती हैं, क्योंकि उनका परिमाण हमारी बाहरी सत्ताके अनुपातमें होता है, उस सीमित आकारके अनुपातमें होता है जो हमें मनुष्य बनाता है। परंतु तेरे मुकाबले, तेरे सम्मुख कोई पार्थिव सिद्धि क्या वस्तु है? वह चाहे जितनी भी सर्वांगपूर्ण, जितनी भी निर्दोष, जितनी भी दिव्य क्यों न हो, वह तेरी शाश्वतताके अंदर केवल एक नगण्य मुहूर्त ही है; और जो कुछ परिणाम उससे प्राप्त होते हैं, वे चाहे जितने भी शक्तिशाली, चाहे जितने भी अपूर्व क्यों न हों, वे तुझतक जानेकी अनंत यात्राके अंदर महज एक तुच्छातितुच्छ कण हैं। बस, यही वह बात है जिसे तेरे कार्यकर्ताओंको कभी भूलना नहीं चाहिये, अन्यथा वे तेरी सेवाके लिये अयोग्य बन जायंगे ...।

हे मेरे मधुर प्रभु! भला किसी चीजके लिये स्वयं अपने-आपको उत्तरदायी समझना तथा तेरी चरम और भागवत इच्छा-शक्तिको अपने अंदर व्यष्टि-रूप देनेकी इच्छा करना कितना लड़कपन है? क्या तेरे हृदयके साथ युक्त हो जाना तथा उसीमें स्थायी रूपसे वास करना ही पर्याप्त नहीं है? फिर तो तू ही सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है तथा तेरी ही इच्छा कार्य करने लगती है, उस समय हमारे लिये उसे जाननेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती ...। जो सिद्धि समस्त बाह्य अवस्थाओंसे स्वतंत्र होती है, कितनी अधिक मात्रामें उसका अनुसरण किया गया या उसे हृदयंगम किया गया, इस बातकी अपेक्षा नहीं रखती, वही होती है सच्ची और मूल्यवान् सिद्धि। और इस प्रकारकी एकमात्र सिद्धि है तेरे साथ अखंड, घनिष्ठ, चिरंतन रूपसे युक्त हो जाना। और इस चंचल जीवनमें, तथा इस चलायमान जगत्‌में होनेवाली तेरी क्षणिक और विनश्वर अभिव्यक्तिकी चिंताका जहांतक प्रश्न है, उसके लिये भी बस तुझे ही उत्तरदायी होना होगा तथा जो कुछ उसके लिये होना आवश्यक हो, यदि तू उसे उत्तम समझे तो, उसे भी तुझे ही करना होगा।

हे मेरे मधुमय राजा! मेरे परम अधीश्वर! तूने मेरी समस्त दुश्चिताओंको

ले लिया है तथा मेरे लिये छोड़ रखा है केवल आनंद, तेरे साथ दिव्य मिलनका चरम उल्लास।

१८ जुलाई, १९१४

अत्यंत प्रचंड आंधी-तूफानमें भी दो चीजें अडोल बनी रहती हैं: यह संकल्प कि सब लोग वास्तविक प्रसन्नता — तेरी प्रसन्नता प्राप्त करके सुखी हों, और यह तीव्र आकांक्षा कि मैं तेरे साथ संपूर्ण रूपमें युक्त हो जाऊं, एकरूप बन जाऊं . . .। बाकी सब चीजें शायद अभी भी किसी प्रयासके कारण या दावेके फलस्वरूप प्राप्त हुई हैं, बस यही है सहज-स्वाभाविक और अचल-अटल; और जिस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पैरोंके नीचेसे पृथ्वी सरक रही है और सब कुछ भूमिसात् हो रहा है उस समय भी यह चीज ज्योतिर्मय, विशुद्ध तथा शांत रूपमें दिखायी देती है, सभी बादलोंको विदीर्ण करती है, समस्त अंधकारको तिरोहित करती है, समस्त भग्नावशेषके भीतरसे और भी अधिक महान् तथा और भी अधिक शक्तिमान् होकर निकल आती है और अपने अंदर तेरी अनंत शांति तथा परमानंदको वहन करके ले जाती है।

१९ जुलाई, १९१४

हे भगवान् ! अपनी निजी सृष्टिका तू ही सर्वशक्तिमान् अधिपति है; वर दे कि ये यंत्र अत्यंत संकीर्ण घेरोंसे, अत्यंत कठोर तथा अत्यंत सामान्य सीमाओंसे बाहर निकल आयें। तेरी अनंत शक्तिके एक कणको भी प्रकट करनेके लिये मानवीय संभावनाओंकी समस्त संपदाकी आवश्यकता होती है . . .। बंद दरवाजोंको खोल दे, अवरुद्ध स्रोतोंको उन्मुक्त कर, तेरी वाग्शक्ति तथा तेरे सौन्दर्यकी धाराएं संसारभरमें परिव्याप्त हो जायं। प्रसारता और महत्ता, श्रेष्ठता और सौन्दर्य, सुषमा और ऐश्वर्य, वैचित्र्य और शक्ति-सामर्थ्य सबकी आवश्यकता है : भगवान् आविर्भूत होना चाहते हैं।

हे मेरे परम प्रिय स्वामिन् ! तू ही हमारी भवितव्यताओंका परम नियंता है, तू ही अपनी निजी सृष्टिका सर्वशक्तिमान् अधीश्वर है।

यह समस्त जगत्, ये सभी जीव तथा ये सभी अणु-परमाणु तेरे हैं। इन्हें रूपांतरित कर, ज्योतिर्मय बना।

२१ जुलाई, १९१४

अब शरीर नहीं था, अब कोई इंद्रिय-बोध नहीं था; अब था केवल एक ज्योति-स्तंभ; जहांपर साधारणतया देहका आधार होता है वहांसे ऊपरकी ओर उठकर वह उस स्थानतक चला गया था जहां साधारणतया मस्तक होता है और यहां आकर वह ठीक चांदकी तरह प्रकाशकी एक थाली बन गया था; फिर वहांसे वह स्तंभ ऊपरकी ओर उठता गया और सिरके ऊपर बहुत दूरतक चला गया तथा अंतमें फूटकर जाज्वल्यमान एवं बहुवर्णमय विशाल सूर्य बन गया जहांसे सुनहले प्रकाशकी वर्षा होने लगी और सारी पृथ्वीपर फैल गयी।

उसके बाद धीरे-धीरे वह ज्योति-स्तंभ जीवंत ज्योतिका एक अंडाकार मंडल बनकर नीचे उतरने लगा और सिरके ऊपर, मस्तक, कंठ, हृदय, नाभि, मेरुदंडके नीचे तथा और भी नीचेके चक्रोंको, उनके निजी विशेष तरीकेसे, उनके विशिष्ट स्पंदनके अनुसार, जाग्रत और क्रियाशील बनता गया। घुटनोंतक आनेके बाद ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी दोनों ही धाराएं एक साथ मिल गयीं तथा इस प्रकार उनका प्रवाह एक तरहसे अखंड बन गया एवं जीवंत ज्योतिके एक डिम्बाकार विशाल घेरेसे समूची सत्ता घिर गयी।

उसके उपरांत क्रमशः मेरी चेतना फिर एक-एक स्तर पार करती हुई, प्रत्येक लोकमें ठहरती हुई नीचे तबतक उतरती रही जबतक कि शरीरकी चेतना वापस नहीं आ गयी। यदि मेरी स्मृति ठीक हो तो मैं कह सकती हूं कि नौवें स्तरमें शरीरकी चेतना फिरसे प्राप्त हुई थी। उस समय शरीर अभी भी एकदम कड़ा और निश्चल पड़ा हुआ था।

२२ जुलाई, १९१४

तू संपूर्ण प्रेम है, हे भगवान्, और तेरा प्रेम सभी मनों और सभी हृदयोंके अंतस्तलमें देदीप्यमान है। अपने रूपांतरका कार्य पूरा कर; हमें ज्योतिपूर्ण बना। बंद द्वारोंको उन्मुक्त कर, क्षितिजको विस्तारित कर, शक्तिको स्थापित कर, हमारी विभिन्न सत्ताओंको एकत्रित कर तथा अपने दिव्यानंदका हमें भी भागी बना जिसमें कि हम सबको इसमें हिस्सा बंटानेमें सहायता कर सकें। हम अंतिम बाधाओंको — चाहे वे आंतरिक हों या बाह्य — जीत जायं, चरम कठिनाइयोंको पार कर जायं। कोई तीव्र और सच्ची प्रार्थना कभी व्यर्थमें तेरी ओर नहीं उठती; सर्वदा ही तू उदारतापूर्वक समस्त पुकारोंका उत्तर देता है, तेरी करुणा असीम है।

हे भगवान्! इस अस्त-व्यस्तताके ऊपर अपनी ज्योति डाल और इसमेंसे एक नये जगत्को प्रकट कर। जो कार्य अभी तैयारीकी स्थितिमें है उसे पूर्ण कर और एक नयी मनुष्यजातिको उत्पन्न कर जो तेरे नवीन और सुमहान् विधानकी सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्ति हो।

हमारी तीव्र गतिको कोई भी चीज रोक नहीं सकती; हमारे प्रयासको कोई भी चीज थका नहीं सकती; अपनी सभी आशाओं तथा सभी क्रियाओंको तेरे ऊपर छोड़कर, तेरी सर्वोच्च संकल्प-शक्तिके पूर्ण अनुगत होकर तथा उसके फलस्वरूप सबल बनकर हम तेरी अखंड अभिव्यक्तिको प्रतिष्ठित करनेके लिये विजय-यात्रा आरंभ करेंगे तथा यह स्थिर विश्वास बनाये रखेंगे कि जो कुछ उस अभिव्यक्तिके विरुद्ध खड़ा होगा उसपर अवश्य विजय प्राप्त होगी।

जय हो तेरी, हे जगदीश्वर! तू तो समस्त अंधकारको दूर करनेवाला है।

२३, जुलाई, १९१४

हे भगवान्! तू तो सर्वशक्तिमान् है: तू योद्धा बन और विजय ले आ। तेरा प्रेम हमारे हृदयोंमें राजराजेश्वर बनकर निवास करे तथा तेरा ज्ञान हमारी बुद्धिका कभी परित्याग न करे...। हमें असमर्थता और अंधकारके अंदर न छोड़; सभी सीमाओंको भंग कर, सभी श्रृंखलाओंको तोड़ डाल, सभी भ्रम-भ्रांतियोंको दूर कर।

हमारी अभीप्सा एक प्रबल प्रार्थनाके रूपमें तेरी ओर उठ रही है।

२५ जुलाई, १९१४

सूर्योदय होनेपर, मैंने इस जगत्की स्तुति की जहां तेरे लिये केवल कामना करना ही संभव नहीं है, बल्कि तुझे जानना और यहांतक कि स्वयं 'तू' ही बन जाना भी संभव है। और मैं यह देखकर चकित हो गयी कि कुछ लोग इतनी तीव्रताके साथ इस विश्वका त्यागकर पूर्णताके किसी अन्य जगत्में प्रविष्ट होनेके लिये अभीप्सा करते हैं।

तूने मेरे हृदयमें इतनी तृप्ति भर दी है कि भीतरी और बाहरी सभी परिस्थितियोंमें सतुष्ट न रहना मेरे लिये असंभव हो गया है। और फिर भी मेरी सत्ताके अंदरकी कोई चीज सर्वदा ही और अधिक सौंदर्य, और अधिक ज्योति, और अधिक ज्ञान, और अधिक प्रेमकी अभीप्सा करती रहती है। संक्षेपमें कहें तो तेरे साथ एक अधिक सचेतन और अधिक अखंड संपर्क पानेकी आकांक्षा करती रहती है ...। पर वह भी तेरी इच्छापर ही निर्भर है और जब तू चाहेगा तभी तू मुझे पूर्ण रूपांतर प्रदान करेगा।

२७ जुलाई, १९१४

चुपचाप विनम्र भावसे मेरी प्रार्थना तेरी ओर उठ रही है; हे मेरे परम प्रिय ईश्वर! तू तो कोई तर्क-वितर्क किये बिना, गुण-दोषका विचार किये बिना, उन सभी चीजोंको स्वीकार करता है जो अपने-आपको तुझे अर्पित कर देती हैं; तू तो अपने-आपको सबके हाथोंमें दे देता है और सबको अपना परिचय प्रदान करता है और एक बार अपने-आपसे यह पूछता भी नहीं कि वे इसके अधिकारी हैं या नहीं; और तू अपने आविर्भावके लिये किसी चीजको अत्यंत दुर्बल, अत्यंत तुच्छ, अत्यंत हीन, अत्यंत अयोग्य करार नहीं देता। ...

मुझे अपने चरणोंमें सो जाने दे, अपने हृदयमें गल जाने दे, अपने अंदर घुल-मिल जाने दे, अपने परमानंदमें विलीन हो जाने दे; अथवा कोई अन्य चीज बननेकी आकांक्षासे रहित एकमात्र अपनी सेविका बन जाने दे। मैं और किसी चीजकी कामना नहीं करती, अन्य किसी चीजकी अभीप्सा नहीं करती, मैं बस यही चाहती हूं कि एकमात्र तेरी सेविका बन जाऊं।

३१ जुलाई, १९१४

मुझे ऐसा लगता है कि तेरी इच्छा यह है कि मैं एक-एक कर उन सभी अनुभूतियोंका आस्वादन करूं जिन्हें लोग साधारणतया योगके शिखर-पर, उसकी चरम परिणतिके रूपमें तथा उसकी पूर्ण सिद्धिके प्रमाणके रूपमें, स्थान प्रदान करते हैं। वह अनुभूति बड़ी ही तीव्र, पूर्ण, सुस्पष्ट है, अपने अंदर अपने सभी प्रभावोंको, अपने सभी परिणामोंको वहन करती है, वह ज्ञानपूर्ण है, इच्छित है, वह नियमित प्रयासका फल है और किसी अप्रत्याशित संयोगसे उत्पन्न नहीं हुई है। और फिर भी प्रत्येक अनुभूतिका अपना निजी रूप है, जैसे हम सड़कपर मील-सूचक पत्थर रखते हैं जो सड़कके टुकड़ोंद्वारा एक-दूसरेसे पृथक् किये गये हैं; परंतु ये दूरी-सूचक पत्थर, जो अंतहीन ऊर्ध्वारोहणको सूचित करते हैं, कभी एक जैसे नहीं होते, सर्वदा नवीन होते हैं, ऐसा मालूम होता है मानों उनमें परस्पर कोई संबंध नहीं है ...। क्या ऐसा कोई क्षण आयेगा जब तू इस आधारको इन सभी अनगिनत अनुभूतियोंको सुसमन्वित करनेके योग्य बनायेगा जिसमें कि उनमेंसे एक ऐसी अभिनव सिद्धि आहरण की जा सके जो आजतक प्राप्त की हुई सभी सिद्धियोंसे कहीं अधिक पूर्ण और अधिक सुन्दर हो? मैं नहीं जानती। परंतु तूने मुझे यह सिखाया है कि यदि कोई असाधारण स्थिति चली जाय तो उसके बाद उसके लिये खेद नहीं करना चाहिये। यदि वह वापस आये तो उससे पहले उसके लिये कोई कामना भी नहीं रहनी चाहिये। मैं अब तो इसमें इस बातका कोई चिह्न नहीं देखती कि जो प्रगति की गयी है वह अस्थायी है, बल्कि एक ऐसी अग्रगतिका प्रमाण पाती हूं जिसका अनुसरण जान-बूझकर, पथकी विभिन्न अवस्थाओंके लिये जितना अनिवार्य था उससे अधिक कहीं भी रुके बिना, किया गया है।

प्रत्येक बार तू मुझे थोड़ी और अच्छी तरह यह सिखाता है कि अभिव्यक्ति-के साधन केवल इसी कारण सीमित हैं कि हम उन्हें ऐसा समझते हैं, और यह अभिव्यक्ति सफल रूपमें तेरी अनंततामें भाग ले सकती है; प्रत्येक बार ही तेरी असीमतामेंसे कोई चीज आकर उसके निवास-स्थान इस यंत्रके साथ युक्त हो जाती है, उन सभी महान् द्वारोंको खोल देती है जो हमारे सामने सीमाहीन क्षितिजोंको उद्घाटित करते हैं।

२ अगस्त, १९१४

कौन हैं ये शक्तिसंपन्न देवतागण जिनके पृथ्वीपर आविर्भूत होनेका समय समीप आ गया है? क्या ये तेरी अनंत क्रिया-शक्तिके विभिन्न और सुसंपन्न रूप नहीं हैं? हे सर्वभूतेश्वर, तू ही सत् और असत् है और फिर दोनोंसे अतीत भी है, तू अद्भुत अज्ञेय रहस्य है, हमारा एकछत्र सम्राट् है . . .।

क्या हैं ये बहुमुखी प्रोज्ज्वल बौद्धिक क्रियाएं, उस सूर्यकी ये अगणित किरणें जो सभी रूपोंको प्रकाशित करता, धारण तथा निर्मित करता है? क्या ये तेरी अनंत इच्छा-शक्तिकी ही संभूति-धाराओंमेंसे एक धारा नहीं हैं, तेरी अभिव्यक्तिके उपायोंमेंसे एक उपाय नहीं हैं? हे प्रभु! तू ही तो हमारी भवितव्यताओंका विधाता है, अद्वितीय और अचिंत्य सद्वस्तु है, जो कुछ है और जो कुछ अभीतक नहीं है उस सबका राजराजेश्वर है . . .।

और भला क्या हैं ये समस्त मानसिक शक्तियां, ये समस्त प्राणकी क्षमताएं और ये सब भौतिक उपकरण? क्या ये सब 'तू' ही नहीं हैं, तेरे ही बाह्यतम रूप नहीं हैं, तेरी ही अभिव्यक्तिके, तेरी ही सिद्धिके अंतिम परिणाम नहीं हैं? हे भगवान्! हम तुझे भक्ति-भावके साथ पूजते हैं और तू चारों ओरसे हमें अतिक्रम कर जाता है, यद्यपि तू हमारे अंदर प्रवेश करता है, हमें सजीव बनाता है, हमें परिचालित करता है! तुझे न तो हम जान सकते हैं, न शब्दोंमें समझा सकते हैं और न कोई नाम दे सकते हैं; हम न तो तुझे पकड़ सकते हैं, न आलिंगन कर सकते हैं और न विचारके अदंर धारण कर सकते हैं; पर, हे प्रभु, फिर भी तू हमारे छोटे-से-छोटे कार्यमें भी अपने-आपको संसिद्ध करता है . . .।

और यह सारा-का-सारा विशाल विश्व तेरी शाश्वत तपःशक्तिका बस एक कण है।

तेरी प्रभावशालिनी उपस्थिति सर्वत्र परिव्याप्त है और उसीकी विशालताके अंदर सब कुछ प्रस्फुटित हो रहा है!

३ अगस्त, १९१४

आज प्रातःकाल मेरा समूचा आधार मौन पूजा बन गया है और तेरे प्रेमकी विपुलतासे उसकी आत्मा भर गयी है.....।

तैयार होना और कर्म करना, कर्म करना और तैयार होना — बस ये ही दोनों बातें क्रमशः आती-जाती हैं और इस हदतक एक-दूसरीके साथ घुल-मिल जाती हैं कि दोनोंको अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाता है; और ये दोनों मिल-जुलकर ही पृथ्वीपर तेरे दिव्य जीवनका निर्माण करती हैं। जो कुछ हमें होना है और जो कुछ हमें करना है, अर्थात् तेरे यंत्रको तैयार करना और उसका व्यवहार करना — ये दोनों कार्य साथ-साथ होते हैं। कभी-कभी तू यह चाहता है कि यह यंत्र सुसमृद्ध और वर्द्धित हो, यह असीम दिग्दिगंतोंकी ओर अपने सभी द्वारोंको उन्मुक्त कर दे, जिस देवको यह प्रकाशित कर सके उसके साथ यह संयुक्त हो जाय, विभिन्न जगतोंके साथ सचेतन संबंध स्थापित करनेकी अपनी शक्तिको यह विकसित करे, और फिर कभी तू यह चाहता है कि यह मानों अपने-आपको भूल जाय और केवल तेरी कार्यकारिणी शक्ति बन जाय। और इन दोनोंमें ही पाया जाता है तेरी संकल्प-शक्तिके साथ संयुक्त होनेका परम विधान।

आज प्रातःकाल मेरा समूचा आधार मौन पूजा बन गया है और तेरे प्रेमकी विपुलतासे उसकी आत्मा भर गयी है।

४ अगस्त, १९१४

हे भगवान्! हे शाश्वत प्रभु!

शक्तियोंके संघर्षसे प्रेरित होकर मनुष्य महान् आत्म-बलिदान कर रहे हैं, वे रक्तपूर्ण यज्ञके अंदर अपने जीवनकी आहुति दे रहे हैं...।

हे भगवान्! हे शाश्वत प्रभु! ऐसी कृपा कर कि यह सब व्यर्थ न हो, तेरी दिव्य शक्तिकी अक्षय धाराएं पृथ्वीपर फैल जायं और विक्षुब्ध वातावरणके अंदर, संघर्षरत शक्तियोंके अंदर, समस्त युद्धमान् व्यष्टियोंकी प्रचंड अस्त-व्यस्तताके अंदर प्रविष्ट हो जायं; तेरे ज्ञानकी विशुद्ध ज्योति तथा तेरे आशीर्वादकी अशेष प्रीति मनुष्योंके हृदयोंमें भर जायं, उनकी आत्माओंमें प्रविष्ट हो जायं, उनकी चेतनाओंको आलोकित कर दें तथा इस अंधकारके भीतरसे, इस भयानक, प्रबल और घनघोर तमस्के अंदरसे

प्रकट कर दें तेरी महामहिम प्रोज्ज्वल उपस्थिति !

मेरी सत्ता अपनी अखंड आत्माहुति लेकर तेरे सम्मुख उपस्थित है जिस-में कि उन सबकी अज्ञानकृत आत्माहुति फलदायी सिद्ध हो।

स्वीकार कर यह आहुति, उत्तर दे हमारे आह्वानका : आ जा हे प्रभु!

५ अगस्त, १९१४

हे शाश्वत स्वामी ! तू समस्त वस्तुओंमें प्राणदायी श्वासके रूपमें, मधुर शांतिके रूपमें, ज्योतिर्मय प्रेमके सूर्यके रूपमें विद्यमान है तथा अंधकारके समस्त मेघोंको छिन्न-भिन्न कर रहा है।

ऐसी कृपा कर कि इस पृथ्वीपर, अपने अज्ञानी और दुःखी मानव-भाइयोंके निकट हम तेरा प्राणप्रद श्वास, तेरी मीठी शांति, तेरा जाज्वल्य-मान प्रेम बन जायं।

हे दिव्य प्रभु ! हमारे अखंड आत्मबलिकी यह भेंट स्वीकार कर जिसमें कि तेरा कार्य पूरा हो सके तथा समय व्यर्थ ही न निकल जाय !

प्रशांत आत्मानंदके साथ मैं अपने-आपको तुझे दे रही हूं जिसमें कि तू फिर अपनी संपत्तिका मालिक बन सके, असंख्य परमाणुओंमेंसे प्रत्येकके अंदर तथा मेरी सुसमन्वित चेतनाके एकत्वके अंदर तू स्वयं अपने ऊपर अधिकार प्राप्त कर सके !

हे दिव्य स्वामिन् ! इस अखंड आत्मदानकी पूजाको ग्रहण कर जिसमें कि समयका आना व्यर्थ न हो !

समस्त आधार रूपांतरित होकर विशुद्ध प्रेमके यज्ञकी प्रदीप्त वह्नि-शिखामें परिणत हो गया है।

फिरसे तू अपने राज्यका राजा बन जा, उस भारी बोझसे पृथ्वीको मुक्त कर जो उसे कुचल रहा है, जो उसीकी जड़ता, उसीके अज्ञान, उसीकी अंध अशुभ इच्छाका बोझ है।

हे मेरे परम प्रिय राजा ! मेरी सत्ता प्रेमाहुतिकी ज्वलंत शिखाके द्वारा प्रज्ज्वलित हो रही है : मेरी पूजा स्वीकार कर जिसमें कि समस्त बाधा दूर हो जाय।

६ अगस्त, १९१४

तब भला ये दोष-त्रुटियां और ये अपूर्णताएं क्या हैं जो आत्म-दानमें बाधा डालती हैं, उसे पर्याप्त रूपमें पूर्ण नहीं बनने देतीं जिसमें कि तू उसका स्वागत करे, जिसमें कि वह बलिदान तुझे ग्रहण करनेके योग्य प्रतीत हो? ... अभी भी इस आधारके अंदर सब प्रकारकी सीमाएं मौजूद हैं, क्या तू उन्हें भंग नहीं कर डालेगा?

हे नाथ! हम जानते हैं कि पृथ्वीके लिये यह बड़ा विकट काल है; जो लोग उसके निकट तेरे माध्यम बन सकें, संघर्षके भीतरसे एक महत्तर सामंजस्यको बाहर प्रकट कर सकें तथा धुंधली कुरूपताके अंदरसे एक दिव्यतर सौंदर्यको उत्पन्न कर सकें उन्हें ऐसा करनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। हे प्रभु! हे शाश्वत अधीश्वर! हम तुझसे अनुनय करते हैं, हमारे प्रयासोंका प्रत्युत्तर दे, उन्हें ज्योतिसे भर दे, हमें पथ दिखा, हमें आंतरिक बाधाओंको भंग करने, समस्त विघ्नोंको पार करनेकी शक्ति प्रदान कर।

हे मेरे मधुमय ईश्वर! मैं तेरे चरणोंपर साष्टांग लोट रही हूं और मेरी सारी सत्ता तुझे पुकार रही है और तीव्र भावसे अनुनय-विनय कर रही है: मेरी व्यक्तिगत असमर्थतासे मुझे मुक्त कर।

८ अगस्त, १९१४

मेरी लेखनी मौन है ...। यह स्थूल जगत् इतना अधिक अभिभूत करनेवाला है! हमारी चेतनामें तू इसे इतना अधिक स्थान क्यों अधिकृत करने देता है? क्या यह हमारी अक्षमता है या ऐसी ही तेरी इच्छा है?

हे मेरे परम प्रिय राजा! मैं केवल तेरे अंदर जीवन धारण करना चाहती हूं, पर तूने मुझे उत्तर दिया है कि मुझे तेरे लिये जीवन धारण करना चाहिये, और इस प्रकार जब मैं तेरे लिये जीवन धारण करती हूं तब मेरी चेतना बाह्य क्षेत्रोंकी ओर मुड़ जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मैं तुझसे दूर चली गयी हूं।

मैं जानती हूं कि यह बिलकुल ही सही नहीं है; परंतु अभी भी मेरे आधारमें एक रुकावट है जो हटना नहीं चाहती, एक दरवाजा है जो बंद पड़ा है, ज्योतिर्मय बुद्धिका एक ऐसा द्वार बंद है जिसे कोई भी प्रयास

अभीतक उन्मुक्त नहीं कर सका है और इससे तेरी अभिव्यक्ति बुरी तरह दुर्बल बन रही है।

कब तू यह निश्चय करेगा कि इन सबके दूर होनेका समय आ गया है?

आंधी-तूफानकी तरह वीभत्स शक्तियां पृथ्वीपर उतर आयी हैं; वे अंधकारपूर्ण और प्रचंड हैं, वे बलशाली और अंध हैं। हे भगवान्, हमें शक्ति दे जिससे उन्हें हम आलोकित कर सकें। तेरी दीप्ति सर्वत्र उनके अंदर उद्भासित हो उठनी चाहिये; और उससे उनकी क्रिया रूपांतरित हो जानी चाहिये; अपने प्रलयंकर परिप्लावनके पीछे उन्हें दिव्य बीज छोड़ जाना चाहिये ...।

हे मेरे मधुमय मालिक! मेरी पूजा अस्वीकार न कर। मुझे योग्य बना जिससे मैं संपूर्ण रूपसे अपने-आपको देकर संपूर्ण रूपसे तुझे अभिव्यक्त करती हुई निःशेष भावसे तेरी हो जाऊं।

९ अगस्त, १९१४

हे भगवान्! हम तेरे सम्मुख उपस्थित हैं जिसमें कि तेरी इच्छा पूर्ण हो। हमारे मनसे दूर कर सारी बाधाएं, शंका-संदेह, सब प्रकारकी दुर्बलताएं, समस्त सीमाएं, वह सब कुछ जो हमारे अज्ञानको ढक रखता और हमारी समझको धूमिल बनाता है।

मैं तेरी चेतनाकी प्यासी हूं, मैं तेरे साथ अखंड एकत्व प्राप्त करनेके लिये भूखी हूं और सो भी निष्क्रियताके अंदर तथा भौतिक क्रियाओंसे दूर भागकर नहीं, बल्कि तेरी इच्छाकी पूर्ण, अखंड, सर्वांगीण परिपूर्तिके अंदर।

जो समस्त अंधकार नीचे आकर पृथ्वीपर छा गया है उसके अंदरसे तेरी परमा ज्योतिकी जगमगाहट अवश्य फूट निकलनी चाहिये।

११ अगस्त, १९१४

हे मेरे मधुमय राजाधिराज! इन सब विभ्रांत बुद्धियोंके अंदर, इन सब दुःखित हृदयोंके अंदर प्रवेश कर; इनके अंदर तेरी दिव्य उपस्थिति-की अग्नि प्रज्ज्वलित कर। पृथ्वीके ऊपर स्वयं उसीकी छाया आ पड़ी

है, और उससे वह संपूर्ण रूपसे आलोड़ित हो उठी है; पर उस छायाने अपने अंदर तेरे अविकारी सूर्यको छिपा रखा है और अब, जब कि वह छाया इस गरीब जगत्के ऊपर टूट पड़ी है, उसने इसके आधारतकको हिला दिया है और इसे एक भयंकर अस्तव्यस्ततामें परिणत कर दिया है, क्या तू एक बार फिर इस अस्तव्यस्तताके ऊपर अपनी दृष्टि दौड़ायेगा और यह इच्छा करेगा कि "प्रकाश" हो ?

हे अद्भुत अज्ञेय, तूने अभीतक अपने-आपको व्यक्त नहीं किया है, तू शुभ घड़ीकी प्रतीक्षा कर रहा है और तूने अपने पथोंको तैयार करनेके लिये हमें पृथ्वीपर भेजा है। इस आधारके सभी कण तुझसे पुकारकर कह रहे हैं कि तेरी इच्छा पूर्ण हो तथा वे एक चरम, एक अजेय आवेगके साथ अपने-आपको तुझे दे रहे हैं...।

इस दुःखी पृथ्वीको तू अपनी करुणाकी प्रबल बांहोंमें लपेट ले, अपने अनंत प्रेमकी कल्याणकारी धाराओंसे इसे सराबोर कर दे।

मैं तेरी करुणाकी बलशाली बांहें हूं।

मैं तेरे असीम प्रेमसे पूर्ण एक विशाल वक्षस्थल हूं...।

उन बांहोंने दुखिया धरतीको लपेट रखा है और वे स्नेहके साथ उसे विशाल हृदयके ऊपर दबा रही हैं, और परम आशीर्वादका एक चुंबन संघर्षरत इस परमाणुके ऊपर धीरेसे स्थापित हो रहा है; यह चुंबन उस माताका है जो सांत्वना देती है और स्वस्थ बनाती है ...।

१३ अगस्त, १९१४

यह सत्ता तेरे सामने खड़ी है अपनी बांहें ऊपर उठाकर, अपनी हथेलियां खोलकर, एक तीव्र अभीप्सा लेकर।

हे परम प्रिय स्वामी, पृथ्वीको एक ऐसे प्रेमकी आवश्यकता है जो आज-तक अभिव्यक्त हुए सभी प्रेमोंसे कहीं अधिक अद्भुत और कहीं अधिक दुर्दमनीय हो; वह इसी प्रेमकी याचना कर रही है। कौन ऐसा योग्य और उपयुक्त होगा जो उसके लिये इस प्रेमका मध्यस्थ बनेगा ? कौन ? इसका कोई महत्त्व नहीं; परंतु यह आवश्यक है कि ऐसा हो। हे भगवान् ! मेरी पुकारका उत्तर दे, यह सत्ता चाहे जितनी भी सामान्य और जितनी भी सीमित क्यों न हो, इसकी पूजा स्वीकार कर : तू आ।

अधिक, निरंतर अधिक पुनर्जीवन प्रदान करनेवाली धाराओंकी कल्याणकारी

तरंगें पृथ्वीपर फैल जायं। रूपांतरित कर, आलोकित कर। इतने दिनोंतक जिसकी प्रतीक्षा की गयी है उस सर्वोच्च चमत्कारको पूरा कर, अज्ञानपूर्ण समस्त अहंकारको चूर्ण कर, प्रत्येकके हृदयमें अपनी महान् ज्योति जाग्रत् कर। हमें स्थिर प्रशांतिके अंदर जड़ मत बन जाने दे। जबतक तेरा सर्वोच्च और नवीन प्रेम अभिव्यक्त नहीं हो जाता तबतक हमें जरा भी विश्राम नहीं करना चाहिये !

हमारी प्रार्थना सुन; हमारे आह्वानका उत्तर दे: तू आ !

१६ अगस्त, १९१४

बड़ी लगनके साथ प्रार्थना करते हुए मैंने तीन दिनोंतक प्रतीक्षा की और नयी चीजें देखनेकी आशा की ... और सब प्रकारकी बाधाएं तेरी अभिव्यक्तिको ढक देने, रोक देने, विकृत कर देनेके लिये उमड़ आयी हैं। और अब हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हम पहलेकी अपेक्षा अपने लक्ष्यके अधिक समीप पहुंच गये हैं।

हे मेरे मधुर प्रभु ! क्यों भला तूने मुझसे कहा कि मैं तेरे हृदयमें प्राप्त अपने पवित्र स्थानको छोड़ दूं और पृथ्वीपर वापस आकर एक ऐसी सिद्धिका प्रयास करूं जिसे यहांकी सारी चीजें ही असंभव सिद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं?... तू भला मुझसे क्या आशा करता है कि तूने मुझे मेरी दिव्य और अपूर्व ध्यानावस्थासे बलात् पृथक् कर दिया है तथा इस अंधकारपूर्ण द्वंद्वमय विश्वके अंदर मुझे पुनः डुबा दिया है? जब तेरी शक्ति प्रकट होनेके लिये पृथ्वीपर उतरती है तब जितनी भी महान् आसुरिक सत्ताएं हैं, जिन्होंने तेरा सेवक बननेका निर्णय किया है पर जिन्होंने अपने स्वभावकी सर्वप्रधान तथा अनुदार विशेषताको बनाये रखा है, उनमेंसे प्रत्येक सत्ता उसे केवल अपनी ही ओर खींच लेना चाहती है जिसमें कि पीछे वह उसे दूसरोंको भी बांट सके; वह सर्वदा ही यह सोचती है कि वही एकमात्र अथवा, कम-से-कम, सर्वोत्तम मध्यस्था हो, और तेरी शक्तिके साथ दूसरे सभी लोगोंका संबंध उसकी मध्यस्थताके बिना नहीं हो सकता और न होना ही चाहिये। यह अधम क्षुद्रता कम या अधिक सचेतन होती है, पर वह सर्वदा ही वहां होती है तथा सभी बातोंमें अनिश्चित कालतक विलंब कराती रहती है! यदि अत्यंत महान् व्यक्तियोंके लिये भी पूर्ण अभिव्यक्तिके कार्यमें इन सब

शोचनीय सीमाओंसे बचना असंभव हो तो, हे प्रभु, इस संकीर्णताकी बलिवेदीपर मुझे क्यों चढ़ाया है? ...यदि तू चाहता है कि ऐसा ही हो तो मुझे अंतिम पर्देको अवश्य चीर डालना होगा तथा तेरी ज्योतिकी छटाको, अपने पूर्ण शुद्ध रूपमें, इस जगत्‌का रूपांतर करनेके लिये आना ही होगा!

इस चमत्कारको पूरा कर, अथवा मुझे अपने अंदर वापस चला जाने दे।

१७ अगस्त, १९१४

भूतकालकी सभी चीजोंको जो यह संहारका बवंडर उड़ाये लिये जा रहा है उसमें सभी भूल-भ्रांतियां, सब प्रकारके पक्षपात, समस्त मत-भेद विलीन हो जाने चाहिये ...। ज्योतिको पूर्ण रूपसे शुद्ध, समस्त सीमाओं-से मुक्त हो जाना चाहिये जिसमें कि तू उसमें संपूर्ण रूपसे अभिव्यक्त हो सके। हे भगवान्! तुझमें शक्ति है और तू इस महान् चमत्कारको अवश्य सिद्ध करेगा ...।

इस चेतनामें तूने विजयकी निश्चयता भर दी है!

१८ अगस्त, १९१४

हे भगवान्! मैं गभीर और मौन ध्यानमें तेरी ओर मुड़ जाऊं; इस संपूर्ण सत्ता और इसकी बहुविध क्रियावलियोंको पूजाके फूलकी तरह तेरे चरणोंपर चढ़ा दूं; इन शक्तियोंके समस्त खेलको बंद कर दूं, इन सभी चेतनाओंको संयुक्त कर दूं जिसमें कि बस एक ही चेतना बनी रहे, बस वही चेतना बनी रहे जो तेरी आज्ञा सुनने और उसे समझनेमें समर्थ हो; मैं तेरे अंदर फिरसे डूब जाऊं, मानों उस परम कल्याणकारी सागरमें डूब जाऊं जो समस्त अज्ञानसे मुक्त कर देता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं बहुत नीचे, संदेह और अंधताकी किसी अगाध खाईमें उतर गयी हूं, तेरे शाश्वत ज्योतिर्मय लोकोंसे निर्वासित हो गयी हूं: परंतु मैं जानती हूं कि इस अवतरणके अंदर ही निहित है एक ऐसे उच्चतर आरोहणकी संभावना जो मुझे एक विशालतर क्षितिजका आलिंगन करने तथा थोड़े

अधिक निकटसे तेरे असीम स्वर्गलोकोंको छूनेके योग्य बनायेगी। इस खाई-की गहराइयोंमें ठीक उसी तरह तेरी ज्योति विद्यमान है, स्थिर और पथ-प्रदर्शकके रूपमें विद्यमान है और अविच्छिन्न रूपसे चमक रही है जिस तरह वह तेरी जाज्वल्यमान दीप्तिमें विद्यमान है; और प्रशांत निर्भरता, शांतिपूर्ण उदासीनता, स्थिर निश्चयता स्थायी रूपसे मेरी चेतनामें निवास कर रही हैं . . . । मैं एक नौका-जैसी हूं जो दीर्घकालसे बंदरगाहका आनंद उपभोग कर रही है और जो अब, घने मेघोंके मंडराने, आंधी-तूफानके आने और सूर्यके ढक जानेपर भी, महान् अज्ञेयके अंदर चले जानेके लिये, अज्ञात तटोंकी ओर, नवीन देशोंकी ओर दौड़ पड़नेके लिये अपने पाल खोल रही है।

मैं तेरी हूं, हे भगवान्, बिना किसी हिचकिचाहटके, बिना किसी पक्ष-पातके तेरी हूं; तेरी इच्छा अपनी कठोर परिपूर्णताके साथ सार्थक हो; मेरी समस्त सत्ता एक हर्षयुक्त ग्रहणशीलता तथा अचल-अटल प्रशांतिके साथ उसकी अधीनता स्वीकार करती है।

अब भविष्यसंबंधी कोई धारणा मेरे मनमें नहीं है : अब तू ही अपने विधानकी एक नवीन तथा अधिक उपयुक्त धारणा उत्पन्न करेगा।

अत्यंत पूर्ण समर्पण-भाव तथा अति पूर्णांग निर्भरताके साथ मैं प्रतीक्षा करती हूं : तेरी वाणी मुझे पथ दिखायेगी ।

२० अगस्त, १९१४

यदि हम एक ऐसे नये दृष्टिकोणसे लक्ष्यको देखना चाहें जो अन्य सभी दृष्टिकोणोंको आलोकित कर दे और उपयोगी बना दे तो हमें अपनी आंतरिक खोजके अनुभवको बार-बार नये-नये रूपोंमें प्राप्त करना होगा, और अपनी चेतनाकी चरम सीमातक ऊपर उठना होगा तथा पहलेसे कभी इस विषयमें अपना मन स्थिर नहीं करना होगा कि हमारी यात्राका अंत कहांपर होगा।

परंतु सर्वोच्च केंद्रके साथ हमारी चेतनाके एक या अनेक संपर्क पहले प्राप्त कर लेनेके कारण जो धारणा हमारे मनमें हो चुकी है उसे हमारा मन सहज भावसे ही स्मरण करता है और स्वयं अपने-आपसे कहता है : "यही तो वह चीज है जो पथके अंतमें प्राप्त होती है," परंतु वह इस बातको ध्यानमें नहीं रखता कि वह जिस 'चीज' की बात सोचता है वह तो

उस लक्ष्यको विवृत करने या यहांतक कि उसका उपहास करनेके असंख्य तरीकोंमेंसे केवल एक तरीका है तथा बौद्धिक धारणाको तो अनुभूतिके बाद आना चाहिये, न कि उससे पहले।

पथका पूर्ण सरलताके साथ फिरसे अनुसरण करना चाहिये और इस ढंगसे करना चाहिये मानों उसका अनुसरण इससे पहले कभी न किया गया हो; बस, यही है सच्ची पवित्रता, पूर्ण सच्चाई जो प्रदान करती है अबाध उन्नति, संवृद्धि तथा सर्वांगीण परिपूर्णता।

जब मेरे समस्त विचार शांत हो जाते हैं, कहनेका तात्पर्य, जब अपनी सब प्रकारकी सज्ञान रचनाओंसे मन खाली हो जाता है तब मेरी अनिच्छाके बावजूद मेरी सत्ताके अंदर कोई चीज, जो शब्दोंकी अपेक्षा कहीं अधिक गभीर है, एक जोरदार अभीप्साके साथ, तेरी ओर मुड़ जाती है, हे अनिर्वचनीय प्रभु, और वह अपनी सभी क्रियाओंको, अपने सभी उपादानोंको, अपनी सत्ताकी सभी धाराओंको तुझे निवेदित कर देती है तथा उन सबके लिये तुझसे परम ज्योतिकी याचना करती है।

....हे भगवान्! तेरे विषयमें मैं चिंतन नहीं कर सकती पर तुझे निस्संदिग्ध रूपसे जान सकती हूं!

२१ अगस्त, १९१४

भगवान्! हे भगवान्! समूची पृथ्वी आंदोलित हो गयी है; वह कराह रही है और दुःख भोग रही है; वह यंत्रणासे छटपटा रही है...ऐसा न हो कि उसपर जो विपत्ति आ पड़ी है वह व्यर्थ ही चली जाय; ऐसी कृपा कर कि इस सारे रक्तपातसे सौंदर्य, ज्योति और प्रेमके समस्त बीज बड़ी तेजीसे अंकुरित हो उठें और उनकी प्रचुर पैदावारसे सारी पृथ्वी ढक जाय और लहलहा उठे। अंधकारपूर्ण इस खाईकी गहराईमेंसे संपूर्ण पार्थिव सत्ता तुझसे प्रार्थना कर रही है कि तू उसे वायु प्रदान कर, ज्योति प्रदान कर; उसका दम घुट रहा है; क्या तू उसकी सहायता करनेके लिये नहीं आयेगा?

हे नाथ! विजय प्राप्त करनेके लिये क्या करनेकी जरूरत है?

सुन, हमारी प्रार्थना सुन, क्योंकि, सर्वस्व देकर भी विजय प्राप्त करनी ही होगी। हे नाथ! समस्त विरोधोंका नाश कर; प्रकट हो!

२४ अगस्त, १९१४

हे प्रभुवर! हार्दिक कृतज्ञताके साथ मैं तेरे पास आ रही हूं। जिस ज्ञानके लिये मैं इतनी प्यासी थी उसका प्रथम पाठ तूने मुझे सिखाया है, और उस ज्ञानके साथ-साथ आयी है सिद्धिके प्रत्येक क्षेत्रमें अव्यर्थता और सच्ची शक्तिमत्ता।

यह तो केवल आरंभ है, यह कोई सिद्धि नहीं है; परंतु रास्ता खुल गया है और स्पष्ट तथा सीधा दिखायी देता है, बस, अब आवश्यकता है उसपर चलनेकी; अंधकारपूर्ण दिनोंके सामान्य पर शक्तिशाली प्रयासके फलस्वरूप पर्दा फट गया है। हे भगवान्! ऐसा वर दे कि मार्ग इसी तरह सबके लिये उद्भासित हो उठे, और जब हम अपने अंदर स्पष्ट देख लें तब उसके बाद दूसरोंके अंदर भी ज्ञानके सचेतन हो उठनेमें नयी कठिनाइयां न पैदा हों। सारी बातोंके होते हुए भी, मनुष्य चाहे जितना भी महान् क्यों न हो, वह होता सीमित ही है — कम-से-कम बहुत दिनोंतक उसे वैसा ही बने रहना होगा — बस, इसी बातके कारण कि वह मनुष्य है, और, यदि वह बृहत्के साथ संपर्क भी प्राप्त कर ले तो भी यह बृहत् उसके अपने व्यक्तित्वके दृष्टिकोणके अनुसार ही उसकी बाहरी चेतनामें प्रकट होता है। उसके लिये यह बहुत कठिन है कि अपने दृष्टिकोणके द्वारा वह किसी-न-किसी रूपमें दृश्यावलीको अंशतः विकृत न होने दे। परंतु इन अंतिम बाधाओंको भी अवश्य पार करना होगा, निश्चित रूपसे विनष्ट करना होगा जिसमें कि ये फिर नये सिरेसे उमड़ न आयें। पथको पूर्णतः मुक्त रखना होगा और जिस ज्ञानकी झांकी प्राप्त हुई है उसे दृढ़तापूर्वक स्थापित करना होगा। तेरी कृपा हमारे साथ है, हे नाथ, और वह कभी हमारा त्याग न करे, उस समय भी जब कि सब कुछ ऊपरसे अंधकारपूर्ण दिखायी दे; कभी-कभी पूर्णतर उषाको तैयार करनेके लिये रात्रिकी भी आवश्यकता होती है। परंतु, इस बार संभवतः तूने हमें ऐसी उषाके सामने ला रखा है जो कभी अस्त नहीं होती! . . .

ग्रहण कर हमारी ज्वलंत कृतज्ञता और हमारे सर्वांगीण समपणका यह अर्घ्य।

मैं जानती थी कि मेरे आध्यात्मिक जीवनका एक पर्व समाप्त हो जानेपर यह पुस्तक भी समाप्त हो जायगी। सचमुचमें वही हो रहा है।

ज्योति आ गयी है, पथ खुल गया है। परिश्रमशील भूतकालको कृतज्ञतापूर्ण अभिवादन अर्पित कर हम उस नये पथपर दौड़ चलेंगे जिसे तूने हमारे सामने प्रशस्त रूपमें उद्घाटित कर दिया है।

अधिक विशाल और अधिक सज्ञान सिद्धिके इस नवीन राज्यकी देहली-पर, हे परमेश्वर, हम पूर्ण समर्पण तथा पूजा-भावके साथ तेरे सामने सिर झुका रहे हैं। बिना कुछ बचाये हम अपने-आपको तुझे दे रहे हैं।

पुनः तू ही, और एकमात्र तू ही हमारे अंदर निवास कर रहा है। तू फिरसे अपने राज्यका राजा बन गया है, पर इस बार यह एक विशाल और पूर्ण राज्य है, तेरे शासनाधीन होनेके अधिक उपयुक्त एक राज्य है!

२५ अगस्त, १९१४

हे प्रभुवर! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरा कार्य पूरा हो। हमारी भक्ति-को दृढ़ बना, हमारे समर्पणको अधिक बढ़ा और पथपर हमें प्रकाश दिखा। हम अपने अंदर तुझे सर्वोच्च अधिपतिके रूपमें स्थापित कर रहे हैं जिसमें तू संपूर्ण पृथ्वीका सर्वोच्च अधिपति बन जाय।

हमारे शब्द अभी भी अज्ञानमय हैं: उन्हें ज्ञानोज्ज्वल बना।

हमारी अभीप्सा अभीतक दोषपूर्ण है: उसे शुद्ध कर।

हमारा कार्य अभी भी शक्तिहीन है: उसे सशक्त बना।

हे नाथ! यह पृथ्वी कराह रही है और पीड़ा भोग रही है; अस्त-व्यस्तताने इस जगत्‌को अपना घर बना लिया है।

यह अंधकार इतना अधिक है कि केवल तू ही इसे दूर कर सकता है। आ, अभिव्यक्त हो, जिसमें कि तेरा कार्य संपन्न हो।

२६ अगस्त, १९१४

हे मेरे मधुमय स्वामी, हे आनंदके अधीश्वर! ये सब आनंदके लोक परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट हो रहे हैं और एक-दूसरेको पूर्ण बना रहे हैं; ये एक ऐसी बृहत् वस्तु बन गये हैं कि इन सबकी एक साथ धारणा बनाना कठिन है। हमें इन विधानोंका ज्ञान प्रदान कर तथा पृथ्वीको जाग्रत् करनेकी शक्ति दे जिसमें कि अंधभावसे अनुसृत इस लक्ष्यको वह समझ सके और इसके विषयमें वह धारणा बना सके।...

समस्त वस्तुओंमें तू ही विशुद्ध सुख है, परम तृप्तिदायी आनंद है... परंतु यह आनंद केवल तभी परिपूर्ण होता है जब यह अत्यंत बाह्य अभि-

व्यक्तिसे लेकर अत्यंत अतल गहराइयोंतकमें सर्वांगपूर्ण बन जाता है।

हे भगवान् ! तूने मुझे अत्याश्चर्यके द्वार-प्रांतमें ला रखा है, इस ज्ञानमें मुझे दृढ़-प्रतिष्ठ कर। मुझे चेतनाके उस केंद्रमें स्थापित कर जहांसे मेरे कार्य तेरे विधानकी अविमिश्र अभिव्यक्तिके सिवा और कुछ नहीं होंगे।

एक शक्तिशाली और नीरव पूजा-भावके साथ मैं प्रतीक्षा कर रही हूं।

२७ अगस्त, १९१४

भागवत प्रेम बन जाना, समस्त क्रिया-कलापमें तथा सत्ताके समस्त लोकों-में वही शक्तिशाली, अनंत, अगाध प्रेम बन जाना . . . इसी चीजकी मैं तुझसे याचना कर रही हूं, हे भगवान्; ऐसी कृपा कर कि मैं सभी कर्मोंमें और सत्ताके सभी लोकोंमें बस उसी भागवत प्रेमसे, शक्तिशाली, अनंत, अगाध प्रेमसे प्रज्ज्वलित हो उठूं; रूपांतरित कर मुझे इस दहकते अग्नि-कुंडमें, जिसमें कि पृथ्वीका वातावरण इससे शुद्ध हो जाय।

ओ, अनंततः तेरा प्रेम बन जाना . . .।

२८ अगस्त, १९१४

हे भगवान् ! हे सनातन ईश्वर ! तेरे सम्मुख मेरा मन मौन और अशक्त बन गया है, पर मेरा हृदय तुझे पुकारता है; मेरी सारी सत्ताको जगा दे जिसमें कि संपूर्ण रूपसे वह तेरा आवश्यक यंत्र, पूर्ण सेवक बन सके।

ओ, यदि मैं बन जाती 'तू', अनंत रूपमें, सबमें, सर्वत्र, सर्वदा, चरम नीरवता और चरम गतिशीलताके अंदर भी . . .।

यदि मैं केवल 'एकमेव' बन जाती जो सबको धारण करता है, जो सबके द्वारा धृत है . . . जो समस्त सीमाबंधन और समस्त अंधतासे मुक्त है।

हे परम विजयी ! सभी बाधाओंको जीत ले।

२९ अगस्त, १९१४

यदि मनुष्य जो कुछ शाश्वत रूपसे विद्यमान है पर जो अभिव्यक्त नहीं हुआ है तथा जो कुछ प्रकट हुआ है उन दोनोंके बीच, समस्त परात्पर लोकों, दिव्य जीवनकी समस्त जाज्वल्यमान ज्योतियों तथा जड़ जगत्के समस्त अंधकार और शोक-तापपूर्ण अज्ञानके बीच एक सेतु बननेके लिये निर्मित न हुआ हो तो भला उसका और क्या उपयोग हो सकता है ? मनुष्य जो कुछ होना चाहिये और जो कुछ हो चुका है उनके बीचकी एक लड़ी है; वह खाईके ऊपर बनी हुई एक पुलिया है, वह महान् 'क्रास'-चिह्न (+) है, बाहु-चतुष्टयका संयोग-स्थल है। उसका सच्चा निवास-स्थान, उसकी चेतनाकी शक्तिपीठ होनी चाहिये उस मध्यवर्ती लोकमें जहां 'क्रास'-की चारों बांहें आकर मिलती हैं, जहां अचिंत्यकी समस्त अनंतता आकर बहुविध अभिव्यक्तिके अंदर प्रसारित होनेके लिये निश्चित रूप ग्रहण करती है....।

यह केंद्र-स्थल है परात्पर प्रेम और अखंड चेतनाका, विशुद्ध और सर्वांग-पूर्ण ज्ञानका पीठ-स्थान। इस स्थानपर प्रतिष्ठित कर उन लोगोंको, हे भगवान्, जो सच्चे रूपमें तेरी सेवा कर सकें, जिन्हें यथार्थ रूपमें तेरी सेवा करनी चाहिये और जो वास्तविक रूपमें तेरी सेवा करना चाहते हों, जिसमें कि तेरा कार्य संसिद्ध हो, पुल सदाके लिये स्थापित हो जाय तथा तेरी शक्तियां बिना थके संसारमें सर्वत्र फैल जायं।

३१ अगस्त, १९१४

इस भीषण अस्तव्यस्तता तथा इस भयानक विनाशके अंदर आवश्यक प्रयासकी एक महान् क्रिया दिखायी दे सकती है जो पृथ्वीको एक नये बीजारोपणके लिये तैयार करेगी तथा उस बीजारोपणके फलस्वरूप अन्नकी अद्भुत बालें निकल आयेंगी और जगत्को नवीन जातिरूपी उत्कृष्ट पैदा-वार प्राप्त होगी...। यह भविष्य-दृष्टि स्वच्छ और सुनिश्चित है, तेरे दिव्य विधानका पथ इतने स्पष्ट रूपमें अंकित है कि शांति वापस आकर सभी कार्य-कर्ताओंके हृदयमें साम्राज्ञीके रूपमें आसीन हो गयी है। अब कोई संदेह और कोई हिचकिचाहट नहीं है, अब कोई क्लेश और कोई उतावली नहीं है; अब तो कार्यका एकदम सीधा महान् पथ है जिससे,

समस्त विघ्नबाधाओंको पार करता हुआ, आपातदृश्य समस्त विरोधोंके होते हुए, वक्र पंथोंकी समस्त भ्रांतियोंके बावजूद, शाश्वत भावसे कार्य पूरा हो रहा है और ये सब जो स्थूल व्यष्टि-सत्ताएं हैं, अनंत संभूति-के अंदर ये जो अनवधारणीय मुहूर्त हैं, ये जानते हैं कि ये मनुष्यजातिको अव्यर्थ रूपमें तथा अनिवार्य परिणामोंकी कोई चिंता न कर एक पग और आगे अवश्य बढ़ा देंगें, भले ही ऊपरसे देखनेमें और अस्थायी रूपसे उसके परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न हों। ये सभी तेरे साथ युक्त हो रहे हैं, हे शाश्वत प्रभु, ये तेरे साथ युक्त हो रहे हैं, हे विश्वजननी, और इस प्रकार जो कुछ अभिव्यक्तिके परे है तथा जो कुछ समस्त अभि-व्यक्ति है उसके साथ द्विविध तादात्म्य प्राप्त कर ये संपूर्ण निश्चयताका अनंत आनंद-रस उपभोग कर रहे हैं ...।

शांति, शांति, समस्त विश्व-ब्रह्मांडमें शांति ...।

युद्ध बस बाह्य रूप है,
उथल-पुथल बस भ्रम-भ्रांति है:
शांति अक्षर रूपमें विद्यमान है।

हे मां! हे प्यारी जननी! मैं तो 'तू' ही हूं; तू ही युगपत् संहार-कारिणी और सृष्टिकारिणी है।

समस्त विश्व-ब्रह्मांड अपनी असंख्य जीवनधाराओंके साथ तेरे वक्षस्थलमें निवास कर रहा है और तू अपनी विशालताके साथ विद्यमान है उसके क्षुद्रतम परमाणुओंतकमें।

और तेरी अनंतताकी अभीप्सा उसकी ओर ऊपर उठ रही है जो कभी प्रकट नहीं हुआ है और यह अनुरोध कर रही है कि वह निरंतर अधिकाधिक पूर्ण और समग्र रूपमें अभिव्यक्त हो।

और समस्त एक ही कालमें, एक ही त्रिविध और त्रिकाल-दर्शी अखंड चेतनाके अंदर, व्यक्तिगत, विश्वगत और अनंतके अंदर उपस्थित है।

१ सितंबर, १९१४

हे मां भगवती! कितने आवेगके साथ, कितने ज्वलंत प्रेमके साथ मैं तेरे निकट आयी, तेरी गभीरतम चेतनाके अंदर, महत्प्रेम तथा पूर्णा-नंदकी तेरी उच्च स्थितिके अंदर आ उपस्थित हुई, और मैं तेरे बाहु-पाशके इतने गाढ़े आलिंगनमें बंध गयी, तुझे इतने तीव्र रूपमें मैंने प्यार

किया कि मैं पूर्ण रूपसे तू ही बन गयी; और फिर 'हमारे' उस मौन आनंदातिरेककी नीरवतामें और भी अधिक गभीरताओंमेंसे आनेवाली एक वाणी सुनायी पड़ी और उस वाणीने कहा: "उन सब लोगोंकी ओर मुड़ जिन्हें तेरे प्रेमकी बड़ी आवश्यकता है।" और फिर चेतनाके सभी स्तर, सभी लोकोंकी परंपरा प्रकट हो गयी; उनमेंसे कुछ लोक तो बड़े दीप्तिमान और ज्योतिर्मय थे, सुव्यस्थित और परिष्कृत थे; उनका ज्ञान उज्ज्वल था, अभिव्यक्ति सुसमंजस और विशाल थी, संकल्प-शक्ति बलशाली और अदम्य थी; उसके बादके फिर सारे जगत् अंधकाराच्छन्न हो उठे, क्रमशः अधिकाधिक विच्छिन्न और विश्रृंखल हो उठे; वहां शक्ति प्रचंड हो उठी और जड़-जगत् तमसावृत और दुःखमय बन गया। और उसके बाद जब 'हम दोनोंने' अपने अनंत प्रेमके द्वारा सर्वांगीण रूपमें अज्ञान और दुःख-तापसे भरे जगत्की भयंकर पीड़ाको हृदयंगम किया, जब 'हमने' देखा कि हमारे बच्चे घोर संघर्षमें संलग्न हैं, अपने वास्तविक लक्ष्यसे विच्युत शक्तियोंद्वारा चालित होकर एक-दूसरेके ऊपर आक्रमण कर रहे हैं, तब 'हमने' बड़े जोरसे यह इच्छा की कि भागवत प्रेमकी ज्योति प्रकट हो, इन सब उन्मत्त सत्ताओंके केंद्रमें रूपांतरकारिणी शक्ति आविर्भूत हो ...। उसके बाद इस संकल्पको और भी अधिक सबल और प्रभावशाली बनानेके लिये 'हम दोनों' तेरी ओर मुड़ीं, हे अचिंत्य परात्पर, और 'हमने' तुझसे सहायताके लिये प्रार्थना की। और फिर अज्ञातकी अतल गहराइयोंसे आया एक उदात्त और दुर्निवार उत्तर; और तब 'हमने' समझ लिया कि पृथ्वीका उद्धार हो गया।

४ सितंबर, १९१४

पृथ्वीपर अंधकार उतर आया है, घना, प्रचंड, विजयी ...। इस भौतिक जगत्में सब कुछ दुःख, भय और विनाशमें परिणत हो गया है, और ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे प्रेमकी ज्योति-प्रभा शोकके पर्देसे आच्छादित हो गयी है ...।

हे प्यारी माता! मैं एक विपुल प्रेमावेगके साथ तेरे अंदर गल रही हूं और साथ ही सकल वस्तुओंके अधीश्वरसे यह हार्दिक प्रार्थना करती हूं कि हमें पथ दिखायें, वह अपने कार्यका मार्ग हमारे लिये स्थिर कर दें जिसमें कि हम साहसपूर्वक उसका अनुसरण कर सकें।

समय शीघ्रतासे निकला जा रहा है: हे भगवान्, पीड़ित पृथ्वीकी सहायता करनेके लिये देव-शक्तियोंको शीघ्र आना चाहिये।

हे मां! हे प्यारी जननी! तू अपने सभी बच्चोंको अपने विशाल वक्ष-स्थलपर चिपकाये रखती है और तेरा प्रेम उन सबको एक समान घेरे रखता है।

मैं तेरे प्रेमकी शुद्धिदायिनि अग्नि बन गयी हूं। हे भगवान्! हे मौन अचिंत्य! तू इस प्रेम-कुंडकी आत्माहुतिको स्वीकार कर जिसमें कि तेरा राज्य स्थापित हो, तेरी ज्योति अंधकार और मृत्युपर विजय प्राप्त करे।

अपनी शक्तिको प्रकट कर। दिन-प्रति-दिन घंटे-प्रति-घंटे हम तुझसे अनुनय करते हैं: हे भगवान्! अपनी शक्तिको प्रकट कर!

५ सितंबर, १९१४

"विपत्तिका सामना कर!" तूने मुझसे कहा, "तू अपनी दृष्टि क्यों फेर लेना चाहती है या कर्मसे दूर, संघर्षसे बाहर सत्यके गभीर ध्यानमें क्यों भाग जाना चाहती है? सत्यकी संपूर्ण अभिव्यक्तिको संसिद्ध करना होगा; अंध अज्ञान और अंधकारमय विरोधोंकी सभी बाधाओंपर उसकी विजय लानी होगी। सीधे विपत्तिकी ओर देख और वह महाशक्तिके सामने विलीन हो जायगी।"

हे भगवान्! मैंने इस अत्यंत बाह्य प्रकृतिकी दुर्बलताको समझ लिया है जो सर्वदा जड़तत्वकी वश्यता स्वीकार करनेके लिये तैयार रहती है और क्षतिपूर्तिके रूपमें बौद्धिक और आध्यात्मिक परम मुक्तिमें भाग जाना चाहती है। परंतु तू तो हमसे कर्मकी आशा करता है, और कर्म उस तरहके किसी मनोभावको प्रश्रय नहीं देता। आंतरिक लोकोंमें ही विजय प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है, अत्यंत स्थूल लोकोंतकमें विजय प्राप्त करनी होगी। कठिनाइयों और बाधाओंसे हमें दूर नहीं भागना चाहिये, क्योंकि हममें वैसा करनेकी शक्ति है और हम अपनी चेतनाके भीतर शरण ले सकते हैं जहां कोई बाधा अब नहीं आती ... एकदम सीधे विपत्तिके सामने ताकना चाहिये, तेरी सर्वशक्तिमत्तामें विश्वास बनाये रखना चाहिये और तब तेरी सर्वशक्तिमत्ताकी विजय अवश्य होगी।

हे प्रभुवर! मुझे संपूर्णतः एक योद्धाका हृदय प्रदान कर और तेरी विजय सुनिश्चित है।

"सर्वस्वकी बाजी लगाकर भी विजय लानी होगी" — बस, यही होना चाहिये हमारा वर्तमान मूल-मंत्र। पर इसका कारण यह नहीं कि हम कार्य और उसके परिणामोंके प्रति आसक्त हैं; इसका कारण यह नहीं कि हमें ऐसे कार्यकी आवश्यकता है; इसका कारण यह नहीं कि हम आकस्मिक घटनाओंसे बचनेमें असमर्थ हैं।

बल्कि इसका कारण यह है कि तूने हमें कर्मका आदेश दिया है; बल्कि इसका कारण यह है कि पृथ्वीपर तेरी विजय होनेका समय आ गया है; बल्कि इसका कारण यह है कि तू सर्वांगपूर्ण विजय चाहता है।

और संसारके प्रति अनंत प्रेम रखते हुए ... आ, हम युद्ध करें!

६ सितंबर, १९१४

और ऊपरकी ओर, निरंतर और ऊपरकी ओर चलते चलें! जो कुछ संसिद्ध हो चुका है उससे कभी हम संतुष्ट न हों, किसी सिद्धिपर आकर हम रुक न जायं, बिना रुके, पूर्ण उत्साहके साथ, हम सर्वदा आगे बढ़ते चलें निरंतर अधिक पूर्ण बनती हुई एक अभिव्यक्तिकी ओर, निरंतर अधिक ऊंची और अधिक सर्वांगपूर्ण बनती हुई चेतनाकी ओर ...। विगत कलकी विजय तो महज आगामी कलकी विजयकी ओर जानेका सोपान बनेगी और पूर्वाह्लकी शक्ति अपराह्लकी सामर्थ्यके सामने दुर्बलता ही साबित होगी।

हे जगज्जननी! तेरी यात्रा विजयपूर्ण और अव्याहृत है। जो अखंड प्रेमके द्वारा तेरे साथ युक्त हो जाता है वह अबाध गतिसे निरंतर विशालसे विशालतर क्षितिजोंकी ओर, निरंतर पूर्णसे पूर्णतर सिद्धियोंकी ओर आगे बढ़ता है तथा तेरी ज्योतिके प्रोज्ज्वल प्रकाशमें एक चोटीसे दूसरी चोटीपर कूदता हुआ अज्ञेयके अद्‌भुत रहस्योंको अधिकृत करने तथा उन्हें सर्वांशतः अभिव्यक्त करनेके लिये अग्रसर होता है।

हे विजयिनी भगवती माता! समस्त पृथ्वी तेरी महिमाका गान करती है तथा समस्त शक्तियां तेरी आज्ञाकारिणी बन जायेंगी।

कारण, भगवान्‌ने कहा है: "समय आ गया है।" और सभी बाधाएं जीत ली जायेंगी।

९ सितंबर, १९१४

संसार दो परस्पर-विरोधी शक्तियोंमें विभक्त हो गया है जो प्राधान्य प्राप्त करनेके लिये युद्ध कर रही हैं। ये दोनों ही शक्तियां एक समान तेरे विधानके प्रतिकूल हैं, हे भगवान् : क्योंकि तू न तो मृत्युतुल्य अचल स्थिति चाहता है और न अंध प्रलय। तू तो एक सतत, क्रमोन्नत तथा ज्योतिर्मय रूपांतरके द्वारा अपने-आपको प्रकट करता है; और यदि हम तेरे संकल्पको अभिव्यक्त करना चाहें तो हमें इसी रूपांतरको पृथ्वीके ऊपर संस्थापित करना होगा।

कभी-कभी हमारी अधीरता तुरत-फुरत यह जान लेना चाहती है कि इस अभिव्यक्तिके उपाय क्या हैं। परंतु हमारी अधीरता बेकार है और उसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। कारण, ज्ञान तो आयेगा समुचित समयपर, कर्म करनेके मुहूर्त्तमें।

अतएव मनको शांत कर तथा कर्म-साधक संकल्पको स्थिर और दृढ़ बनाकर हम उस संकेतकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जो तू हमें प्रदान करेगा।

१० सितंबर, १९१४

तेरा प्रेम चढ़ते ज्वारके समान है, उसने समग्र सत्ताको आक्रांत कर लिया है और समस्त वस्तुओंको परिप्लावित कर दिया है। हे जगदीश! तेरा प्रेम सबके हृदयोंमें प्रविष्ट होगा और उनके अंदर उस दिव्य अग्नि-शिखाको उत्पन्न करेगा जो बुझायी नहीं जा सकती, उस स्वर्गीय सौंदर्यको प्रकट करेगा जो बदला नहीं जा सकता, और, समस्त विपरीतताओं और विषमताओंके परे जाकर वह सबके अंदर उस अक्षय आनंदको स्थापित करेगा जो चरम हित भी है।

तेरी ज्योति ऊपर उठती हुई ज्वारके समान है, वह सारी सत्ताको आक्रांत कर रही है और सभी वस्तुओंको परिप्लावित कर रही है। हे प्रभु! तेरी ज्योति सबके मनोंमें पैठ जायगी और उनके अंदर उस श्रेष्ठतम स्वच्छ दृष्टिको उत्पन्न करेगी जो कभी डगमगाती नहीं, उस दिव्य अंतर्दृष्टिको पैदा करेगी जो बिलकुल भूल नहीं करती, और, समस्त विपरीतताओं तथा समस्त विषमताओंसे ऊपर उठकर वह सबके अंदर तेरे ज्ञानकी उस दीप्तिको स्थापित करेगी जो परम अभिज्ञता भी है।

तेरी शक्ति उमड़ती हुई ज्वारके समान है, वह समस्त सत्ताको आक्रांत कर रही है और सभी चीजोंको परिप्लावित कर रही है। हे भगवान्! तेरी शक्ति सबके प्राणमें प्रवेश करेगी और उसके अंदर उस कार्यकी क्षमताको उत्पन्न करेगी जो जरा भी क्षीण नहीं होती, उस दिव्य बल-वीर्यको जन्म देगी जो अजेय है, और, समस्त विपरीतताओं तथा समस्त विषमताओंके ऊर्ध्वमें जाकर वह सबके अंदर उस समुच्च क्रिया-शक्तिको स्थापित करेगी जो परम इच्छा-शक्ति भी है।

१३ सितंबर, १९१४

बड़े आग्रहके साथ मैं तुझे नमस्कार करती हूं, हे भगवती माता, और गभीर अनुरागके साथ तेरे साथ एकात्म हो रही हूं। विश्व-जननीके साथ युक्त होकर मैं तेरी ओर मुड़ती हूं, हे भगवान्, और मौन पूजा-भावके साथ तुझे प्रणाम करती हूं; एक तीव्र अभीप्साके साथ मैं तेरे साथ एकाकार हो रही हूं।

फिर तो सब कुछ अपूर्व नीरवतामें पर्यवसित हो जाता है, सत् असत्में मिल जाता है, सब कुछ हो जाता है स्थगित, स्तब्ध, अक्षर...।

भला अवर्णनीयका कैसे वर्णन किया जाय? ....

१४ सितंबर, १९१४

अब कोई 'मैं' नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई व्यक्तिगत सीमा नहीं है। बस, अब है विशाल विश्व, हमारी महामहिम जननी, जो तेरे सम्मानमें शुद्धिकी ज्वलंत अग्निमें जल रही है, हे प्रभुवर, हे परमेश्वर, हे परात्पर संकल्प-शक्ति, जिसमें कि इस संकल्प-शक्तिकी सिद्धिके मार्गमें अब कोई बाधा न उपस्थित हो।

हे भगवान्! तीव्र प्रेम और महा उल्लासका एक विपुल गान तेरी ओर उठ रहा है और समूची पृथ्वी एक अवर्णनीय आह्लादके साथ तेरे संग युक्त हो रही है।

तेरी सबल फूंक अग्निकुंडको जलाये रखे जिसमें कि वह कुंड अधिकाधिक

विशाल और दुर्दमनीय बनता जाय तथा समस्त तिमिर और समस्त अंध-विरोध आत्मसात् कर लिया जाय, जला दिया जाय, तेरी शुद्धिदायिनी अप-रूप शिखाकी ज्योतिमें रूपांतरित कर दिया जाय।

कितनी शांतिदायिनी आभा है तेरे पवित्रीकरणमें!

१६ सितंबर, १९१४

सुन उस वाणीको जो आ रही है, सुन उस गानको जो तेरी दिव्य उषा-का अभिवादन करनेके लिये निकल रहा है।

परम विधान पूर्ण हो; वह चाहे विश्वभूत शाश्वत सत्ता हो या असत्में पुनः विलय, इससे कुछ आता-जाता नहीं। क्या इन दोनोंमेंसे एकको चुनना होगा? मैं तो नहीं चुन सकती; मेरी चेतनामें अब कोई रुचि नहीं है और बस एक ही संकल्प बना हुआ है : वह है तेरा संकल्प, हे अकथनीय!

और समस्त विश्व अब केवल एक गान रह गया है जो क्रमशः विशाल और सुसमंजस होता जा रहा है तथा तेरी दिव्य उषाकी अभ्यर्थना करनेके लिये प्रकट हो रहा है।

१७ सितंबर, १९१४

कार्यकी कोई प्रेरणा बाहरसे अथवा किसी विशिष्ट लोकसे कभी नहीं आ सकती। हे भगवान्! एकमात्र तू ही सत्ताकी गहराईमें रहकर सबको गतिशील बनाता है, तेरी ही इच्छा-शक्ति परिचालित करती है, तेरी ही शक्ति कार्य करती है; और अब केवल एक क्षुद्र व्यष्टिगत चेतनाके सीमित क्षेत्रमें ही कार्य नहीं करती, बल्कि एक ऐसी चेतनाके विश्वव्यापी क्षेत्रमें कार्य करती है जो सत्ताकी प्रत्येक अवस्थामें ही सर्वके साथ एकीभूत है। और उस सत्ताको एक साथ ही सज्ञान बोध है एक ओर तो समस्त विश्व-व्यापी जटिल, और यहांतक कि विशृंखल गतियोंका तथा दूसरी ओर तेरी परम अक्षरताकी नीरव और अखंड शांतिका।

२० सितंबर, १९१४

लेखनी चुप है क्योंकि मन नीरव हो गया है, पर हृदय तेरे लिये अभीप्सा कर रहा है, हे प्रभुवर, और वह एक ही प्रेमके, एक ही श्रद्धा-भक्तिके अंदर तुझे हमारी भगवती माताके साथ युक्त कर रहा है। और तेरा आश्रय लेकर समग्र सत्ता वाक्यातीतकी ओर उन्मुख हो रही है एवं सत्ताके परे, नीरवताके भी उस पार, वह वस्तु तत्-वस्तुके साथ संयुक्त हो रही है।

२२ सितंबर, १९१४

हे भगवान्! तो तू अज्ञेयकी देहलीपर विराजमान है, मैं तुझे प्रणाम करती हूं!

पर क्या स्वयं तू ही अपने-आपको प्रणाम नहीं करा रहा है परा-सत्ताके अचिंत्य सार-तत्त्वके अंदर, उसकी अपरिमेय गहराइयोंके अंदर तथा उसकी अत्यंत बाह्य सिद्धियोंतकके अंदर? क्योंकि परा-सत्ता तो तू ही है, चाहे उसका आकार-प्रकार जो कुछ भी क्यों न हो, और फिर अपने तत्त्व-रूपमें अचिंत्य शाश्वत भी तू ही है। और इस अखंड चेतनाको तूने हमारी वस्तु बना दिया है जिसमें कि हम 'तू' बन जायं, सो भी एकमात्र मूल-तत्त्व-रूपमें नहीं, बल्कि सचेतन रूपसे और सक्रिय रूपसे भी। इस तरह सब कुछ बन गया है प्रेम और आनंदपूर्ण भक्ति-भावसे भरा हुआ आदान-प्रदान तथा परस्पर अभिवादन — वह सब है तेरे प्रति हमारी दिव्य माताकी तीव्र अभीप्सा तथा हमारी दिव्य जननीके प्रति तेरा अनंत और शक्तिशाली प्रत्युत्तर, और फिर अंतमें वह अभीप्सा तेरी समग्र सत्तासे उसकी ओर जा रही है जो अभी अभिव्यक्त नहीं हुआ है, उस संपूर्ण अज्ञेयकी ओर जा रही है जिसे हम क्रमशः अधिकाधिक और अच्छे-से-अच्छे रूपमें जानेंगे, पर जो सर्वदा ही अज्ञेय बना रहेगा।

पूर्ण निश्चल-नीरवताके अंदर सब कुछ है — वर्तमानतः और शाश्वततः; विश्वगत अभिव्यक्तिके अंदर सब कुछ चिरंतन संभूति-धाराके अंतर्गत साकार हो उठेगा।

चेतना और अखंड जीवनकी परिपूर्णताके अंदर सत्ता उसके निमित्त आनंद-गान कर रही है जो एक साथ ही है और नित्यकाल होगा।

नमस्कार है तुझे, हे जगत्पति, क्या जो कुछ है तथा जो कुछ होगा उन

दोनोंके बीचका तू मध्यस्थ नहीं है, कारण एक ही साथ जो कुछ है और जो कुछ होगा वह दोनों तू है?

हे आश्चर्यमय बृहत्! तू युगपत् बोधगम्य और अनिर्देश्य है, परिपूर्ण ज्ञानालोकके अंदर मैं तुझे प्रणाम कर रही हूं।

२४ सितंबर, १९१४

किस तरह तू हमारे बीच उपस्थित है, हे प्यारी मां! ऐसा मालूम होता है कि तू चाहती है कि तेरे पूर्ण सहयोगके विषयमें हमें विश्वास हो जाय, तू हमें यह दिखाना चाहती है कि हमारे द्वारा जो संकल्प-शक्ति अभिव्यक्त होना चाहती है उसने उन यंत्रोंको प्राप्त कर लिया है जो उसके विधानको, तेरी वर्तमान संभावनाओंके साथ संपूर्ण सामंजस्य रखते हुए, संसिद्ध कर सकते हैं। और जो चीजें अत्यंत कठिन, अत्यंत असंभव और संभवतः अत्यंत असाध्य भी प्रतीत होती थीं वे पूर्णतः सुसाध्य बन गयी हैं, कारण, तेरी उपस्थिति हमें विश्वास दिलाती है कि स्वयं जड़-जगत् भी तेरी इच्छा-शक्ति तथा तेरे दिव्य विधानके नूतन रूपको अभिव्यक्त करनेके लिये तैयार हो गया है।

सर्वांगपूर्ण समन्वयके प्रचुर आनंदके अंदर मैं तेरा अभिवादन कर रही हूं, तेरा, तेरे कर्मोंका और तेरे नित्य-सत्यका स्वागत कर रही हूं।

२५ सितंबर, १९१४

हे परमपूज्या भगवती माता! यदि तेरी सहायता प्राप्त हो तो फिर ऐसी कौन-सी चीज है जो असंभव हो? सिद्धिका दिन समीप है और तू हमें यह आश्वासन देती है कि परम इच्छा-शक्तिको सर्वांगीण रूपसे सार्थक बनानेके लिये तेरा सहयोग प्राप्त होगा।

तूने हमें अचिंत्य सद्वस्तुओं तथा भौतिक जगत्की आपेक्षिक वस्तुओंके बीच अच्छे मध्यस्थोंके रूपमें स्वीकार कर लिया है, और हमारे मध्य तेरी सतत उपस्थिति तेरे सक्रिय सहयोगका चिह्न है।

भगवान्ने संकल्प किया है और तू कार्यान्वित करती है;

एक नवीन ज्योति पृथ्वीपर उदित होगी।
एक नवीन जगत् उत्पन्न होगा।
और प्रतिज्ञात वस्तुएं संसिद्ध होंगी।[1]

२८ सितंबर, १९१४

हे भगवान्! तेरी उपस्थितिका गुणगान करते समय मेरी लेखनी मौन हो गयी है, पर तू एक राजाके जैसा है जिसने अपने राज्यपर संपूर्ण अधिकार जमा लिया है; तू प्रत्येक प्रांतको सुसंघटित, श्रेणीबद्ध, विकसित और वर्द्धित करता है; तू सोये हुए लोगोंको जगाता है, तामसिकताकी ओर झुके लोगोंको क्रियाशील बनाता है, सबको सुसमन्वित करता है, और एक दिन आयगा जब समन्वय करनेका यह कार्य पूर्ण हो जायगा और समस्त देश अपनी जीवन-धारातकमें बन जायेगा तेरी वाणी और तेरी अभिव्यक्तिका वाहन।

परंतु इस बीच मेरी लेखनी तेरी स्तुति करते समय मौन हो गयी है!

३० सितंबर, १९१४

हे भगवान्! तूने मनकी सभी बाधाओंको भंग कर दिया है और सिद्धि अपनी संपूर्ण समृद्धिके साथ प्रकट हुई है। उससे संबंधित किसी दृष्टिकोण-को भूलना न होगा, सीधे उन्हें उनकी परिपूर्णतातक ले जाना होगा, उनमेंसे किसीकी उपेक्षा नहीं करनी होगी, किसी सीमाको, किसी रुकावटको पथके बीच आने न देना होगा और अपनी यात्रामें देर न लगाने देना होगा, और

---

[1]२९ मार्च, १९५६ के दिन श्रीमाताजीने इसका रूप बदल दिया और इस प्रकार लिख दिया:

हे प्रभु, तूने इच्छा की, और मैं उसे पूर्ण कर रही हूं।
एक नयी ज्योति पृथ्वीपर छा रही है।
एक नया जगत् उत्पन्न हो गया है।
और जिन बातोंका आश्वासन दिया गया था वे पूरी हो गयी हैं।

यही कार्य है जिसे करनेमें तू हमें अपने परमोच्च हस्तक्षेपके द्वारा सहायता प्रदान करेगा। और सब लोग, जो स्वयं 'तू' हैं, और किसी-न-किसी विशिष्ट कार्यकी परिपूर्णतामें तुझे अभिव्यक्त करते हैं, हमारे सहकर्मी भी बनेंगे, क्योंकि ऐसी ही तेरी इच्छा है।

हम लोगोंकी भगवती माता हमारे साथ हैं और उन्होंने हमसे यह प्रतिज्ञा की है कि वह परात्पर और अखंड चेतनाके साथ हमारा एकत्व करा देंगी — अथाह गहराइयोंसे लेकर अत्यंत बाहरी इंद्रिय-जगत्‌तकमें। और इन सभी लोकोंमें अग्निदेव हमें आश्वासन देते हैं कि वह अपनी पवित्रकारिणी शिखा-के द्वारा सहायता करेंगे, सभी बाधाओंका नाश करेंगे, शक्ति-सामर्थ्यको प्रज्वलित करेंगे, इच्छा-शक्तिको संजीवित करेंगे जिसमें कि सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो। इन्द्रदेव हमारे ज्ञानकी ज्योतिको पूर्णता प्रदान करनेके लिये हमारे साथ हैं: और सोमदेवने हमें अपने उस अनंत, महत्, अद्‌भुत प्रेममें रूपांतरित कर दिया है जो परमानंदको जन्म देता है.....।

हे प्यारी भगवती माता, एक अकथनीय और समाहित अनुरागके साथ, एक असीम निर्भरताके साथ मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

हे परमोज्ज्वल अग्निदेव, तू इतने जीवंत रूपमें मेरे अंदर विद्यमान है, मैं तेरा आह्वान करती हूं, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं जिसमें कि तू और भी अधिक सजीव बन जा, जिसमें कि तेरा कुंड और भी अधिक विशाल, तेरी शिखाएं और भी अधिक शक्तिशाली और उच्च बन जायं और जिसमें कि मेरी समूची सत्ता एक प्रचंड अग्निदाह, शुद्धिदायी चिताके सिवा और कुछ न रह जाय!

हे इन्द्रदेव! मैं तेरी पूजा करती हूं और तेरी स्तुति करती हूं, मैं तुझसे अनुरोध करती हूं कि तू मेरे साथ एक हो जा, तू मनकी सभी बाधाओंको सदाके लिये दूर कर दे, तू मुझे दिव्य ज्ञान प्रदान कर।

हे परम प्रेम! मैंने तुझे कभी दूसरा नाम नहीं दिया, पर तू संपूर्ण रूप में मेरी सत्ताका सारतत्त्व है; तुझे ही मैं अपने क्षुद्रतम परमाणुओंतकमें स्पंदित और जीवित अनुभव करती हूं, जैसे कि अनंत विश्वके अंदर और उसके बाहर भी अनुभव करती हूं; तू ही प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके द्वारा श्वास लेता है, तू ही समस्त क्रियाओंके केंद्र-स्थलमें विद्यमान है, तू ही समस्त शुभाकांक्षाओंके भीतरसे विकीर्ण हो रहा है, तू ही समस्त दु:ख-कष्टोंके पीछे छिपा हुआ है, तेरे लिये ही मैं एक असीम आराधनाका पोषण करती हूं जो निरंतर अधिकाधिक गाढ़ी होती जाती है, तू ऐसी कृपा कर कि मैं उत्तरोत्तर सच्चे रूपमें यह अनुभव कर सकूं कि मैं अखंड रूपसे 'तू' ही बन गयी हूं।

और तू, हे नाथ, तू तो एक साथ यह सब है और उससे भी कुछ और अधिक है, तू अद्वितीय अधीश्वर है, तू हमारे विचारोंकी चरम सीमापर अवस्थित है, तू हमारे लिये अज्ञातकी देहलीपर खड़ा है, उस अचिंत्यके भीतरसे किसी नयी दीप्तिको, सिद्धिकी किसी अधिक ऊंची और अधिक पूर्ण संभावनाको उद्‌भूत कर दे जिसमें कि तेरा कार्य संपन्न हो और विश्व परमोच्च तादात्म्यकी ओर, महान् अभिव्यक्तिकी ओर एक पग और आगे बढ़ जाय।

और मेरी लेखनी चुप हो रही है और मैं नीरवताके अदंर तेरी पूजा कर रही हूं।

५ अक्तूबर, १९१४

तेरे ध्यानकी प्रशांत नीरवतामें, हे परमेश्वर, प्रकृति फिरसे शांत-स्थिर और सबल हो रही है। व्यक्तित्वके सभी तत्त्वोंको अतिक्रम कर वह तेरी अनंततामें डूब रही है जहां सभी स्तरोंमें, बिना किसी विश्रृंखला, बिना किसी अव्यवस्थाके, एकत्वकी उपलब्धि होती है। जो कुछ बना रहता है, जो कुछ प्रगति करता है और जो कुछ शाश्वत कालसे है उन सबका सुसमंजस संमि-श्रण धीरे-धीरे एक ऐसी साम्यावस्थामें संपन्न हो रहा है जो निरंतर अधिक समृद्ध, अधिक विस्तारित और अधिक उन्नत हो रही है। और जीवनकी तीनों धाराओंका परस्पर आदान-प्रदान तेरी अभिव्यक्तिको परिपूर्ण बना रहा है।

बहुत-से लोग तुझे इस समय दुःख-कष्ट और अनिश्चयताके साथ खोज रहे हैं। मैं तेरी ओरसे उनकी मध्यस्था बनूं जिससे कि तेरी ज्योति उन्हें आलोकित करे तथा तेरी शांति उन्हें प्रशांत कर दे।

मेरी सत्ता अब केवल तेरे कार्यका एक अवलंब है, तेरी चेतनाका एक केंद्र है।

भला सभी सीमाएं और बाधाएं कहां गयीं? तू ही अपने राज्यका एक-छत्र स्वामी है!

६ अक्तूबर, १९१४

हे मधुर जननी! मुझे यह सिखा दे, किस तरहसे मैं सर्वांगीण रूपसे और निरंतर 'तू' बन सकती हूं, अपने-आपको संपूर्णतः उत्सर्ग कर सकती हूं जिसमें कि जो सद्वस्तु अभिव्यक्त होना चाहती है उसे अपनी अभिव्यक्तिका एक अधिकाधिक पूर्ण साधन प्राप्त हो जाय।

सब कुछ सुस्थिर और प्रशांत है, कोई संघर्ष नहीं, कोई वेदना नहीं, स्वयं अभीप्सा भी अपनी विशालताके अंदर अत्यधिक शांतिपूर्ण हो गयी है, पर अपनी तीव्रताको उसने जरा भी नहीं खोया है, और फिर चेतनामें एक प्रकारकी अद्‌भुत विपरीतता आनेके कारण जैसे कि किसी पदककी सामने और पीछेकी पीठ होती है, मेरी सत्ता एक साथ ही एक ओर तो अनंत सद्वस्तुकी उस अक्षर प्रशांतताको देखती है जिसमें कि परिवर्तनकी किसी संभावनाके बिना सब कुछ शाश्वत रूपसे विद्यमान है, और दूसरी ओर, जो कुछ एक निरवच्छिन्न क्रमोन्नतिके अंदर नित्य-निरंतर रूप ले रहा है उसकी तीव्र और क्षिप्र गतिधाराको देख रही है। और ये दोनों ही तेरे लिये एक समान सत्य हैं, हे भगवान्!

७ अक्तूबर, १९१४

पृथ्वीपर ज्योति फैल जाय और सभी हृदयोंमें शांति निवास करे! प्रायः सब लोग केवल स्थूल, भाराक्रांत, जड़, परिवर्तनविमुख और तामसिक जीवनको ही जानते हैं; और उनकी प्राण-शक्तियां जीवनके इस बाह्य आकारके साथ इतनी आसक्त होती हैं कि अपने-आपमें मुक्त और शरीरसे बाहर होनेपर भी वे अभी भी उन्हीं स्थूल अनिश्चित व्यापारोंमें पूर्ण रूपसे व्यस्त रहती हैं जो अब भी इतने परेशान करनेवाले और दुःखदायी होते हैं। और जिन लोगोंमें मानसिक जीवन जागृत हो गया है वे अशांत, उद्विग्न, विक्षुब्ध, स्वेच्छाचारी और प्रभुत्वकामी होते हैं; और जिन सब परिवर्तनों और पुनस्संस्कारोंका वे स्वप्न देखते हैं उनके भंवरमें संपूर्ण रूपसे फंसकर वे सब कुछ नष्ट कर देनेके लिये तैयार हो जाते हैं, इसका उन्हें पता ही नहीं होता कि किस वस्तुका अवलंब लेकर गठन किया जा सकता है, और इस तरह चकाचौंध करनेवाली चमकोंसे निर्मित अपने प्रकाशके द्वारा वे अस्तव्यस्तताको दूर करनेके बदले उसे और भी अधिक बढ़ा देते हैं।

तेरे सर्वोच्च ध्यानकी अपरिवर्तनीय शांतिका, तेरी अक्षर शाश्वतताकी स्थिर दृष्टिका अभाव सबके अदंर है।

इस व्यष्टि-सत्ताको तूने अपार करुणा प्रदान की है; अनंत कृतज्ञताके साथ मैं तुझसे प्रार्थना कर रही हूं, हे भगवान्, जिसमें कि इस वर्तमान आलोड़नकी सहायता लेकर, इस अपरिसीम अस्तव्यस्तताके अंदर आश्चर्य-जनक घटना घटित हो और तेरी चरम प्रशांतता और निरवच्छिन्न तथा विशुद्ध ज्योतिका दिव्य विधान सबके लिये प्रत्यक्ष बन जाय एवं अंतमें तेरी चेतनाके प्रति जाग्रत् मनुष्यजातिके द्वारा इस पृथ्वीपर शासन करे।

हे परम प्रिय राजा! तूने मेरी प्रार्थना सुन ली है और तू मेरे आह्वान-का उत्तर भी देगा।

८ अक्तूबर, १९१४

कर्मके अंदर विद्यमान आनंदको समस्त कर्मोंकी निवृत्तिमें विद्यमान संभवतः उससे भी महत्तर आनंद पूरा करता तथा उसकी समतोलता बनाये रखता है; जब ये दोनों अवस्थाएं आधारके अंदर बारी-बारीसे आती हैं अथवा एक संग सचेतन हो उठती हैं तब आनंद अपनी पूर्णताको प्राप्त हो जाता है, क्योंकि, तब, हे भगवान्, तेरी परिपूर्णता सिद्ध हो जाती है।

हे परम प्रभु! तूने मुझे दिव्य ध्यानोंकी अनंत धारा, अपनी शाश्वतता-की पूर्ण प्रशांति प्रदान की है, और सर्वसिद्धिदात्री हमारी भगवती माताके साथ मुझे एकात्म करके तूने यह वर प्रदान किया है कि मैं एक संग सचेतन होने और कार्य करनेकी उनकी परमा शक्तिमें हिस्सा बंटाऊं।

तेरी अनंतताके सर्वसमर्थ आनंदसे भरपूर होकर मैं तुझे नमस्कार करती हूं!

१० अक्तूबर, १९१४

परम सद्वस्तुके प्रति मेरी सत्ताका दान निरंतर नया-नया तथा अधिका-धिक परिपूर्ण होता रहे – उस परम सद्वस्तुके प्रति जो एक ओर तो अचिंत-नीय, अनिर्वचनीय है पर दूसरी ओर कालके अंदर अपने-आपको शाश्वत रूपसे अधिकाधिक पूर्ण और सर्वांगीण रूपसे प्रकाशित कर रही है। हे प्रभु! मैं तुझे नाम नहीं दे सकती, परंतु तेरी इच्छाको मैं परम नीरवता तथा

सर्वांगपूर्ण समर्पणके अंदर देखती हूं; तू मुझे समस्त पृथ्वीका प्रतिनिधि बन जाने दे जिसमें कि मेरी चेतनाके साथ युक्त होकर वह बिना कुछ बचाये तुझे अपने-आपको सर्मापित कर दे।

तू ही पूर्ण शांति और अनोखी सार्थकता है; विश्वमें जो कुछ अक्षय-भावसे कालके परे विद्यमान है और जो कुछ देश और कालकी चेतनामें अधिकाधिक होना चाहता है वह सब तू ही है। तू ही वह सब कुछ है जो अनंत स्थानके अंदर विद्यमान है; फिर जो कुछ होना चाहता है उसकी दिव्य आशा भी तू ही है, हे भगवान्! संसारको तू अपने अपूर्व वरदान प्रदान कर।

शांति! समस्त पृथ्वीपर शांति!!

११ अक्तूबर, १९१४

भला यह बोध निरंतर क्यों बना है जिसके साथ घबड़ाहट तथा प्रतीक्षाका भाव जुड़ा हुआ है? आधार संपूर्ण रूपसे तेरी ओर मुड़ गया है और दिव्य एकत्वके परमानंदमें निवास करता है; सब कुछ स्थिर, प्रशांत, समर्थ, चरम रूपमें शांतिमय हो गया है; विस्तारित क्षितिजके अंदर सब कुछ ज्योतिपूर्ण है, और, निश्चल-नीरव एकाग्रताके अंदर भक्ति-भाव और भी अधिक गभीर हो गया है। तब भला यह अनुभव क्या चीज है जो मानों आधारके ऊपर लाद दिया गया है और जिसने जड़के क्षेत्रमें अपर्याप्त रूपसे जागृत चेतनाके लिये दी गयी एक चेतावनीका रूप ले लिया है?

हे भगवान्! मैं यह पूछती तो हूं पर मैं जानती हूं कि यदि यह आवश्यक हो कि मैं इसका कारण जानूं तो तूने अवश्य ही उसे मुझे पहले ही बता दिया होगा और केवल मेरी अक्षमताने ही उसे जाननेमें मुझे बाधा दी होगी; अथवा, न तो यह मेरे लिये उपयोगी ही होगा न सहायक ही कि मैं उसे जानूं, और ऐसी हालतमें मेरे प्रश्नका कोई भी उत्तर नहीं आयगा...।

परंतु फिर भी शांति अधिकाधिक सर्वजयी होती जा रही है, और एक असीम सामंजस्यके अंदर सत्ता अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त कर रही है।

हे प्रभु! कितने आवेगके साथ मैं तुझे नमस्कार कर रही हूं!

१२ अक्तूबर, १९१४

हे प्रभुवर! यह उनका दर्द और उनका दुःख-कष्ट था जिसे मेरा शरीर अनुभव कर रहा था। भला कब यह अज्ञान विलीन होगा? कब इस दुःख-कष्टका अवसान होगा? हे नाथ! ऐसा वर दे कि विश्वका प्रत्येक अणु-परमाणु अपनी सत्ताके मूल तत्त्वके विषयमें सचेतन हो जाय और नष्ट हुए बिना रूपांतरित हो जाय; तुझे ढकनेवाला अहंजन्य अंधताका पर्दा हट जाय तथा तू सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्तिके अंदर जाज्वल्यमान हो उठे। सब कुछ तेरी अखंड निश्चल-नीरवताके अंदर शाश्वत रूपसे विद्यमान है; परंतु अनंत क्रमोन्नतिकी धारामें ही वह सब सर्वांगीण चेतनाके अंदर अभिव्यक्त होता है।

१४ अक्तूबर, १९१४

हे भगवती माता! तू हमारे साथ है; प्रत्येक दिन तू मुझे इस बातका प्रमाण देती है और, अधिकाधिक पूर्ण तथा निरवच्छिन्न एकात्मताके अंदर घनिष्ठ रूपमें युक्त होकर "हम" नवीनतर ज्योतियोंकी प्राप्तिके लिये एक महान् अभीप्सा रखते हुए विश्वके परम पतिकी ओर एवं 'उस'की ओर मुड़ती हैं जो एकदम परे है। समूची पृथ्वी एक रुग्ण शिशुकी तरह हमारी गोदमें है — उसे नीरोग करना है और उसकी दुर्बलताके कारण ही उसपर हमारा विशेष प्रेम है। और, शाश्वत संभूतिकी विशालताके ऊपर आंदोलित होते हुए, क्योंकि वह संभूति हम स्वयं ही हैं, हम उस अक्षर निश्चल-नीरवताके सनातनत्वका शांति और आनंदके साथ ध्यान करती हैं जहां सब कुछ पूर्ण चेतना और अपरिवर्तनीय सत्ताके अंदर नित्यसिद्ध है, जो एकदम परे विद्यमान समस्त अज्ञेयका अद्भुत द्वार है......।

तब पर्दा फट जाता है, अवर्णनीय महिमा उद्घाटित हो जाती है, और अनिर्वचनीय आलोक-छटासे संपूर्णतः ओत-प्रोत होकर हम संसारकी ओर वापस आती हैं और उसके लिये सुसमाचार लाती हैं।

हे प्रभु! तूने मुझे असीम आनंद प्रदान किया है...।

किस सत्ता, किस अवस्थामें ऐसी शक्ति है कि वह उसे मुझसे छीन सके?

१६ अक्तूबर, १९१४

तू चाहता है कि मैं एक ऐसी प्रणालिका बन जाऊं जो सर्वदा खुली रहे, निरंतर अधिकाधिक चौड़ी होती रहे, जिससे तेरी शक्तियां प्रचुर मात्रामें संसारमें प्रवाहित हो सकें....। हे प्रभु ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ! क्या एक परम आनंदमें विधृत तेरी इच्छा-शक्ति और तेरा ज्ञान ही मैं नहीं हूं ?

मेरी सत्ता विश्वकी तरह विशाल बननेके लिये अपरिमेय रूपसे बढ़ती जा रही है।

१७ अक्तूबर, १९१४

हे भगवती माता ! बाधाएं पार की जायंगी, शत्रु शांत किये जायंगे; तू अपने परम प्रेमके द्वारा समस्त पृथ्वीपर राज्य करेगी और मनुष्योंकी चेतनाएं तेरी प्रशांतिके स्पर्शसे आलोकित हो जायंगी।

बस यही है प्रतिश्रुति।

२३ अक्तूबर, १९१४

हे भगवान् ! संपूर्ण आधार तैयार है और तुझे पुकारता है जिसमें कि तू अपनी संपत्तिको अपने अधिकारमें ले ले; भला यंत्रका और क्या उपयोग है यदि उसका मालिक उसका व्यवहार न करना चाहे ? और तुम्हारी अभिव्यक्तिकी धारा चाहे जैसी भी क्यों न हो, वह अपनी अत्यंत सामान्य, अत्यंत नगण्य, अत्यंत स्थूल, बाह्यतः अत्यंत सीमित स्थितिसे लेकर अत्यंत विशाल, अत्यंत उज्ज्वल, अत्यंत शक्तिमान्, अत्यंत बुद्धिसंगत स्थितितक अच्छी ही होगी।

समूची सत्ता तैयार है और वह निष्क्रिय-नीरव होकर प्रतीक्षा कर रही है कि तू उसके द्वारा अभिव्यक्त होना पसंद करे।

२५ अक्तूबर, १९१४

हे भगवान्! तेरे प्रति होनेवाली मेरी अभीप्साने एक सुन्दर, सुसमंजस, पूर्ण विकसित तथा सुगंधित गुलाबके फूलका आकार धारण कर लिया है। मैं उसे दोनों हाथोंमें लेकर तुझे समर्पित करती हूं और तुझसे प्रार्थना करती हूं: यदि मेरी समझ सीमित हो तो उसे विस्तृत कर; यदि मेरा ज्ञान धूमिल हो तो उसे आलोकित कर; यदि मेरा हृदय तेजसे खाली हो तो उसे प्रज्ज्वलित कर; मेरा प्रेम मद्धिम हो तो उसे तीव्र बना; यदि मेरा अनुभव अज्ञान और अहंकारसे पूर्ण हो तो उसे सत्यके अंदर पूर्ण सचेतन बना; और यह 'मैं' जो इस प्रकार तुझसे प्रार्थना कर रहा है, यह, हे प्रभु, अन्य हजारों व्यक्तियोंके अंदर खोया हुआ कोई एक तुच्छ व्यक्ति नहीं है, यह तो समूची पृथ्वी है जो उत्साहसे भरे हुए एक प्रबल वेगके साथ तेरे लिये अभीप्सा कर रही है।

और ध्यानकी परिपूर्ण नीरवताके अंदर सब कुछ अनंततातक फैल रहा है; और निश्चल-नीरवताकी पूर्ण शांतिके अंदर तू अपनी ज्योतिकी जाज्वल्यमान महिमाके साथ प्रकट हो रहा है।

३ नवंबर, १९१४

बहुत दिनोंसे हे भगवान्, मेरी लेखनी मौन हो गयी है...। फिर भी तूने मुझे अविस्मरणीय प्रकाश देनेवाले क्षण प्रदान किये हैं, ऐसे क्षण प्रदान किये हैं जब कि दिव्यतम चेतना तथा स्थूलतम चेतनाके बीच पूर्ण एकत्व साधित हो गया था, जब कि व्यक्तिगत सत्ताका विश्वजननीके साथ तथा विश्वजननीका तेरे साथ इतना पूर्ण तादात्म्य साधित हो गया था कि व्यक्तिगत चेतनाने एक साथ ही अपनी निजी सत्ताको, समग्र विश्वके जीवनको तथा समस्त परिवर्तनके ऊर्ध्वमें स्थित तेरी शाश्वत सत्ताको देखा। उस समय आनंद एक अनिर्वचनीय और अनंत शांतिके अंदर पूरी मात्रामें विद्यमान था, चेतना ज्योतिर्मयी और अपरिमेय थी, जटिल और फिर भी अखंड तथा एक थी, सत्ता सर्वशक्तिमान्, मृत्युकी स्वामिनी थी। और अब यह कोई क्षणस्थायी अवस्था नहीं है, ऐसी अवस्था नहीं है जो एक लंबे ध्यानके बाद प्राप्त हुई हो और उत्पन्न होते-न-होते विलीन हो जाती हो; यह तो एक ऐसी अवस्था है जो अनंततासे भरे हुए लंबे-लंबे घंटोंतक बनी रह सकती

है, जो एक साथ ही क्षणिक और अनंत है, एक ऐसी अवस्था है जो इच्छानुसार पैदा की जा सकती है यानी, वह एक स्थायी अवस्था है जिसके साथ अत्यंत बाह्य चेतना भी संस्पर्श प्राप्त कर लेती है यदि अनुकूल परिस्थिति उसे मौका दे और वह किसी विशिष्ट बौद्धिक या शारीरिक प्रयोजनमें संलग्न न हो। सभी कर्मोंमें निरंतर, तेरी एक-सी उपस्थितिका बोध — सत् और असत् दोनों रूपोंमें बना रहता है, परंतु वह मानों होता है एक पतले परदेके पीछे जो कृत कर्मपर की जानेवाली अनिवार्य एकाग्रताके कारण उत्पन्न होता है; दूसरी ओर एकांतमें रहनेके समय, सत्ताको तुरंत ही एक आश्चर्यजनक ढंगका शक्तिशाली, स्वच्छ, शांत और दिव्य वातावरण घेर लेता है; सत्ता उसमें डूब जाती है, और फिर जीवन समुज्ज्वल हो उठता है और अपनी संपूर्ण प्रसारता, संपूर्ण बहुविधता तथा संपूर्ण महिमाके साथ चलने लगता है; भौतिक शरीर उस समय अपना गौरव प्राप्त कर लेता है, सुनम्य, बलिष्ठ और ओजस्वी हो उठता है; मन अत्यंत सुन्दर रूपमें सक्रिय बन जाता है पर साथ ही अपनी प्रशांत उज्ज्वलतामें बना रहता है तथा तेरी दिव्य इच्छाशक्तियोंको परिचालित और संचारित करता है; और समस्त आधार एक असीम आनंद, एक अपार प्रेम, एक परम शक्ति, एक पूर्ण ज्ञान, एक अनंत चेतनासे उल्लसित हो उठता है.....। बस, तू ही है, हे प्रभु, एकमात्र तू ही भौतिक वस्तुके छोटे-से-छोटे अणुतकमें सजीव हो रहा है।

इस तरह पृथ्वीपर होनेवाले तेरे कार्यका सुदृढ़ आधार तैयार किया जाता है, विशाल भवनकी नींव डाली जाती है; संसारके प्रत्येक कोनेमें सचेतन तथा निर्माणकारी चिंतनशक्तिके द्वारा तेरा एक-एक दिव्य पत्थर स्थापित किया जाता है; और सिद्धिका समय आनेपर, इस प्रकार तैयार की हुई पृथ्वी तेरी अभिनव और पूर्णतम अभिव्यक्तिके महामहिम मंदिरका स्वागत करनेके लिये प्रस्तुत रहेगी।

८ नवंबर, १९१४

तेरी पूर्ण ज्योतिके लिये हम तेरा आह्वान कर रहे हैं, हे भगवान्, हमारे अंदर अपनेको प्रकट करनेकी शक्ति जाग्रत् कर....।

आधारके अंदर सब कुछ मूक है मानों किसी निर्जन गुहामें हो; परंतु नीरवता और अंधकारके गर्भमें ही तो बल रहा है प्रदीप जो कभी बुझाया नहीं जा सकता, जल रही है तीव्र अभीप्साकी अग्नि — तुझे ही

जाननेके लिये और समग्र रूपमें तुझे ही जीवनमें व्यक्त करनेके लिये।

दिनोंके बाद रातें आती हैं, निरंतर अथक भावसे एकके बाद एक उषाएं आती रहती हैं, पर सर्वदा ही सुरभित अग्निशिखा ऊपर उठती रहती है जिसे कोई भी तूफानी हवा झिलमिला नहीं सकती। वह अधिकाधिक ऊपर-की ओर ही उठती जाती है; और एक दिन वह उस गुफाके पास पहुंच जाती है जो अभी भी बंद है, उस अंतिम बाधाके सम्मुखीन होती है जो मिलन नहीं होने देती। परंतु अग्निशिखा इतनी शुद्ध, इतनी सीधी और इतनी ऊंची होती है कि बाधा एकाएक विलीन हो जाती है ...।

फिर तू आविर्भूत होता है अपना परिपूर्ण ज्योतिर्मय रूप लेकर, अपनी अनंत महिमाकी चकाचौंध करनेवाली शक्तिके साथ; तेरे स्पर्शसे वह अग्नि-शिखा ज्योतिके एक ऐसे स्तंभमें परिणत हो जाती है जो अंधकारको सदाके लिये दूर कर देता है।

और महामंत्र उछल पड़ता है, पूर्ण रूपसे सब कुछ प्रगट कर देता है।

९ नवंबर, १९१४

हे भगवान्! हम पूर्ण चेतना प्राप्त करनेके लिये अभीप्सा करते हैं...।

समस्त आधार सख्त बंधे हुए एक ऐसे तोड़ेकी तरह संहत हो रहा है जो विभिन्न पर पूर्णतः सुसमंजस फूलोंसे बना हो। संकल्प-शक्ति ही वह हाथ बनी थी जिसने फूलोंको एकत्र किया था और वह सूत बनी थी जिसने तोड़ेको बांधा था और अब फिर वह संकल्प-शक्ति ही उसे एक सु-वासित चढ़ावेके रूपमें लेकर तेरे सामने प्रसारित हो रही है। वह अश्रांत, अक्लांत भावसे तेरी ओर फैली हुई है।

१० नवंबर, १९१४

हे प्रभु! तेरी उपस्थिति मेरे अंदर एक अचल पर्वतकी तरह प्रतिष्ठित हो गयी है और समूचा आधार इसलिये उल्लसित हो रहा है कि तनिक भी बचाये बिना, सर्वांगीण और संपूर्ण आत्म-समर्पणके द्वारा वह तेरा हो गया है।

हे निश्चल प्रशांत चैतन्य! तू एक सनातन रहस्यमयी सत्ता (sphinx)

के रूपमें विश्वकी सीमापर पहरा दे रहा है। और फिर भी कुछ लोगोंको तू अपना रहस्य बता देता है।

वे तेरी परम इच्छा-शक्ति बन सकते हैं जो बिना पक्षपातके चुनाव करती और बिना कामनाके कार्य करती है।

१५ नवंबर, १९१४

एकमात्र महत्वपूर्ण वस्तु है वह लक्ष्य जिसे प्राप्त करना है ; पथ उतना महत्व नहीं रखता, और बहुधा यही अच्छा होता है कि पहलेसे उसे जाना ही न जाय। परंतु यह हमें जानना ही चाहिये कि पृथ्वीपर भागवत कार्य करनेका समय वास्तवमें आया है या नहीं और जिस कार्यका निर्णय चेतना-की गहराइयोंमें किया गया है वह संसिद्ध हो सकता है या नहीं।

उसके विषयमें तो, हे प्रभुवर, तूने हमें आश्वासन दे दिया है, ऐसा आश्वासन दिया है जिसके साथ प्रकृति माताकी, विश्व-चेतनाकी सबसे अधिक शक्तिशाली प्रतिज्ञा भी लगी हुई है ...। इस तरह हमें इस बातका विश्वास हो गया है कि जो कुछ होना चाहिये वह अवश्य होगा और हमारे इन वर्तमान व्यक्तिगत आधारोंको इस महिमामयी विजयमें, इस नवीन अभिव्यक्तिमें सहयोग देनेके लिये सचमुच बुलाया गया है। भला इससे अधिक हमें और क्या जाननेकी जरूरत है ? कुछ भी नहीं। क्या यह संभव नहीं कि हम इस घोर युद्धकी ओर, उन विरोधी शक्तियोंके समूहकी ओर, जो बिना जाने ही अंतमें तेरी योजनाकी संसिद्धिमें सहायक होती हैं, अत्यंत महान् विश्वासके साथ ताक सकें ? यदि हम इस कारण चिंतित हों कि हमें यह नहीं बताया गया है कि किस तरह वे तेरी योजनामें सहायक होती हैं और किस तरीकेसे तू इन सभी बाधाओंपर विजय प्राप्त करेगा तो यह हमारी भूल होगी; क्योंकि तेरी विजय इतनी सर्वांगपूर्ण है कि तेरे विरुद्ध उठनेवाली प्रत्येक बाधा, प्रत्येक अशुभ इच्छा, प्रत्येक घृणा ही और भी अधिक विशाल, और भी अधिक पूरी विजयकी आशा बन जाती है।

बाधाओंकी पूर्ण संख्याके द्वारा हम यह माप सकते हैं कि तेरी विशुद्ध शक्तियोंसे जो कुछ पृथ्वीपर अभिव्यक्त होने जा रहा है उसकी क्रियाको तू कितनी प्रसारता देना चाहता है। जो कुछ बाधा देता है वह ठीक वही चीज होता है जिसपर कार्य करना इन शक्तियोंका मुख्य व्रत होता है। सबसे प्रचंड घृणा-भाव ही वह चीज है जिसे स्पर्श करना होगा और ज्योतिर्मय शांतिमें परिवर्तित कर देना होगा।

जिस मानवीय व्यक्तित्वको तूने अपने कार्यके केंद्र और अपने मध्यस्थके रूपमें वरण किया है उसे यदि थोड़ी-सी बाधाओं, सामान्य-से मतभेदों तथा अत्यल्प घृणा-भावका ही सामना करना पड़े तो इसका मतलब है कि तूने उसे एक सीमित और कम जोरदार कार्यका भार सौंपा है। वह तो केवल पहले-से तैयार सदिच्छासंपन्न व्यक्तियोंकी संकीर्ण मंडलीके अंदर ही कार्य करेगा न कि अस्तव्यस्त और विश्रृंखल प्राकृत मनुष्योंके समूहपर।

हे परमेश्वर! ऐसी कृपा कर कि जो ज्ञान तूने मुझे दिया है उसमें हम सब भाग ले सकें जिसमें कि हमारे हृदयोंमें दृढ़ विश्वासके कारण शांति-का राज्य छा जाय, और हम तेरे चरम निश्चयपर अटल रहकर उन्नत मस्तकके साथ उस सबका सामना कर सकें जो बिना जाने-बूझे रूपांतरणकी ओर आकृष्ट होकर एक अंधे अज्ञानके अंदर कूद पड़ता है और यह समझता है कि वह रूपांतरकारी दिव्य प्रेमको नष्ट कर सकता है।

१६ नवंबर, १९१४

तू समुद्रपर चलनेवाली हवाके समान है और जहाजको तबतक किनारे-की ओर ढकेलता है जबतक कि लंबी यात्रा करनेके लिये आवश्यक सभी माल उसमें लद न जाय। तू बिलकुल नहीं चाहता कि हम असावधानीके साथ जहाजपर सवार हों: तेरे सेवकोंको तो सभी संभाव्य घटनाओंके लिये तैयार रहना चाहिये, उनमें सभी मांगों, सभी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेकी क्षमता होनी चाहिये।

१७ नवंबर, १९१४

ओह, कितना अधिक धैर्य तुझमें होगा, हे महामहिम माता! जब-जब तू भूलोंको सुधारनेके लिये, अपनी ज्ञानसंबंधी भ्रांतिके द्वारा पथभ्रष्ट व्यक्तिकी अनिश्चित अग्रगतिको और भी तेज बनानेके लिये, सुनिश्चित पथ दिखाने तथा उसपर उसे बिना ठोकर खाये चलनेकी शक्ति देनेके लिये अभिव्यक्त होती है तब-तब, प्रायः सर्वदा ही, वह एक छिद्रान्वेषी और अदूरदर्शी परामर्शदात्री समझकर तुझे दूर ढकेल देता है। सिद्धांतका जहांतक प्रश्न है, वह एक अस्पष्ट और असंलग्न प्रेमके साथ तुझे प्यार

करना तो चाहता है, परंतु उसका घमंडी मन तुझपर निर्भर करना अस्वीकार कर देता है और तेरे पथ-प्रदर्शनमें आगे बढ़नेके बदले अकेले भटकना ही अधिक पसंद करता है।

और तू, हमेशा हंसती हुई, अपनी अथक करुणावश, उसके उत्तरमें कहती है: "यह जो बुद्धि-वृत्ति है, जो मनुष्यको दांभिक बनाती और भूल-भ्रांतिमें ले जाती है, वह यदि एक बार शुद्ध और प्रकाशपूर्ण हो जाय तो वह उसे बहुत दूर, विश्व-प्रकृतिसे भी बहुत ऊपर उठा ले जा सकती है, समस्त अभिव्यक्तिके परे जो हम सबके परम प्रभु हैं, उनके साथ प्रत्यक्ष और सचेतन संयोग स्थापित करा सकती है। यह विभक्त करनेवाली बुद्धि, जो उसे मुझसे अलग हटा देती है, उसे ऐसी योग्यता भी प्रदान करती है कि वह शीघ्रताके साथ शिखरके बाद शिखर पार करता हुआ ऊपर उठ जाता है, उस विश्वका समस्त भार उसकी अग्रगतिको रोकने या अटकानेमें असमर्थ होता है जो इतना विशाल और इतना जटिल होता है कि वह उतनी तेजीसे आरोहण नहीं कर सकता।"

हे भगवती माता! सर्वदा ही तेरा वचन आश्वासन और आशीर्वाद प्रदान करता है, शांति और प्रकाश देता है, और तेरा उदार हाथ उस पर्देकी एक तहको खोल देता है जो अनंत ज्ञानको ढक रखता है।

कितनी शांत, महान् और शुद्ध है तेरे पूर्ण ध्यानकी दीप्ति!

२० नवंबर, १९१४

हे भगवान्! मैं सर्वदा तेरे सम्मुख एकदम सफेद कागजका एक पृष्ठ बनी रहना चाहती हूं, जिसमें कि बिना किसी कठिनाईके और बिना किसी मिलावटके तेरी इच्छा मेरे अंदर अंकित हो जाय।

अतीत अनुभूतियोंकी स्मृतितक कभी-कभी मनमेंसे पुंछ जानी चाहिये जिसमें कि शाश्वत नवनिर्माणके इस कार्यमें वे बाधा न डालें; एकमात्र यह कार्य ही तो इस सापेक्ष जगत्में तुम्हारी पूर्ण अभिव्यक्ति होनेमें सहायता करता है।

बहुधा जो कुछ पहले हुआ था उससे हम चिपक जाते हैं, हमें भय होता है कि कहीं हम किसी बहुमूल्य अनुभूतिका फल न खो बैठें, कहीं किसी विशाल और उच्च चेतनाको न छोड़ बैठें, कहीं किसी निम्नतर स्थितिमें न जा गिरें।

फिर भी जो तेरा हो चुका है उसे किस बातका भय हो सकता है? क्या वह खुले हृदय और उज्ज्वल मुख-मंडलके साथ उस पथपर अग्रसर नहीं हो सकता जो तूने उसके लिये निर्धारित किया है, भले ही वह पथ चाहे जो भी क्यों न हो, यहांतक कि वह उसकी सीमित बुद्धिके लिये एकदम अबोध्य ही क्यों न हो?

हे नाथ! विचारके इन पुराने ढांचोंको तोड़ डाल, अतीत अनुभूतियोंको पोंछ डाल, सज्ञान समन्वयको नष्ट कर डाल यदि तू इसे आवश्यक समझे, जिसमें कि तेरा कार्य अधिकाधिक अच्छे रूपमें संपन्न हो, पृथ्वीपर तेरी सेवा सर्वांगपूर्ण हो उठे।

२१ नवंबर, १९१४

हे प्रभु! तूने मुझे अपनी शक्ति प्रदान की है जिसमें कि तेरी शांति और आनंदका राज्य इस जगत्में स्थापित हो।

और अब यह सत्ता संपूर्ण पृथ्वीको लपेट लेनेवाले शांतिके एक आलिंगनके सिवा, सभी चोजोंको डुबा देनेवाले आनंदके एक सागरके सिवा और कुछ नहीं है।

ऐ घृणासे भरा हुआ मनुष्य! तेरे हृदयसे हिंसा वैसे ही धुल जायगी जैसे समुद्र बालूपर पड़े हुए पदचिह्नोंको धो डालता है।

ऐ प्रतिशोधपर जीनेवाले मनुष्यो! तुम्हारे हृदयोंमें शांति वैसे ही प्रवेश करेगी जैसे अपनी माताकी गोदमें झूलते हुए बालककी आत्मामें वह प्रवेश करती है।

कारण, विश्व-जननीने पृथ्वीकी ओर अपनी दृष्टि फेरी है और उसे आशीर्वाद दिया है।

४ दिसंबर, १९१४

बहुत दिनोंके मौनके बाद, बाहरी कार्यमें संपूर्ण रूपसे व्यस्त होनेपर भी, आखिरकार, हे भगवान्, मुझे इन पृष्ठोंको फिरसे हाथमें लेने और तेरे साथ इस वार्तालापको, जो मुझे इतना प्रिय है, फिरसे जारी करनेका अवसर दिया गया है ...।

परंतु तूने मेरी सभी आदतोंको तोड़ दिया है, क्योंकि तू मुझे

सब प्रकारकी मानसिक रचनासे मुक्त होनेके लिये तैयार करना चाहता है। कुछ मानसिक रचनाएं जो विशेष रूपसे अधिक शक्तिशाली अथवा हमारे स्वभावके अधिक अनुकूल होती हैं, वे चरम अनुभूतियोंकी ओर ले जानेवाली विश्वसनीय पथ-प्रदर्शिकाएं होती हैं। पर एक बार जब अनुभूतियां हो जाती हैं तब तू यह चाहता है कि वे अपने-आपमें हर तरहकी मानसिक रचनाकी गुलामीसे, भले ही वह बहुत ऊंची या बहुत शुद्ध ही क्यों न हो, मुक्त हो जायं, जिसमें कि वे सबसे अधिक सत्य, अर्थात् उस अनुभूतिसे सबसे अधिक मेल खानेवाले नवीन आकारमें अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके योग्य बन सकें।

और फिर तूने मेरे चिंतनके सभी रूपोंको भंग कर दिया है और अब मैं सब प्रकारकी मानसिक रचनासे खाली होकर अपनेको तेरे सम्मुख उपस्थित पाती हूं और इस विषयमें मैं उतनी ही अज्ञ हूं जितना कि ठीक अभी-अभी उत्पन्न हुआ एक बालक। और इस खालीपनके अंधकारमें ही फिर प्राप्त होती है किसी ऐसी वस्तुकी सर्वोच्च शांति जो शब्दोंमें तो बिलकुल ही व्यक्त नहीं होती पर जो अस्तित्व रखती है। और मैं बिना अधीरता और भयके प्रतीक्षा कर रही हूं जिसमें कि तू स्वयं अतल गहराइयोंके हृदय-स्थलसे उस बौद्धिक आकारकी फिरसे रचना करे जो आत्मसमर्पण तथा ज्वलंत निष्ठासे गठित इस यंत्रके अंदर तुझे अभि-व्यक्त करनेके लिये अत्यंत अनुकूल प्रतीत हो।

भावी सिद्धियोंकी आशासे भरी हुई इस विराट् रजनीके सम्मुख मैं अनुभव करती हूं — पहले कभी मैंने इतना अधिक अनुभव नहीं किया कि मैं मुक्त और विशाल हूं — अनंत रूपमें...।

हे भगवान् ! तूने जो मेरे ऊपर कृपा दिखायी है, तूने जो मुझे अपने सामने एक सद्यःउत्पन्न शिशुके जैसा बनने दिया है उसके लिये मैं परम आनंदके साथ तेरे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रही हूं!

१० दिसंबर, १९१४

हे प्रभु! सुन... एक प्रगाढ़ एकाग्रताकी नीरवतामें मेरी प्रार्थना तीव्र होकर तेरी ओर ऊपर उठ रही है।

क्या विचारके किसी रूपके साथ, किसी मानसिक रचनाके साथ, चाहे जितनी भी विशाल और शक्तिशालिनी वह क्यों न हो, इस हदतक अपने-

आपको एक कर लेना कि वही हमारे आधारका, हमारे अनुभव और हमारे क्रिया-कलापका मुख्य केंद्र बन जाय, एक महान् मूर्खता नहीं है? हम सत्यके विषयमें जो कुछ सोच सकते या कह सकते हैं, सत्य चिरदिन उस सबके परे ही रहता है। इस सत्यके साथ सबसे अधिक मेल खानेवाली, अत्यंत अनुकूल कोई सत्यकी संज्ञा ढूंढ़ निकालनेकी चेष्टा करना स्वयं अपने विकासकी तथा समूची मानवजातिके विकासकी परिपूर्णताके लिये निश्चय ही एक उपयोगी और यहांतक कि अत्यंत आवश्यक कार्य है; परंतु इस संज्ञाके सामने हमें सर्वदा अपनेको मुक्त अनुभव करना चाहिये, अपनी चेतनाके केंद्रको उससे ऊपर उठाये रखना चाहिये, उस सद्वस्तुमें उठाये रखना चाहिये जो, किसी मनोरचित सूत्रकी महत्ता, सुन्दरता और पूर्णताके होते हुए भी, सर्वदा ही सब प्रकारके सूत्रोंको अतिक्रम कर जाती है। हम इस विश्वके विषयमें जो कुछ सोचते हैं यह ठीक वैसा ही नहीं है। इसके विषयमें हम जो कुछ धारणा बनाते हैं उसका महत्त्व इस बातपर निर्भर करता है कि कर्मविषयक हमारे मनोभावपर उसका क्या परिणाम होता है। और यह मनोभाव एक ऐसी अंतःप्रेरणापर निर्भर कर सकता है जो किसी मानसिक रचनासे, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, आनेवाली अंतःप्रेरणासे बहुत अधिक गभीर, वास्तव और अपरिवर्तनशील हो। पहले शाश्वत सत्यकी जो सब संज्ञाएं प्रयुक्त हो चुकी हैं उन सबसे कहीं अधिक पूर्ण, अधिक उच्च और अधिक यथार्थ संज्ञाके द्वारा मनुष्योंके लिये उसे अभिव्यक्त करनेकी इच्छा अपने अंदर अनुभव करना अच्छा ही है; पर शर्त यह है कि इस कार्यके साथ अपने "मैं" को इस हदतक एकाकार न कर लिया जाय कि उसका गुलाम बनकर उसके सामने अपनी पूरी स्वतंत्रता एवं संपूर्ण आत्म-संयमको ही खो दिया जाय। यह एक वृत्ति है और इससे अधिक और कुछ नहीं है, पार्थिव दृष्टिसे भले ही इसका चाहे जो भी मूल्य क्यों न हो; परंतु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि अन्य सभी वृत्तियोंकी तरह यह भी आपेक्षिक है और इसे हमें अपनी गभीर शांतिको तथा उस अक्षर स्थिरताको विक्षुब्ध नहीं करने देना चाहिये जिसकी एकमात्र सहायतासे ही भागवत शक्तियां बिना विकृत हुए हमारे द्वारा अभिव्यक्त होती हैं।

हे भगवान्! मेरी प्रार्थना कोई आकार नहीं ले रही है, पर तू उसे सुन रहा है।

१२ दिसंबर, १९१४

प्रत्येक मुहूर्त हमें यह जानना चाहिये कि सब कुछ पानेके लिये सब कुछ कैसे खोया जाता है, एक बृहत्तर परिपूर्णताके अंदर पुनः जन्म प्राप्त करनेके लिये अपने अतीतको किस तरह एक मृत शरीरकी नाईं झाड़ फेंका जाता है...। आंतर सत्ताकी सतत अभीप्सा इसी भांति प्रकट हो रही है और वह तेरी ओर मुड़कर निरंतर शुद्धसे शुद्धतर बनते हुए एक आईने-की तरह तुझे प्रतिफलित करना चाहती है; और तेरा अक्षर आनंद उसके अंदर अतुलनीय वेगवाली प्रगतिकी एक विवशकारी शक्तिके रूपमें परिणत हो रहा है; और यह शक्ति अत्यंत बाह्य सत्तामें एक ऐसी स्थिर और सुनिश्चित संकल्प-शक्तिका रूप ले रही है जिसे कोई बाधा जीत नहीं सकती।

हे मेरे मालिक! कितने तीव्र प्रेमके साथ मैं तेरी सेविका बन रही हूं! कितने शुद्ध, अचल-अटल और अनंत आनंदके साथ मैं उन सब चीजों-में स्वयं तू ही हो रही हूं जो रूपगत समस्त सत्तासे ऊपर हैं।

और ये दोनों चेतनाएं एक अद्वितीय परिपूर्णताके अंदर संयुक्त हो रही हैं।

१५ दिसंबर, १९१४

हे प्रभु! तूने शक्तिके अंदर मुझे शांति प्रदान की है, कर्मके अंदर आत्मप्रसाद तथा समस्त परिस्थितियोंके बीच अविचल सुख प्रदान किया है।

२२ दिसंबर, १९१४

बस, सत्यके लिये ही, हे प्रभु, मैं तुझसे याचना करती हूं।

इस मनको फिरसे सक्रिय बना जिसने इसलिये मौन धारण कर लिया था कि वह तुझे समर्पित हो सके; तू इसे यह ज्ञान प्रदान कर कि तेरी इच्छा क्या है।

यह मन ग्रहणशील था, और सभी संभावनाओंको इसने अपने अंदर आकार ग्रहण करने दिया; फिर उनकी परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियोंके द्वंद्वको

बन्द करनेके लिये इसने इन दुःखदायी अतिथियोंको आने देना अस्वीकार कर दिया और कहा: "सक्रिय भावसे जीवन यापन करनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं; यह जाननेकी कोई जरूरत नहीं कि तेरी इच्छा क्या है, हे प्रभु, बशर्त्ते कि तेरी शाश्वत ज्योतिकी किरणको बिना विकृत किये मैं अपने अंदरसे गुजरने दूं।" बस, ऐसा ही हुआ और इच्छा-शक्ति बन गयी अनुगत, ऋजु, सुनिश्चित और सबल। परंतु अब तू चाहता है कि मन जाने, और तूने उससे कहा है: "जाग और सत्यका ज्ञान प्राप्त कर।" उसके बाद मनने आनंदपूर्वक उसका उत्तर दिया और अब वह परम सत्यके जाज्वल्यमान सूर्यकी ओर मुड़ रहा है और उसे अभिव्यक्त करनेके लिये अपने अंदर उसका आह्वान कर रहा है।

तू चाहता है कि एक-एक करके सभी बाधाओंको तू भंग कर दे और आधार अभिव्यक्तिकी सभी संभावनाओंके साथ अपनी सर्वांगीण परिपूर्णता-को प्राप्त करे।

हे भगवान्! पृथ्वीकी सभी आकांक्षाएं मेरे अंदर एकत्र हों जिसमें कि तू उनपर दृष्टिपात कर सके और तेरी इच्छा-शक्ति ठीक-ठीक, सुस्पष्ट और सुनिश्चित ढंगसे, छोटे-से-छोटे ब्योरेकी बातमें और फिर एक संग संपूर्णके ऊपर अपनेको प्रयुक्त कर सके।

इस तरह अपेक्षित दिन शीघ्र ही समीप आ जायेंगे ...।

समस्त आधार एक तीव्र आनंदसे और एक अतुलनीय परिपूर्णतासे उत्फुल्ल हो रहा है।

२ जनवरी, १९१५

कोई भी विचार, वह चाहे जितना भी शक्तिशाली और गभीर क्यों न हो, जब बार-बार दुहराया जाता है, निरंतर प्रकट किया जाता है तब वह निष्प्राण, नीरस और मूल्यहीन हो जाता है। इस तरह अत्यंत ऊंची धारणाएं भी कुछ समयके बाद मुरझा जाती हैं और जो बुद्धि अबतक सर्वोत्कृष्ट कल्पनाओंमें रस लेती थी वह एकाएक अपनी समस्त युक्तियों तथा अपने संपूर्ण तत्त्वज्ञानका त्याग करनेकी दुर्निवार आवश्यकता अनुभव करती है; वह जीवनको एक बालककी तरह आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखना चाहती है, अब वह अपनी पुरानी विज्ञताको तनिक भी याद रखना नहीं चाहती, भले वह कोई परम दिव्य विज्ञता ही क्यों न हो....।

यह कहना ठीक ही है कि समयके विभाजन एकदम कृत्रिम हैं, वर्ष बदलनेकी निश्चित तिथि विभिन्न देशोंकी अक्षांश रेखाओं, जलवायु तथा रीति-नीतिके अनुसार अलग-अलग होती है और वह पूर्णतः रूढ़िगत होती है। यह मनका वह भाव है जो मनुष्यकी निर्बुद्धिता देखकर हंसता है और गभीरतम सत्योंके द्वारा परिचालित होना चाहता है। और फिर अकस्मात् स्वयं यह मन ही इन सत्योंको ठीक-ठीक जीवनमें व्यक्त करनेकी अपनी असमर्थताको अनुभव करता है तथा इस प्रकारकी अपनी संपूर्ण विज्ञताको त्यागकर वह हृदयके गानको ऊपर उठनेका मौका देता है, उस हृदयके गानको जो अभीप्सा करता है और जिसके लिये प्रत्येक अवस्था ही होती है गभीरतर, विशालतर और तीव्रतर अभीप्साका एक सुयोग . . . पाश्चात्य नव-वर्ष आरंभ हो रहा है : क्यों न हम इस सुयोगका लाभ उठायें और एक नयी लगनके साथ यह इच्छा करें कि यह प्रतीक एक सत्यमें परिणत हो जाय तथा जो सब चीजें दैन्यपूर्ण थीं उनके स्थानमें वे सब चीजें आ जायं जो ऐश्वर्यपूर्ण हों? . . .

हम सर्वदा यह विश्वास करते हैं कि हम तेरी परिभाषा दे सकते हैं, तुझे अपने मानसिक सूत्रोंके द्वारा बांध सकते हैं; परंतु वे सब चाहे जितने भी व्यापक, जितने भी बहुमुखी, जितने भी समन्वयात्मक क्यों न हों, तू चिरकाल अनिर्वचनीय ही बना रह जायगा, यहांतक कि उस व्यक्तिके लिये भी अनिर्वचनीय रह जायगा जो तुझे जानता है और तुझमें निवास करता है . . .। कारण, शब्दोंमें तुझे व्यक्त करनेकी क्षमता न होनेपर भी तेरे अंदर निवास किया जा सकता है; तेरी परिभाषा देने या वाणीद्वारा तेरा वर्णन करनेकी शक्तिके बिना भी तेरी अनंतताके साथ एक हुआ जा सकता है और उसे उपलब्ध किया जा सकता है; और तू सदा ही शाश्वत रहस्य बना रहेगा, हमारे समस्त आश्चर्य और विस्मयको जगानेवाला बना रहेगा; और सो भी केवल अपने अचिंत्य तथा साथ ही अज्ञेय परात्पर रूपमें ही नहीं, वरन् अपनी विश्वगत अभिव्यक्तिमें भी, उन सब चीजोंमें भी जो कि हम स्वयं अपने सर्वांगपूर्ण रूपमें हैं। निरंतर ही विचारोंके रूप बदलते रहेंगे और क्रमशः अधिक शुद्ध, अधिक उच्च और अधिक व्यापक आकार लेते रहेंगे; परंतु उनमेंसे कोई भी विचार कभी इतना अधिक पर्याप्त नहीं समझा जायगा जो अकेले यह समझने-योग्य धारणा दे सके कि तू क्या है। प्रत्येक नयी घटना एक नयी समस्या बन जायगी जो अपनेसे पहलेकी सभी समस्याओंसे कहीं अधिक आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण होगी। फिर भी, अपनी अज्ञता और अपनी असमर्थता देखते हुए भी मानस-सत्ता उज्ज्वल, प्रसन्न और प्रशांत बनी रहती है मानों उसे परम ज्ञान प्राप्त हो गया हो :

वह ज्ञान जिसका मतलब है तू हो जाना, बहुल रूपसे, अनन्य रूपसे, अनंत रूपसे, अत्यंत सहज रूपसे तू हो जाना।

११ जनवरी, १९१५

पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक, मानस-सत्ताकी अभीप्सा महान् उत्साहके साथ तेरी ओर ऊपर उठ रही है।...अनंतता और शाश्वतताका बोध निरंतर बना हुआ है। परंतु ऐसा लगता है मानों तूने समस्त पवित्र आनंद, समस्त आध्यात्मिक परमोल्लाससे वंचित करने और अत्यंत निबिड़ भौतिक परिस्थितियोंके अंदर मुझे डुबा देनेकी इच्छा की थी। परंतु, हे भगवान्, तेरा पूर्ण आनंद सर्वत्र विद्यमान है, और जो महत् दान तूने मुझे दिया है उसे कोई भी चीज मुझसे छीन नहीं सकती; प्रत्येक स्थान और प्रत्येक अवस्थामें वह मेरे साथ है, वह तो 'मैं' ही है जैसे कि मैं 'तू' हूं। किंतु जो कुछ होना चाहिये उसके मुकाबले तो यह कुछ भी नहीं है। तू चाहता है कि इस भाराक्रांत और तमसावृत जड़के मर्मस्थलसे मैं तेरे प्रेम और तेरे प्रकाशका ज्वालामुखी पर्वत उभाड़ दूं; तू चाहता है कि भाषाके सभी पुराने नियमोंको भंग कर उत्थित हो एक वाणी जो तुझे व्यक्त करने-के योग्य हो और जिसे कभी किसीने न सुना हो; तू चाहता है कि नीचेकी सबसे तुच्छ वस्तुओं तथा ऊपरकी सबसे बृहत् और सबसे महान् वस्तुओं-के बीच सर्वांगपूर्ण मिलन साधित हो जाय; और यही कारण है कि, हे नाथ, मुझे समस्त शुद्ध आनंद और समस्त आध्यात्मिक परमोल्लाससे वंचित कर, एकांत-भावसे तेरे ही ऊपर एकाग्रचित्त होनेकी मेरी संपूर्ण स्वतंत्रता छीनकर तूने मुझसे कहा है, "साधारण जीवोंके बीच एक साधारण मनुष्य-की तरह तू काम कर; जो कुछ अभिव्यक्त हो रहा है उसके अंदर वे जो कुछ हैं उससे अधिक तू कुछ भी बनना मत सीख; उनके जीवनकी संपूर्ण धाराके साथ तू संयुक्त हो जा; क्योंकि जो कुछ वे जानते हैं और जो कुछ वे हैं, उस सबके परे, तू अपने अंदर उस शाश्वत ज्योतिकी मशाल वहन करती है जो कभी झिलमिलाती नहीं, और उनके साथ संयुक्त होकर ही तू इस ज्योतिको उनके बीच ले जा सकेगी। जबतक यह ज्योति तेरे पाससे चारों ओर फैलती है तबतक क्या इसका उपभोग करनेकी तुझे कोई आवश्यकता है? जबतक तू मेरा प्रेम मनुष्योंको प्रदान करती है तबतक क्या यह आवश्यक है कि तू उस प्रेमको अपने अंदर स्पंदित होता

हुआ अनुभव करे? जब तू मनुष्योंके बीच मेरी उपस्थितिके यंत्रके रूपमें कार्य करती है तब क्या संपूर्ण रूपसे उसके आनंदका उपभोग करना तेरे लिये जरूरी है?"

हे प्रभु! सब प्रकारसे तेरी इच्छा पूर्ण हो!
तेरी इच्छा ही है मेरा सुख और मेरे जीवनका विधान।

१७ जनवरी, १९१५

अब, हे परमेश्वर, चीजें बदल गयी हैं। विश्राम और तैयारीका काल समाप्त हो गया है। तूने इच्छा की है कि मैं निष्क्रिय और ध्यान-परायण सेविकाके बदले सक्रिय और सिद्धि लानेवाली सेविका बनूं; तूने इच्छा की है कि सहर्ष स्वीकृति सहर्ष संग्राममें परिणत हो जाय, और वर्तमान समयमें जो तेरा विधान अत्यंत शुद्ध तथा अत्यंत उच्च रूप ग्रहण करता जा रहा है उसकी परिपूर्णतामें जो कुछ इस जगत्में बाधा उत्पन्न कर रहा है उसके विरुद्ध मैं सतत और वीरतापूर्वक युद्ध करूं तथा उसके साथ-ही-साथ मैं उस शांत और अपरिवर्तनीय समताको प्राप्त करूं जो वर्तमान कालमें पूरा होनेवाले तेरे विधानके प्रति समर्पण करनेपर प्राप्त होती है, अर्थात् उस समय प्राप्त होती है जब हम उस विधानका विरोध करनेवाली चीजोंके साथ सीधे संघर्ष नहीं करते, प्रत्येक परिस्थितिसे अधिक-से-अधिक लाभ उठाते हैं, तथा संसर्ग, उदाहरण तथा धीमे संक्रमणके द्वारा कार्य करते हैं।

एक आंशिक और सीमित संग्राममें, पर जो महान् पृथ्वीव्यापी संग्राम-का प्रतिनिधि है उसमें, तू मेरी शक्ति, मेरी दृढ़ता और मेरे साहसकी परीक्षा कर रहा है, जिसमें कि तू देख सके कि मैं सचमुच तेरी सेविका बन सकती हूं या नहीं। यदि युद्धका परिणाम यह सूचित करे कि मैं तेरे पुनर्जीवनदायी कर्मका यंत्र बननेके योग्य हूं तो तू कर्मका क्षेत्र प्रसारित कर देगा। और तू मुझसे जो कुछ आशा करता है उसकी ऊंचाईतक यदि मैं सर्वदा ऊपर उठ सकूं तो, हे नाथ, एक दिन ऐसा आयेगा जब तू इस पृथ्वीपर उतर आयेगा और समूची पृथ्वी तेरे विरुद्ध उठ खड़ी होगी। परंतु तू पृथ्वीको अपनी भुजाओंमें उठा लेगा और पृथ्वी रूपांतरित हो जायगी।

१८ जनवरी, १९१५

हे भगवान्! मेरी प्रार्थना सुन...।

मेरे अंदर तू सर्वशक्तिमान् है, मेरे भाग्यका एकछत्र स्वामी, मेरे जीवनका परिचालक, सभी बाधाओंका विजेता और मनकी सभी पूर्वनिर्धारित इच्छाओं तथा सुनिश्चित धारणाओंका ध्वंसकर्ता है। संभवतः बाहर भी सर्वशक्तिमान् होनेके लिये संगठन करनेवाले और कर्मकी पद्धतियोंका निर्माण-करनेवाले मेरे मनकी मध्यस्थताकी तुझे आवश्यकता है; पर तू यदि अपने यंत्रको पूर्ण बनानेमें समर्थ हो तो फिर यह संदेह ही कैसे हो सकता है कि तेरा कार्य पूरा होगा या नहीं! जो अशुभ छायाएं विपरीत सूचनाएं देती हैं उन सबको बहुत दूर भगा देना होगा, और, तेरी अनंत करुणाके प्रति अटल विश्वाससे भरपूर होकर मैं तुझे यह प्रार्थना निवेदन करती हूं:

अपने शत्रुओंको मित्र-रूपमें परिणत कर दे,
अंधकारको ज्योतिमें परिवर्तित कर दे।

इस वीरतापूर्ण और विराट् संग्राममें, घृणाके विरुद्ध प्रेम, अन्यायके विरुद्ध न्याय, विद्रोहके विरुद्ध तेरे परम विधानकी आज्ञाकारिताके इस गंभीर युद्ध-में मैं धीरे-धीरे मनुष्यजातिको एक और भी महत्तर शांति प्राप्त करनेका अधिकारी बना सकूं जिसके अंदर मनुष्यके सभी आंतरिक कलह शांत हो जायं और उसके फलस्वरूप मनुष्यके सभी प्रयास तेरी भागवत इच्छा तथा तेरे क्रमवर्द्धमान आदर्शको अधिकाधिक पूर्णता और समग्रताके साथ संसिद्ध करनेके लिये संयुक्त हो जायं।

२४ जनवरी, १९१५

हे भगवान्! जो आंतरिक दंडवत् तीव्र अभीप्सासे भरे होते हैं और जो परम तादात्म्यमें परिसमाप्त होते हैं उनमेंसे एक दंडवत्की स्थितिमें मैं बहुत देरतक तेरे सामने निश्चल-नीरव बनी रही।...और सदाकी भांति तूने मुझसे कहा: "अपनी दृष्टि पृथ्वीकी ओर फेर।" और मैंने सभी मार्गों-को संपूर्ण उन्मुक्त तथा एक प्रशांत और विशुद्ध ज्योतिसे उद्भासित देखा।

मूक आराधनामें मग्न होकर, तेरी इच्छासे एकदम ओतप्रोत होकर मैंने पृथ्वीकी ओर दृष्टि फेरी।

१५ फरवरी, १९१५

हे सत्यके परमेश्वर! एक महान् व्यग्रताके साथ मैंने तीन बार तेरा आवाहन किया और तेरी अभिव्यक्तिके लिये अनुरोध किया।

फिर अपने अभ्यासके अनुसार समग्र सत्ताने तुझे संपूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया। उस समय चेतनाने मनोमय, प्राणमय और अन्नमय व्यक्तिगत सत्ताको देखा जो पूर्ण रूपसे धूल-धूसरित हो रही थी। वह सत्ता तेरे सम्मुख साष्टांग पड़ी थी, उसका ललाट पृथ्वीको छू रहा था, वह धूलमें धूल हो रही थी और तुझसे कह रही थी, "हे प्रभु! धूलसे बनी हुई यह सत्ता तेरे सामने साष्टांग प्रणाम कर रही है और यह प्रार्थना कर रही है कि वह सत्यकी अग्निसे जल उठे जिसमें कि तेरे सिवा और किसी चीजको व्यक्त न कर सके।" फिर तूने उससे कहा: "उठ खड़ी हो, समस्त धूलिसे तू शुद्ध-मुक्त है।" और, पलभरमें, हठात्, समस्त धूलि वैसे ही झड़ गयी जैसे कि कोई वस्त्र शरीरसे जमीनपर गिर पड़ता है, और सत्ता सीधी प्रकट हो गयी, वैसे ही ठोस पर चकाचौंध करनेवाली ज्योतिसे चमचमाती हुई।

कामो मारू जहाजपर: ३ मार्च, १९१५

यह कठोर एकाकीपन...और सर्वदा यह तीव्र अनुभव मानों मुझे अंधकारके नरकमें सिरके बल फेंक दिया गया हो। अपने जीवनके और किसी मुहूर्त्तमें, किसी भी परिस्थितिमें मुझे कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि मैं ऐसी चीजोंके बीच रह रही हूं जो उन सब चीजोंके एकदम विपरीत हैं जिन्हें मैं सत्य समझती हूं, जो मेरे जीवनका स्वयं सारतत्त्व हैं। कभी-कभी जब यह अनुभव और यह वैपरीत्य विशेष रूपसे तीव्र हो उठते हैं तब मैं अपने सर्वांगीण समर्पणको विषादकी छायासे रंजित होनेसे बचा नहीं पाती और अंतरस्थ भगवान्के साथ जो मेरा शांत और मौन वार्तालाप होता है उसे एक क्षणके लिये प्राय: सानुरोध आह्वानमें परिणत होनेसे रोक नहीं पाती और मुंहसे निकल पड़ता है: "हे भगवान्! ऐसा मैंने क्या किया है कि तूने मुझे इस तरह अंधेरी रातमें फेंक दिया है?" परंतु तुरत अभीप्सा और भी तीव्र हो उठती है: "सब प्रकारके स्खलनसे इस आधारकी रक्षा कर; ऐसी कृपा कर कि यह तेरे कार्यका अनुगत तथा दूरदर्शी यंत्र बन सके, भले ही वह कार्य चाहे जो भी क्यों न हो।"

वर्तमान समयमें दूरदर्शिताका अभाव है: कभी भविष्य इतना अधिक आच्छादित नहीं था। ऐसा मालूम होता है कि जहांतक व्यक्तिगत भवितव्यताओंका संबंध है हम एक ऊंची और अभेद्य दीवारकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। जहांतक जाति और पृथ्वीकी भवितव्यताओंका संबंध है वे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट दिखायी दे रही हैं। परंतु उनके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है: भविष्य सबकी दृष्टिके सामने, यहांतक कि अत्यधिक अंधोंके सामने भी स्पष्ट रूपमें उन्हें प्रकट कर देगा।

४ मार्च, १९१५

सर्वदा वही कठोर एकाकीपन . . . परंतु वह कष्टकर नहीं है, बल्कि उससे उलटा है। उसके अंदर स्पष्टतः प्रकट हो रहा है वह अनंत और शुद्ध प्रेम जिसमें समूची पृथ्वी डूबी हुई है। उसी प्रेमके सहारे सब कुछ सजीव और सतेज हो रहा है; उसीके प्रभावसे अत्यंत घना अंधकार भी स्वच्छ हो उठता है और अपने अंदरसे उसे प्रवाहित होने देता है, तथा अत्यंत तीव्र वेदना भी शक्तिमय आनंदमें परिणत हो जाती है।

मुझे ऐसा लगता है कि गभीर सागरके ऊपर जहाजका जो चक्का घूमता है उसका प्रत्येक चक्कर मानों मुझे मेरी सच्ची भवितव्यतासे, उस भवितव्यतासे जो भागवत इच्छाको सर्वोत्तम रूपमें व्यक्त करेगी, बहुत दूर ले जा रहा है; ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक घंटा, जो बीतता है, मुझे अधिकाधिक उस अतीतके अंदर डुबोता जाता है जिससे मैंने संबंध तोड़ दिया है, फिर भी मुझे निश्चय है कि मुझे नवीन तथा अधिक बृहत् सिद्धियोंकी ओर पुकारा जा रहा है; सब कुछ मुझे वस्तुओंकी एक ऐसी स्थितिकी ओर पीछे खींचता हुआ प्रतीत हो रहा है जो हमारे अंतरात्माके जीवनके एकदम विपरीत है, यद्यपि बाहरी कार्यावलियोंके ऊपर अंतरात्माके जीवनका ही अबाध शासन है; और, व्यक्तिगत अवस्थाके बाह्यतः दुःखपूर्ण होनेपर भी चेतना इतनी दृढ़ताके साथ एक ऐसे जगत्में स्थापित हो गयी है जो चारों ओरसे व्यक्तिगत सीमाओंको अतिक्रम कर रहा है और उसके फलस्वरूप समूची सत्ता शक्ति और प्रेमका निरंतर अनुभव करती हुई आनंदसे उल्लसित हो रही है।

स्थूल वस्तु-स्थितिका जहांतक प्रश्न है, आनेवाला कल अस्पष्ट और अज्ञेय है; अत्यंत क्षीण कोई प्रकाश भी मेरी विभ्रांत आंखोंके सामने भगवान्का

चिह्न, भगवान्‌की उपस्थितिको प्रकट नहीं करता। परंतु मेरी गभीर चेतनाके अंदर कोई चीज अदृश्यकी ओर तथा परात्पर साक्षि-पुरुषकी ओर मुड़ गयी है और उससे कहती है: हे भगवान्! तू मुझे अत्यंत घने अंधकारमें डुबो रहा है: इसका कारण यह है कि तूने मेरे अंदर अपनी ज्योतिको इतनी दृढ़ताके साथ स्थापित कर दिया है कि तू जानता है कि वह इस अग्नि-परीक्षाको अवश्य पार कर जायगी। क्या तूने अपनी मशाल-वाहिकाके रूपमें इस नरकके भंवरमें पैठ जानेके लिये मुझे चुना है? क्या तूने यह समझ लिया है कि मेरा हृदय इतना मजबूत है कि वह हार नहीं मानेगा, मेरा हाथ इतना पक्का है कि वह कांप नहीं जायगा? और फिर भी मेरी व्यक्तिगत सत्ता अपनेको शक्तिहीन और दुर्बल अनुभव करती है; जब तू अपनी उपस्थितिको प्रकट नहीं करता तब यह उन अधिकांश लोगोंसे भी अधिक दीन-हीन हो जाती है जो तुझे नहीं मानते या तेरी उपेक्षा करते हैं। एकमात्र तुझमें ही है उसकी शक्ति और उसकी क्षमता। यदि तू कृपा कर उसे अपनी सेवामें प्रयुक्त करे तो कुछ भी पूरा करना उसके लिये बहुत कठिन नहीं होगा, कोई भी कार्य उसके लिये बहुत अधिक बृहत् और जटिल नहीं होगा परंतु तू यदि दूर हट जाय तो वह एक ऐसे निस्सहाय शिशुके सिवा और कुछ नहीं रह जायगी जो केवल तेरी गोदमें लेट सकता और वहां वह स्वप्नहीन मधुर निद्रा ले सकता है जिसमें तेरे सिवा किसी चीजका अस्तित्व नहीं होता।

७ मार्च, १९१५

मनकी मधुर नीरवताका काल बीत चुका है; वह कितना शांतिपूर्ण और कितना निर्मल काल था जिसके अंदर वह गभीर इच्छा-शक्ति अनुभूत होती थी जो अपने सर्वसमर्थ सत्यके साथ अभिव्यक्त होती थी। अब वह इच्छा दिखायी नहीं देती और फलतः मन फिरसे सक्रिय होकर विश्लेषण करता, श्रेणी-बद्ध करता, विचार करता, चुनाव करता तथा निरंतर एक रूपांतरकारी शक्तिके रूपमें उन सब चीजोंपर प्रतिक्रिया करता है जो इस व्यक्तित्वके ऊपर आकर लद जाती हैं और यह व्यक्तित्व इस हदतक प्रसारित हो गया है कि वह एक ऐसे जगत्‌के संपर्कमें आ गया है जो अनंततः विशाल, जटिल तथा पृथ्वीसे संबंध रखनेवाली सभी चीजोंकी तरह अंधकार और प्रकाशका मिश्रण है। यह अवस्था मानों सभी आध्यात्मिक सुखोंसे निर्वासित होना

है, और, हे प्रभु, तेरी सभी परीक्षाओंमें यही निश्चित रूपसे सबसे अधिक दुःखदायी है। विशेषतः अपनी इच्छाको नीचे हटा लेना तो मानों तेरी पूर्ण अप्रसन्नताका ही चिह्न है। परित्यागका बोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है; इसलिये बाह्य चेतनाको, जो इस प्रकार अकेली छोड़ दी गयी है, असाध्य दुःखके आक्रमणसे बचानेके लिये अथक विश्वासकी पूर्ण तीव्रताकी आवश्यकता है...।

परंतु वह हताश होना नहीं चाहती, वह यह विश्वास करना नहीं चाहती कि इस दुर्भाग्यका कोई प्रतिकार नहीं; नम्रताके साथ वह प्रतीक्षा करती है, अदृश्य रूपसे, गुप्त रूपसे वह प्रयास तथा संघर्ष कर रही है जिसमें कि तेरे पूर्ण हर्षका प्रश्वास नये सिरेसे उसमें प्रवेश कर जाय। और, संभवतः, इसकी प्रत्येक तुच्छ और प्रच्छन्न विजय पृथ्वीपर लायी गयी एक सच्ची सहायता है...।

यदि इस बाह्य चेतनासे सदाके लिये बाहर निकलना, भागवत चेतनामें आश्रय ग्रहण करना संभव होता...। परंतु इसका तूने निषेध किया है, और निरंतर ही तू इसका निषेध करता है; संसारसे बाहर नहीं भागना होगा; अंधकार और वीभत्सताके बोझको अंततक ढोना ही होगा; यदि ऐसा भी प्रतीत हो कि भागवत साहाय्य दूर हट गया है तो भी ढोना होगा; इस निशाके अंदर ही मुझे रहना होगा और आगे बढ़ना होगा, यहांतक कि आंतरिक दिग्दर्शक यंत्र, प्रकाश-स्तंभ, पथ-प्रदर्शकके बिना भी अग्रसर होना होगा...।

मैं तेरी करुणाकी याचना भी नहीं करना चाहती, क्योंकि जो कुछ तू मेरे लिये चाहता है मैं भी उसे ही चाहती हूं; और मेरी सारी शक्ति अद्भुत रूपसे आगे बढ़नेके लिये, एक-एक पग, अंधकारकी घनता तथा मार्गकी कठिनाइयोंके बावजूद, निरंतर आगे बढ़ते रहनेके लिये, प्रयास कर रही है; जो कुछ भी क्यों न हो, हे भगवान्, मैं तीव्र और चिरस्थायी प्रेमके साथ तेरे निर्णयका स्वागत करूंगी। और यदि तू इस यंत्रको अपनी सेवाके लिये अनुपयुक्त भी पाये तो भी यह यंत्र स्वयं अपना नहीं है, यह तेरा ही है...। तू इसे नष्ट कर सकता अथवा इसे महान् बना सकता है; परंतु इसका अस्तित्व स्वयं अपने लिये नहीं है और तेरे बिना यह न तो कुछ चाहता है और न कुछ कर ही सकता है...।

८ मार्च, १९१५

साधारणतया अभी एक प्रकारकी शांतिकी, गभीर उदासीनताकी अवस्था है; आधार कुछ अनुभव नहीं करता, न कामना, न विराग, न उत्साह, न अवसाद, न सुख, न दुःख। वह जीवनको एक ऐसे नाटकके रूपमें देखता है जिसमें उसका पार्ट अत्यंत तुच्छ है; वह क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंको, शक्तियोंके संघर्षोंको इस प्रकार देखता है मानों एक ओर तो वे उसके आधारके ही अंग हैं, जो आधार कि उसके तुच्छ क्षणिक व्यक्तित्वको चारों ओरसे घेरे हुए है, तथा दूसरी ओर वे इस व्यक्तित्वके लिये एकदम विजातीय हैं।

परंतु कभी-कभी एक विपुल वायु बह जाती है, वेदना, मर्मभेदी एकाकी-पन तथा आध्यात्मिक दीनताकी वायु बह जाती है; कहा जा सकता है कि भगवान्द्वारा परित्यक्त पृथ्वीका वह निराशापूर्ण आह्वान है...और वह एक वेदना है जो जितनी ही नीरव है उतनी ही मर्मांतक भी है, एक ऐसी वेदना है जो विनीत, विद्रोहसे रहित, इससे बचने या निकलनेकी इच्छासे मुक्त तथा एक ऐसी अनंत मधुरिमासे पूर्ण है जिसमें दुःख और आनंद घनिष्ठ-भावसे विजड़ित हैं; वह एक ऐसी चीज है जो असीम रूपसे विस्तृत, महान् और गभीर है; शायद इतनी महान् और इतनी गभीर है कि मनुष्य उसे समझ ही नहीं सकते...ऐसी चीज है जो अपने अंदर भविष्यका बीज वहन करती है...।

ल्यूनल, १९ अप्रैल, १९१५

एक अनिवार्य आवश्यकताने मुझे अपनी खोजों तथा अपने अंतरात्माके प्रयासोंके इस सहचरको फिरसे अपने हाथोंमें लेनेके लिये विवश किया है।

बाहरकी समस्त अवस्थाएं बदल गयी हैं, स्थूल कार्यावलीतकमें जीवंत हो उठनेका मेरे आदर्शका जो स्वप्न था वह झूठा साबित हो गया है। बाह्य भौतिक परिस्थितिके अंदर आनंदपूर्ण सिद्धियां प्राप्त करनेका अभी समय नहीं आया है। भौतिक सत्ता फिरसे उसी अंधेरी और दुःखदायी रात्रिमें डूब गयी है जिसमेंसे निकल आनेकी इच्छा उसने असमयमें की थी; और, हे सत्यके परमेश्वर, तेरी इच्छा सफल हुई और उसने आकर रचना करनेवाले मनसे कहा: "तू यह धारणा नहीं कर सकता कि यही सत्य है,

और फिर भी वही सत्य होता है।" मनने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया है कि उसने भूल की थी और उसने जो कुछ तू चाहता है उसके प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया। प्राण-सत्ता भी सभी परिस्थितियोंमें शांत और संतुष्ट है। हृदय-वृत्ति एक सम और निर्मल शांतिमें निवास कर रही है; समूचा आधार तेरी विशाल, तेरी शाश्वत ज्योतिसे परिप्लावित हो रहा है; तेरा प्रेम उसमें प्रविष्ट हो रहा है और उसे अनुप्राणित कर रहा है। और फिर भी यह बोध दूर नहीं हुआ है कि बाहरी कार्यधारा एक मिथ्या वस्तु है, और अपनी असंदिग्ध सदिच्छाके बावजूद शरीर इतनी गहराईतक हिल गया है कि वह अपनी स्वस्थ साम्यावस्थाको फिरसे प्राप्त करनेमें असमर्थ हो रहा है।

इस सत्ताको अपना समूचा पार्थिव जीवन, प्रारंभसे लेकर इस वर्तमान मुहूर्त्ततक, एक झूठा सपना प्रतीत हो रहा है, वह मानों इससे बहुत दूर है और अब उसका इसके साथ प्रायः कोई भी संबंध नहीं है; यह समूची बाहरी यंत्र-सत्ता ठीक एक कलकी जैसी है जिसे यह इस कारण चला रही है कि यही इसकी आंतरिक सद्वस्तुकी इच्छा है, पर जिसमें इसे अब कोई भी दिलचस्पी नहीं है, शायद उससे अधिक दिलचस्पी तो इसे अपने पासके किसी यंत्रमें है अथवा यहांतक कि भविष्यमें पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले किसी अज्ञात यंत्रमें है। किंतु स्वयं यह पृथ्वी भी इसके लिये अजनबी हो गयी है, और चूंकि इससे शाश्वत नीरवताके अतिरिक्त और किसी चीजका बोध नहीं है, सभी जीवंत रूप इसे दूरस्थ तथा लगभग असत्य प्रतीत होते हैं; इसे यह बात बड़ी विचित्र लगती है कि कोई आदमी किसी चीजकी कामना कर सकता है जब कि वह चीज है ही नहीं, अथवा एक चीजके बदले दूसरीको पसंद कर सकता है जब कि किसी भी चीजकी सत्ता ही नहीं है। परंतु इसके साथ-ही-साथ यह इस बातका कोई कारण भी नहीं देखती कि किसी कार्यको, चाहे वह जो भी क्यों न हो, क्यों अस्वीकार करे जब कि सब कार्य ही एक समान असत्य हैं, और यह इस जगत्से भागनेकी भी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करती जो है ही नहीं और जो भार-रूप हो ही नहीं सकता क्योंकि उसका अस्तित्व इतना अधिक असत् है।

यह सारा-का-सारा ऐसा मालूम होता है मानों एक शून्य हो जो ज्योति, शांति और विशालतासे भरपूर हो और समस्त रूप तथा समस्त परिभाषा-को पार कर गया हो। यह एक शून्यावस्था तो है, पर ऐसी शून्यावस्था है जो सत्य है और शायद चिरकालतक बनी रह सकती है, क्योंकि वह है, यद्यपि वह अपने अंदर 'जो नहीं है' उसकी चरम विशालताको वहन करती

है....। हाय, हमारे दुर्बल शब्द उस वस्तुकी बात कहनेकी चेष्टा करते हैं जिसे निश्चल-नीरवता भी प्रकट नहीं कर सकती।

जो स्थिति इस प्रकार बेढंगे शब्दोंमें अपने-आपको व्यक्त करनेकी चेष्टा कर रही है, वह कई सप्ताहोंसे धीरे-धीरे स्थापित हो रही है, और, प्रत्येक दिन जो बीतता है वह उसे और भी अधिक सुनिश्चित रूपमें, अधिक गभीर, बल्कि यों कहें कि अधिक अचल-अटल रूपमें स्थापित करता जाता है। सत्ता उसे बिना चाहे, बिना उसकी खोज या कामनाके ही, उसमें अधिकाधिक डूबती जा रही है, साथ ही अपनी चेतना भी एक ऐसी उच्च चेतनामें अधिकाधिक खोती जा रही है जो अब वैयक्तिक नहीं है और जिसकी अचलता अकथनीय है, एक ऐसी उच्च चेतनामें खोती जा रही है जिसमें अपनी सत्ताको पृथक् अनुभव करना अब संभव नहीं है।

२४ मई, १९१५

एक दिन, हे भगवान्, तूने हमारे मनको यह शिक्षा दी कि वह तेरे दिव्य सत्यकी अभिव्यक्तिका साधन बनकर, तेरी सनातन इच्छाका वाहन बनकर पूर्ण रूपसे कार्य कर सके और फिर भी कार्य सिद्ध करने-वाली उसकी रचनाएं बाह्य सत्ताकी संभावनाओंके संकीर्ण क्षेत्रके द्वारा सीमित न हों। उससे पहले, किन्हीं विरल अवसरोंको छोड़कर, इस मनको यह आदत पड़ गयी थी कि वह तेरी अनिर्वचनीय अनंतताके सम्मुख नीरव ध्यानमें, मूक आनंदमें लीन रहता था और बाह्य सत्ता जिस कर्म-क्षेत्रका प्रतिनिधि है उस कर्म-क्षेत्रके ऊपर अपने प्रयासको केवल केंद्रीभूत करनेके लिये ही वह उससे बाहर निकलता था। यह अवस्था अति संकीर्ण घेरेके अंदर एक प्रकारकी दासता थी; उस समय मानस-सिद्धिकी शक्ति तथा वह शक्ति जिस यंत्रके अंदर आत्म-प्रकाश करनेकी चेष्टा करती थी उस यंत्रके बीच एक विरोध था और उसका एकांत तात्कालिक फल यह होता था कि इससे मानसिक शक्तियां व्यर्थ नष्ट होतीं और सीमित भी हो जाती थीं तथा इसलिये मनको कर्ममें कोई तृप्ति न मिलनेके कारण वह एकदम स्वाभाविक रूपमें तेरी शाश्वततामें निमग्न हो जानेके लिये वापस लौट आता था।

हठात् तूने इस अव्यवस्थाका अंत कर दिया है; तूने मनको इसके अंतिम बंधनसे मुक्त कर दिया है; तूने इसे सभी आकारोंके भीतर

स्वाधीन रूपसे सक्रिय होना सिखा दिया है — केवल उन्हीं रूपोंके अंदर नहीं जिन्हें यह अबतक अपना निजी रूप अर्थात् अपने आत्म-प्रकाशका स्वाभाविक साधन समझता था।

प्राण-सत्ताने तो बहुत दिन पहले ही इस मुक्तिको प्राप्त कर लिया था; उसने सीख लिया था कि किस तरह जीवनी-शक्तिको अभिव्यक्त करनेमें समर्थ सभी आकारोंके अंदर इन्द्रियानुभव तथा भावावेगोंकी परिपूर्णताको लिये हुए जीवन यापन किया जा सकता है। परंतु मानस-सत्ताने अभीतक यह नहीं सीखा था कि किस तरह सभी जीवन-धाराओंको एक समान ज्ञानपूर्वक संजीवित, संगठित और आलोकित किया जा सकता है। तूने उसकी बाधाओंको दूर कर दिया है। तूने उसके सामने अपनी अनंत अभिव्यक्तियोंके द्वारोंको उन्मुक्त कर दिया है।

कुछ दिनोंमें ही नयी सिद्धि स्थिर हो गयी, दृढ़ बन गयी है। मेरी समग्र सत्ता वर्तमान समयमें पृथ्वीके ऊपर एक चेतना-केंद्रका निर्माण कर रही है और उससे तू जो कुछ आशा करता है वह उसके सामने स्पष्ट रूपमें विकसित हो गया है; वह है, सभी जड़ आकारोंके अंदर महान् जीवनी-शक्ति बनना, सभी आकारोंके अंदर इस जीवनी-शक्तिको सुसंगठित करनेवाली तथा इसका व्यवहार करनेवाली चिंतन-शक्ति बनना, इस चिंतन-शक्तिके सभी नानाविध उपादानोंको विस्तारित करनेवाली, आलोकित करनेवाली, तीव्र बनानेवाली एवं संयुक्त करनेवाली प्रेम-शक्ति बन जाना, और इस प्रकार, अभिव्यक्त जगत्के साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त कर, इसका रूपांतर करनेके लिये पूर्ण शक्तिके साथ हस्तक्षेप करनेके योग्य बनना।

दूसरी ओर, चरम तत्त्वके प्रति पूर्ण समर्पण करके परम सत्य तथा उसे अभिव्यक्त करनेवाली शाश्वत संकल्प-शक्तिके विषयमें सचेतन होना, इस तादात्म्यके द्वारा भागवत संकल्पका विश्वासपात्र सेवक और अचूक माध्यम बनना, तथा मूलतत्त्वके साथ प्राप्त इस सज्ञान एकात्मता और उसकी बाह्य अभिव्यक्तिके साथ प्राप्त सज्ञान एकात्मताको एक साथ युक्त करके मूलतत्त्वके सत्यधर्मके अनुसार भूतमात्रके हृदय, मन और प्राणको ज्ञानपूर्वक ढालना और गढ़ना।

ऐसा करनेपर ही व्यक्तिगत सत्ता परम सत्य और अभिव्यक्त विश्वके बीचका सचेतन मध्यस्थ बन सकती है तथा प्रकृतिकी योग-साधनाकी धीमी और अनिश्चित गतिमें हस्तक्षेप करके उसे दिव्य योग-साधनाकी क्षिप्र, प्रखर और सुनिश्चित गति प्रदान कर सकती है।

बस, इसी तरह किसी-किसी युगमें पृथ्वीकी संपूर्ण जीवन-धारा अद्भुत रूपमें

कई स्तरोंको पार कर जाती है, जिन्हें, अन्य समयोंमें, पार करनेमें संभवतः हजारों वर्षोंकी आवश्यकता पड़ती है।

वर्तमान समयमें, हे प्रभु, तेरी चिरंतन इच्छाके प्रति मेरे परिपूर्ण तथा सज्ञान समर्पणकी स्थिति, जहांतक मैं समझ पाती हूं, नित्य और स्थिर बन गयी है तथा वह मानसिक, प्राणिक या स्थूल-भौतिक प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक वृत्तिके पीछे विद्यमान है। यह जो अक्षुब्ध शांति है, यह जो गभीर, अचंचल और अविकारी आनंद है, जो मुझे कभी नहीं छोड़ते, क्या ये इस बातका प्रमाण नहीं हैं ?

समस्त अभिव्यक्त आकारोंके अंदर जीवनी-शक्ति, चिंतन और प्रेमके साथ जो मेरी निष्क्रिय अर्थात् ग्रहणशील एकात्मता है वह एक संसिद्ध स्थिति बन गयी है तथा विशुद्ध सत्यके प्रति आत्म-समर्पण करनेका अनिवार्य परिणाम प्रतीत होती है।

किंतु जिन मुहूर्त्तोंमें चेतना सक्रिय रूपमें प्राण-शक्ति बनकर समस्त स्थूल आकारोंको गढ़ती और सजीव बनाती है, बुद्धि बनकर प्राण-शक्तिको संगठित करती है और प्रेम बनकर बुद्धिको आलोकित करती है और यह सब सक्रिय रूपमें तथा पूर्ण सचेतन होकर करती है, एक साथ ही समग्रके अंदर और छोटे-से-छोटे व्योरेके अंदर करती है, एक प्रकारकी अनंत परिपूर्णता तथा यथार्थ शक्तियोंके साथ करती है, वे मुहूर्त्त अभी भी विच्छिन्न रूपमें ही आते हैं, यद्यपि वे धीरे-धीरे अविच्छिन्न और स्थायी हो रहे हैं।

ठीक इन्हीं मुहूर्त्तोंमें दोनों चेतनाएं साथ-साथ रहती हैं और घुल-मिलकर एक चेतना बन जाती हैं, वह चेतना अवर्णनीय, वाक्यातीत होती है और उसमें अक्षर अनंत तथा अनंत गति दोनों एक हो जाते हैं। इन्हीं मुहूर्त्तोंके अंदर वर्तमान समयका कार्य संपन्न होना आरंभ हो रहा है।

मार्सियार्ग, ३१ जुलाई, १९१५

हे भगवान् ! क्या मुझे सेवकका, यंत्रका अभिनय करते हुए तेरी ओर मुड़ना चाहिये और तेरा स्तवन करना चाहिये ? क्या सनातन सद्वस्तु और असीम आनंदके अंदर तेरे साथ एकीभूत होकर मनुष्योंको उस शांति और उस सुखकी बात बतलानी चाहिये जिन्हें वे नहीं जानते . . . ? दोनों मनोभाव युगपत् विद्यमान हैं, दोनों चेतनाएं समानांतर चल रही हैं, और, इस घनिष्ठ

तथा अच्छेद्य एकत्वके अंदर ही है परिपूर्णता।

स्वर्गलोक निश्चित रूपसे जीते जा चुके हैं, और किसी चीज, किसी व्यक्तिमें ऐसी शक्ति नहीं कि वह उन्हें मुझसे छीन सके। परंतु पृथ्वीको जीतना अभी भी बाकी है; यह विजय-अभियान एक गोलमालके अंदर चल रहा है; और, जब यह विजय प्राप्त भी हो जायगी तो भी यह होगी केवल आपेक्षिक ही; इस जगत्‌में प्राप्त होनेवाली जीतें केवल सोपानके सदृश होती हैं जो धीरे-धीरे और भी अधिक महत्तर विजयोंकी ओर ले जाती हैं; और तेरी इच्छा मेरे मनसे जिस चीजकी कल्पना प्राप्तव्य लक्ष्य-के रूपमें, संसिद्ध करने योग्य विजयके रूपमें कराती है वह तो महज तेरी चिरंतन योजनाका एक छोटा-सा अंश है; परंतु पूर्ण एकत्वके अंदर तो मैं ही वह योजना तथा वह इच्छा हूं एवं मैं अनंतका परमानंद उस समय भी उपभोग करती हूं जब मैं विभाजनके इस जगत्‌में तेरी दी हुई भूमिका-का उत्साहपूर्वक, पूरी शक्तिके साथ और यथार्थ रूपमें अभिनय करती हूं।

मेरे अंदर तेरी शक्ति उस सफल और सबल स्रोतकी तरह विद्यमान है जो चट्टानोंके पीछे गर्जन करता है और बाधाओंको भंग करने, बाहरकी ओर अबाध गतिसे प्रवाहित होने तथा मैदानमें चारों ओर फैलकर उसे उपजाऊ बनानेके लिये अपनी शक्तियोंको एकत्र करता है। परंतु उसके फूट निकलनेका समय कब होगा? जब उसका मुहूर्त्त आयगा तभी वह फूट निकलेगा, आनंत्यके अंदर समय नामकी कोई चीज नहीं है। किंतु जो सब शक्तियां कल होनेवाली तेरे संकल्पकी अभिव्यक्तिके अनुकूल हैं, वे सारे संसारमें फैल जानेकी तैयारी कर रही हैं, विगत कल संपन्न हुए तेरे संकल्प-का प्रकाश ही सर्वदा बने रहनेकी इच्छा रखनेवाली सभी चीजोंको अपने महान् जलप्लावनमें डुबो रहा है, जिसमें कि वे तेरे नामपर समस्त पृथ्वी-पर अधिकार जमा लें और तेरी ही पूर्णतर प्रतिमूर्तिके रूपमें उसे तुझे अर्पित कर दें, उन शक्तियोंके इस आंतरिक संचय, इस गभीर एकाग्रताके अंदर जो अपरिमित आनंद निहित है उसका वर्णन भला कौन-से शब्द कर सकते हैं?

तूने कहा है कि पृथ्वी मर जायगी, और वह अपने पुराने अज्ञानके लिये मर जायगी।

तूने कहा है कि पृथ्वी जीयेगी, और वह तेरी शक्तिका पुनः अभ्युत्थान होनेपर जीयेगी।

कौन शब्द भला तेरे विधानकी छटा और तेरी महिमाकी महत्ताका बखान कर सकते हैं! कौन-से शब्द तेरी चेतनाकी पूर्णता और तेरे प्रेमके अनंत आनन्दको व्यक्त कर सकते हैं!

कौन शब्द तेरी अनिर्वचनीय शांतिका गान गायेंगे और तेरी निश्चल-नीरवताके माहात्म्य तथा तेरे सर्वशक्तिमान् सत्यके महत्त्वका कीर्त्तन करेंगे!

यह संपूर्ण अभिव्यक्त विश्व तेरे ऐश्वर्यका वर्णन करने तथा तेरे अद्भुत कार्योंका विवरण देनेके लिये पर्याप्त नहीं है, और फिर भी कालकी अनंत धारामें वह अधिकाधिक, अच्छे-से-अच्छे रूपमें, सनातन रूपसे, वही कार्य करनेका प्रयास कर रहा है।

पेरिस, २ नवंबर, १९१५

(अपनी कुछ घरेलू वस्तुओंको सजानेमें थोड़ा समय बितानेके बाद)

जैसे कोई तेज हवा समुद्रके ऊपरसे बह जाती है और उसकी असंख्य लहरोंको फेनका ताज पहना देती है, वैसे ही एक विपुल श्वास मेरी स्मृति-के ऊपरसे गुजर गया और उसने अगणित पुरानी घटनाओंकी याद करा दी। एक चमकमें सारा तीव्र, जटिल और सघन भूतकाल फिरसे जीवंत हो उठा; उसने अपने रस, अपनी संपदामेंसे कुछ भी नहीं खोया।

उसके बाद समूचा आधार आराधनाके एक महान् प्रवेगके द्वारा ऊपर उठ गया; और जैसे कोई अपने खेतकी घनी पैदावारको एकत्र करता है वैसे ही उसने अपनी पूरी याददाश्तको इकट्ठी करके एक पूजाके रूपमें बस तेरे चरणोंमें धर दिया, हे भगवान्!

कारण, अपने सारे जीवनभर, बिना जाने या उसका कोई पूर्वाभास पाये बिना, वह महज तुझे ही खोजता आ रहा है; अपने सभी अनुरागों, सभी उत्साहों, सभी आशाओं, सभी निराशाओं, सभी दुःखों तथा सभी सुखोंमें वह बस तुझे ही व्याकुलताके साथ चाहता रहा है। और, अब, जब कि उसने तुझे पा लिया है, अब जब कि उसने परम शांति और चरम आनंदके अंदर तुझे अधिकृत कर लिया है, वह आश्चर्यचकित हो रहा है कि तेरा आविष्कार करनेके लिये उसे इतने अधिक इंद्रियानुभवों, भावावेगों तथा अनुभवोंकी आवश्यकता हुई है।

परंतु यह सब जो एक संघर्ष, एक हलचल और एक अंतहीन प्रयास था, वह तेरी सज्ञान उपस्थितिकी अपार करुणाके वश एक अमूल्य सौभाग्य बन गया और उसे तुझे अर्पण कर सकनेके कारण मेरी सत्ता आनंद भोग रही

है। तेरी दिव्य ज्योतिकी पावन शिखाने उस सबको महार्घ रत्नोंमें परिणत कर दिया है और मैंने अपने हृदयकी वेदीपर उनकी जीवंत आहुति दे दी है।

भूल-भ्रांतियां सोपान-शिलाएं बन गयी हैं और अंधेकी भांति टटोलना विजयमें बदल गया है। तेरी महिमा पराजयोंको शाश्वतताकी विजयोंमें रूपांतरित कर रही है, और समस्त अंधकार तेरे प्रोज्ज्वल प्रकाशके सामने काफूर हो रहा है।

बस, तू ही था चालक शक्ति तथा लक्ष्य, बस तू ही है कर्ता और कर्म।

व्यक्तिगत जीवन है वह स्तोत्र जो नित्य नया हो रहा है तथा जिसे यह विश्व तेरे अचिंत्य ऐश्वर्यका गुणगान करनेके लिये गाता है।

७ नवंबर, १९१५ – ३ बजे

कोई बाहरी चिह्न नहीं था, कोई विशेष परिस्थिति नहीं थी, क्षण इतनी गंभीरताके साथ, एक ऐसी गंभीर आंतरिक नीरवताके अंदर, एक ऐसी गभीर और विशाल शांतिके अंदर गुजर रहे थे कि मेरे आंसू प्रचुर मात्रामें बह रहे थे। गत दो दिनोंसे ऐसा मालूम हो रहा है कि पृथ्वी एक चूड़ांत संकट-कालमेंसे पार हो रही है; ऐसा प्रतीत होता है कि स्थूल जगत्की बाधाओं तथा आध्यात्मिक शक्तियोंके बीच जो महान्, जो भयानक युद्ध चल रहा है उसकी कोई मीमांसा शीघ्र होनेवाली है, अथवा, किसी भी हालतमें, कोई अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकरण लीला-क्षेत्रके अंदर प्रकट हुआ है या प्रकट होने जा रहा है।

ऐसे मुहूर्त्तोंमें व्यक्तियोंका मूल्य कितना नगण्य होता है! वे उन तृणों-के समान होते हैं जिन्हें हवाका एक झोंका आकर उड़ा ले जाता है, जो एक क्षणमें बवंडरके अंदर चक्कर खाकर मिट्टीसे ऊपर उठ जाते हैं और फिर तुरत उसके बाद मिट्टीमें गिरकर धूलमें परिणत हो जाते हैं। और जो व्यक्ति इस तरह अपनी अवस्थाको इतनी अनिश्चित, अपनेको इतना महत्त्वहीन अनुभव करते हैं वे कष्ट पाते और कराहते हैं, अत्यंत दुःखदायी यंत्रणा भोग करते हैं। उनके लिये प्रतीक्षा करना भी एक चिरस्थायी भय बन जाता है, सब कुछ मानों विपत्ति और विनाशका ही संदेश उन्हें सुनाता है....।

परंतु पूरी तरह संकीर्ण अहमिकासे गठित इस बाह्य यंत्रणाके मर्मस्थलमें कितनी महत्ता, कितना चरम सौंदर्य छिपा हुआ है; अंतर्मुखीनताकी शक्तिसे पूजाका रूप लिये हुए इस प्रतीक्षामें कितना तेज भरा हुआ है, जब कि व्यक्तिगत अंधताकी सीमाएं भंग हो गयी हैं और व्यक्तिगत चेतनाने तेरी शाश्वत चेतनाके साथ युक्त होनेके लिये उड़ान ले ली है।

हे भगवान्! यह संतप्त जगत् मूक अनुनय करते हुए तेरे सामने घुटने टेक रहा है; यह पीड़ित जड़तत्त्व तेरे चरणोंमें पड़ा हुआ है, वही उसका अंतिम, उसका एकमात्र आश्रयस्थल है; और इस तरह तेरी विनती करते हुए वह तेरी पूजा कर रहा है, यद्यपि वह न तो तुझे जानता है और न समझता ही है! उसकी प्रार्थना मुमूर्षुके आर्त्तनादकी तरह ऊपर उठ रही है; जो कुछ विलुप्त होने जा रहा है वह पुनः तेरे अंदर निवास करनेकी संभावनाको अस्पष्ट रूपमें अनुभव करता है; पृथ्वी साष्टांग प्रणिपात करके तेरे आदेशकी प्रतीक्षा कर रही है। सुन, सुन, हे प्रभु, उसकी वाणी तेरी अनुनय-विनय कर रही है...। क्या होगा तेरा आदेश, क्या है तेरा निर्णय? हे सत्यके अधीश्वर! व्यष्टि जगत् तेरे सत्यका गुणगान करता है जिसे वह अभीतक जानता नहीं, पर जिसका वह आह्वान करता है, और जिससे वह अपनी जीवंत शक्तियोंकी सारी सामर्थ्य लगाकर प्रसन्नतापूर्वक चिपका रहता है।

मृत्यु अपना विराट्, भयावह कलेवर लेकर आयी और चली गयी तथा उसके गुजरते समय सब कुछ एक पवित्र नीरवतामें जा गिरा।

पृथ्वीपर एक अलौकिक सौंदर्य प्रकट हुआ है।

अत्यंत अद्भुत आनंदसे भी कहीं अधिक अद्भुत किसी वस्तुने अपनी उपस्थितिके लक्षणका अनुभव कराया है।

२६ नवंबर, १९१५*

संपूर्ण चेतना भगवान्के ध्यानमें डूब गयी, समग्र आधारने एक सर्वोच्च और बृहत् महासुखका उपभोग किया।

फिर स्थूल शरीर, पहले तो अपने निम्नतर अंगोंमें और उसके बाद

---

*यह प्रार्थना माताजीने श्रीअरविंदको पत्रके रूपमें भेजी थी। उसके उत्तरमें श्रीअरविंदने लिखा था: "जिस अनुभवका आपने वर्णन किया है

अपनी समूची सत्तामें एक प्रकारकी पवित्र सिहरनसे आक्रांत हो गया। उस सिहरनने धीरे-धीरे, अत्यंत स्थूल अनुभवोंकी सभी व्यक्तिगत सीमाओंको दूर कर दिया। सत्ता धीरे-धीरे, क्रमानुसार, प्रत्येक बंधनको तोड़ती हुई, प्रत्येक बाधाको छिन्न-भिन्न करती हुई अधिकाधिक विशाल होती गयी जिसमें कि वह अनवरत असीम और प्रबल होनेवाली एक दिव्य शक्ति, एक दिव्य सामर्थ्यको अपने अंदर धारण कर सके तथा अभिव्यक्त कर सके। ऐसा लगा मानों देहके सभी कोष क्रमशः फूलते जा रहे हों और उसके कारण अंतमें पृथिवीके साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त हो गया हो, अब जाग्रत् चेतनाका शरीर समूचा पृथ्वी-मंडल बन गया था जो आकाश-प्रदेशमें सुसमंजस रूपसे चक्कर काट रहा था। और चेतनाको यह ज्ञात था कि उसका यह गोलाकार शरीर विश्व-पुरुषके बाहुपाशमें आबद्ध रहते हुए ही इस प्रकार चक्कर काट रहा है और उसने शांतिपूर्ण आनंदके उल्लासके साथ अपने-आपको उन्हींके हाथोंमें सौंप दिया, उन्हींके ऊपर अपने-आपको छोड़ दिया। उसके बाद चेतनाने अनुभव किया कि उसका शरीर विश्वके साथ घुल-मिल गया है तथा उसके साथ एकाकार हो गया है और फिर वह चेतना विश्वकी चेतना बन गयी; वह अपनी समग्रतामें तो अचल थी पर अपनी आंतरिक बहुविधतामें अनंत रूपसे सचल थी। अब विश्वकी चेतना एक तीव्र अभीप्साके साथ, पूर्ण समर्पणके भावमें, भगवान्की ओर उछल पड़ी, और उसने निर्मल ज्योतिके उजियालेमें देखा कि देदीप्यमान पुरुष अनेक मस्तकवाले एक सर्पके ऊपर दंडायमान हैं तथा उस सर्पके शरीरने विश्वको अनंत बार लपेट रखा है। वह पुरुष अपनी सनातनी विजय-भंगीके साथ उस सर्प तथा उस सर्पसे निःसृत विश्वके ऊपर एक साथ अधिष्ठान करते थे तथा उनका सृजन करते थे; सर्पके ऊपर सीधे खड़े होकर वह अपनी समस्त विजयिनी शक्तिके द्वारा उसपर शासन करते थे और उनकी जो भंगिमा विश्वको आवृत करनेवाले अजगरको पददलित करती थी वही उसे निरंतर पुनर्जन्म भी प्रदान कर रही थी। फिर चेतना स्वयं वह पुरुष

वह सच्चे अर्थमें वैदिक है, यद्यपि यह ऐसा नहीं जिसे आधुनिक योग-पद्धतियां जो अपनेको यौगिक कहती हैं सहज ही मान्यता दें। यह वेद और पुराणकी 'पृथ्वी' का भागवत 'तत्त्व' के साथ मिलन है, उस पृथ्वीका जो हमारी पृथ्वीसे ऊपर स्थित कही जाती है, अर्थात्, उस भौतिक सत्ता एवं चेतनाका जिसकी प्रतिमाएं मात्र हैं जगत् और देह। परंतु आधुनिक योग भगवान्के साथ भौतिक मिलनकी संभावनाको मुश्किलसे ही स्वीकार करते हैं।"

(३१-१२-१९१५)

ही बन गयी और उसने देखा कि उसका आकार फिर एक बार बदल रहा है; वह एक ऐसी चीजमें मिल रहा है जो अब कोई आकार नहीं है और फिर भी जो सभी आकारोंको धारण करती है, वह एक ऐसी चीज है जो अक्षर है, जो देखती है, जो 'नेत्र' है, जो 'साक्षी' है। और जो कुछ वह देखती है बस वही वह है। तत्पश्चात् आकारका यह अंतिम चिह्न भी विलुप्त हो गया और स्वयं चेतना भी अनिर्वचनीय, अकथनीय दिव्य सत्तामें विलीन हो गयी।

व्यक्तिगत शरीर-चेतनाकी ओर वापस आनेकी क्रिया बहुत धीरे-धीरे संपन्न हुई; वह भागवत ज्योति, शक्ति, आनंद तथा दिव्य पूजा-भावके एक निरवच्छिन्न तथा अपरिवर्तनीय छटाके अंदर, एक-एक स्तरमेंसे गुजरती हुई, पर एकदम सीधे संपन्न हुई अर्थात् वह फिर विश्वगत तथा पार्थिव आकारोंके भीतरसे नहीं गुजरी। ऐसा हुआ मानों यह तुच्छ शरीराकृति किसी मध्यस्थकी सहायताके बिना ही सनातन तथा सर्वोपरि साक्षी-पुरुषका साक्षात् और अपरोक्ष परिधान बन गयी हो।

१५ जनवरी, १९१६

ओ! तुझे ही तो मैं अपना भगवान् कह सकती हूं; तू ही तो सनातन विश्वातीत सत्ताका व्यक्तिगत रूप है और मेरी व्यक्तिगत सत्ताका कारण, मूल-स्रोत और सद्वस्तु है, तूने ही तो सैकड़ों, हजारों वर्षोंतक इस जड़ वस्तुको धीरे-धीरे, सूक्ष्म रूपसे गढ़ा है, जिसमें कि एक दिन यह सचेतन रूपसे तेरे साथ एक हो सके, एकमात्र 'तू' ही बन सके, तू ही तो अपनी संपूर्ण दिव्य प्रभाके साथ मेरे सम्मुख प्रकट हुआ है — यह व्यक्तिगत सत्ता अपनी पूरी जटिलताके साथ, चरम पूजाके एक अर्घ्यके रूपमें तुझे आत्म-निवेदन करती है; यह अपने सभी अंगोंसे अभीप्सा करती है कि यह तेरे साथ एक हो जाय, 'तू' ही बन जाय, चिरकालके लिये 'तू' ही हो जाय, सदाके लिये तेरी ही सद्वस्तुमें निमज्जित हो जाय। पर क्या यह इसके लिये तैयार है? क्या तेरा कार्य संपूर्ण रूपसे संपन्न हो गया है? क्या इसके अंदर अब कहीं कोई छाया, कोई अज्ञान, कोई सीमा नहीं है? तब क्या तू आखिरकार इसे चिरस्थायी रूपमें अपने अधिकारमें ले सकता, परमोच्च, पूर्णतम रूपांतरके द्वारा इसे अज्ञानके जगत्से बाहर निकाल ला सकता तथा सत्यके जगत्में इसका निवास करा सकता है?

बल्कि यों कहें कि तू ही 'मैं' है — वह 'मैं' जो सब प्रकारकी भूल-भ्रांतियों तथा सीमाओंसे खाली है। क्या मैं संपूर्ण रूपमें, सत्ताके सभी कोषोंतकमें वह सच्चा "मैं" बन गयी हूं? क्या तू प्रबल वज्रपातकी तरह रूपांतर सिद्ध करेगा अथवा अभी भी यह एक धीमी ही क्रिया होगी जिसके अंदर एकके बाद एक प्रत्येक कोष अपने अंधकार और अपनी सीमा-के बाहर खींच लाया जायगा?

तू ही राजराजेश्वर है और अपने राज्यपर अधिकार जमानेके लिये तैयार है; क्या तू अभी भी अपने राज्यको इतना पर्याप्त रूपमें तैयार नहीं पाता कि तू इसे चिरकालके लिये अपने साथ युक्त कर ले, इसके साथ एक-शरीर बन जाय?

क्या विश्वगत और व्यक्तिगत जीवनका महान् चमत्कार आखिर परिपूर्ण होने जा रहा है?

२२ जनवरी, १९१६

तूने पूर्ण रूपसे इस हीन यंत्रके ऊपर अधिकार जमा लिया है, और अगर यह अभी इतने पर्याप्त रूपमें पूर्ण नहीं बन गया है कि तू इसके रूपांतर, इसके सत्तांतरका कार्य संपन्न कर सके तो तू इसके प्रत्येक कोषमें, इसे गूंधने, मुलायम बनाने, आलोकित करनेके लिये तथा समग्र आधारके अंदर इसका स्थान निश्चित करने, इसे सुव्यवस्थित करने और सुसमन्वित करनेके लिये कार्य कर रहा है। सब कुछ गतिशील हो रहा है, परि-वर्तित हो रहा है। तेरी दिव्य क्रिया अनुभूत हो रही है, वह मानों पवित्रकारिणी अग्निका एक अवर्णनीय स्रोत है, जो सभी कोषोंके भीतर प्रवाहित हो रहा है। और यह स्रोत आधारके अंदर एक ऐसा आनंद ले आया है जो सभी कोषोंद्वारा अबतक अनुभूत आनंदोंसे कहीं अधिक अद्भुत है। जिस वस्तुपर तू कार्य कर रहा है उसकी अभीप्सा इसी प्रकार तेरे कार्यका प्रत्युत्तर दे रही है और यह अभीप्सा उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है जितना अधिक यह यंत्र अपनी समस्त अक्षमताके साथ अपने-आपको देखता है!

हे भगवान्! मैं तुझसे विनती करती हूं : उस पुण्य दिवसको शीघ्र निकट ले आ जब कि तेरा दिव्य चमत्कार घटित होगा, उस दिनको निकट ला जब कि पृथ्वीके ऊपर भगवान्का आविर्भाव होगा।

२३ जनवरी, १९१६

इस स्थूल आकारमें रहनेवाले हे भगवान्! तू देखता है कि यह सीमाओं-का एक स्तूपमात्र है। क्या तू इन सब सीमाओंको भंग कर देना नहीं चाहता जिससे कि यह तेरी अनंततामें भाग ले सके? तू देखता है कि यह अंधकारसे परिपूर्ण है: क्या तू अपनी प्रोज्ज्वल ज्योतिसे इस अंधकारको विलीन नहीं कर देना चाहता जिससे कि यह तेरी दीप्तिमें हिस्सा बंटा सके? तू देखता है कि यह अज्ञानकी कालिमासे लदा हुआ है: क्या तू अपनी सर्वभुक् प्रेम-वह्निके द्वारा इस समस्त कालिमाको भस्म कर देना नहीं चाहता जिससे कि समूचा आधार पूर्ण ज्ञानके साथ तेरे संग अब बस एक हो जाय?

क्या तू नहीं देखता कि पृथ्वी और मनुष्यजातिके लिये अहंजन्य पृथक्ताका यह धूमिल और दुःखपूर्ण अनुभव काफी लंबे समयसे बना हुआ है? विश्वमें क्या वह शुभ घड़ी नहीं आयी है जब कि विकासकी इस अवस्थाके बदले दूसरी अवस्था आ सके जिसमें तेरे एकत्वकी विशुद्ध और बृहत् चेतनाका प्राधान्य होगा?

बिना रुके, प्रत्येक क्षण, मेरी पुकार तेरी ओर उठ रही है और मैं तुझसे कह रही हूं: हे भगवान्! हे भगवान्! अपने राज्यको तू अपने अधिकारमें ले ले, अपनी सनातन उपस्थितिसे इसे उद्भासित कर दे, जिस दारुण भूलके अंदर यह अपनेको तुझसे पृथक् समझता हुआ निवास कर रहा है उसका अंत कर दे, क्योंकि इसका जो सत्य स्वरूप है और इसका जो सारतत्त्व है वह तो स्वयं 'तू' ही है।

भंग कर, अंतिम बाधाओंको भंग कर, अंतिम समस्त अशुद्धिको भस्म कर डाल, यदि आवश्यक हो तो इस आधारपर वज्राघात कर, पर यह रूपांतरित अवश्य हो!

टोकियो, ७ जून, १९१६

कई दीर्घ मास बीत चुके हैं जिनमें कुछ भी कहना संभव न हुआ, क्योंकि यह एक साम्यावस्थासे दूसरी अधिक बृहत् और अधिक पूर्ण साम्यावस्थामें जानेका संक्रमणकाल था। बाहरी परिस्थितियां जटिल और अद्भुत हो गयी थीं, मानों सत्ताकी बहुत-सी अनुभूतियों तथा पर्यवेक्षणोंको संग्रह करने-

की आवश्यकता आ पड़ी थी जिसमें कि वह अपने अनुभवको कहीं अधिक प्रशस्त और बहुमुखी आधार प्रदान कर सके। परंतु संपूर्ण रूपसे इस अनुभूतिमें डूब जानेके कारण वह पीछे न हट सकी, जो इसलिये आवश्यक था कि वह अपने-आपको समग्र रूपमें देख सके, यह जान सके कि वह क्या है, और, विशेषतः, वह किस ओर ले जा रही है।

हठात् ५ जूनको पर्दा फट गया और चेतनामें प्रकाश हो गया।

हे शाश्वत प्रभु! जब मैंने तेरे व्यक्तिगत रूपपर ध्यान किया और तुझसे प्रार्थना की कि रक्त-मांसके अपने इस राज्यका अधिकार ग्रहण कर, तब तूने इस प्राणमय आयतनको कर्ममें प्रवृत्त कर दिया जो अनेक वर्षोंसे, अपने विकास तथा एकत्वप्राप्तिकी आवश्यकताके वश, एक ग्रहणशील और सुसमंजस निष्क्रियताके अंदर निवास कर रहा था, पर जिसका तेरी इच्छाकी किसी सक्रिय अभिव्यक्तिके साथ कोई परिचय नहीं था।

यह जो कर्ममें पुनरावर्तन था, इसका प्राणमय यंत्रके लिये अर्थ था संपूर्णतः एक नवीन स्थितिके अनुकूल बनना, क्योंकि उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है सर्वदा अपने पुराने अभ्यासों तथा पुरानी पद्धतियोंके अनुसार कर्ममें प्रवृत्त होना। नवस्थितिके अनुकूल बननेका यह काल दीर्घ, कष्टदायी, कभी-कभी तिमिराच्छन्न था, यद्यपि इसके पीछे तेरी उपस्थितिका बोध तथा तेरे विधानके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण अचल-अटल था और इतना अधिक प्रबल रूपमें ज्ञानपूर्ण था कि कोई भी विक्षोभ सत्ताको विचलित नहीं कर सकता था।

धीरे-धीरे प्राण-पुरुषको अत्यंत तीव्र कर्मके अंदर भी सामंजस्य ढूंढ़ निकालनेका अभ्यास हो गया, जैसे कि उसने निष्क्रिय समर्पणमें उसे पाया था। और एक बार जब यह सामंजस्य पर्याप्त मात्रामें स्थापित हो गया तब फिरसे आधारके प्रत्येक अंगमें प्रकाश हो गया तथा जो कुछ अबतक हुआ था उसकी पूर्ण चेतना आ गयी।

अब कर्मके मध्यमें ही प्राण-पुरुषने फिरसे अनंत और शाश्वतकी अनुभूति प्राप्त की है। यह सभी इंद्रियानुभवों तथा सभी रूपोंके भीतर तेरे ही परम सौंदर्यको देख सकता तथा जीवनमें व्यक्त कर सकता है। यहांतक कि अपने विस्तारित, सक्रिय तथा पूर्णतः विकसित इंद्रियानुभवके भीतर यह एक साथ ही विरोधी अनुभवोंको भी ग्रहण कर सकता है और सर्वदा तुझे ही देखता है।

फिर भी यह भूलता नहीं कि यह एक अवस्थामात्र है और तेरे सम्मुख गभीर भक्तिके साथ नतमस्तक होकर यह तुझसे कहता है: "हे प्रभु! तूने अपने यंत्रको हाथमें ले लिया है और कर्ममें उसका व्यवहार करनेकी

इच्छा की है। यंत्र अपनी अपूर्णता और अपनी अशुद्धिको जानता है और तेरी कृपाकी याचना करता है ताकि वह इसे पूर्ण और शुद्ध बना दे, जिससे कि, दिन-प्रतिदिन, यह यंत्र, क्रमशः अपनी सभी अभिरुचियों तथा सभी सीमाओंके दूर हो जानेपर, तुझे अधिकाधिक पूर्णताके साथ अभिव्यक्त कर सके।"

२८ नवंबर, १९१६

हे प्रभु! बच्चेके मुंहसे निकली इन व्यर्थकी बातोंको तूने फिर मुझे पढ़नेको दिया है। ये सब तो एक अपरिणत मनके आत्मप्रकाश करनेके कुत्सित प्रयास हैं। मुझे ऐसा लगा मानों यह सब बातें बड़ी दूरकी, अत्यंत दूरकी हैं और ये सरल और उत्साही शैशवकी अनुभूतियोंकी मधुरता और पवित्रतासे सुसज्जित हैं। और फिर भी, हे शाश्वत परमेश्वर, तेरी दृष्टि-में मेरी उम्र जरा भी अधिक नहीं बढ़ी है और मैंने बिलकुल उन्नति नहीं की है; आज जो कुछ मैं कह रही हूं वह इससे पहले कही बातसे किसी कदर ऊंची नहीं होगी। मन तो सदाकी भांति ही तुच्छ और अयोग्य बना हुआ है। और भला उसके पास ऐसी निराली बात है ही क्या जिसे वह प्रकट करे? कोई आश्चर्यजनक अनुभूति उसे नहीं हुई है; सभी अनु-भूतियां अब साधारण और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। ऐसा कोई नवीन विचार भी नहीं है जो शक्तिशाली या असाधारण हो, वैसा एक भी विचार नहीं है जो नये आविष्कारके हर्षसे हमें भर देता हो; सभी विचार, चाहे वे जो भी रूप लेकर हमारे सामने क्यों न आवें, अब ऐसे पुराने मित्र मालूम होते हैं जिन्हें हम चलते-चलते सप्रेम अभिवादन तो कर लेते हैं पर जिनसे किसी अप्रत्याशित वस्तुकी आशा नहीं करते। अब कोई साव-धानीके साथ किया हुआ और पूरा ब्योरेवार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी नहीं है जो हमारे अंदर अभीतक गुप्त पड़ी हुई किसी गुहाको खोज निकाले। अब आंतरिक जटिलताओंका कोई अस्तित्व नहीं है; वे तो आस-पासकी समस्त मनोवैज्ञानिक वृत्तियोंकी यथार्थ और निरपेक्ष प्रतिच्छायाएं हैं। और आधारमें जो कुछ घटित हो रहा है उसका वर्णन करना तो एक साथ ही जटिल और अरुचिकर होगा, जिस तरह कि जगत्‌के प्रायः एकदम अवचेतन अंधप्रयासों तथा भूल-भ्रांतियोंका विवरण होता है।

दीनता, ऐ दीनता! तूने मुझे एक सूखे और ऊसर रेगिस्तानमें डाल दिया है, और फिर भी यह रेगिस्तान मेरे लिये मधुर है जैसी कि, हे भग-

वान्, तेरे पाससे आनेवाली सभी चीजें होती हैं। इस मलिन और वर्णहीन धूसरतामें, इस अनुज्ज्वल, राख जैसे रंगवाले प्रकाशमें मैं अंतहीन प्रसारका आस्वाद प्राप्त करती हूं; सागरकी विशुद्ध वायु, मुक्त शिखरोंका शक्तिशाली श्वास-प्रश्वास नित्य मेरे हृदयमें भर रहा है और मेरे जीवनमें ओतप्रोत हो रहा है; मेरे अंदर और मेरे चारों ओरकी सभी बाधाएं दूर हो गयी हैं; और मैं अपनेको उस पक्षीकी तरह अनुभव करती हूं जो एक अबाध उड़ान लेनेके लिये अपने पंख खोले हुए है। परंतु वह पक्षी पहाड़के ऊपर चुप बैठा हुआ है, उसके पंख धूसर, कोमल आकाशकी ओर फैले हुए हैं, वह उड़नेके लिये बैठा किसी चीजके घटित होनेकी प्रतीक्षा करता है, किंतु जिस चीजकी प्रतीक्षा करता है उसे वह जानता नहीं। उसकी उड़ानको रोकने-वाला अब उसका कोई बंधन नहीं है, इसलिये उड़नेकी बात वह नहीं सोचता। अपनी स्वतंत्रताके विषयमें वह सचेतन है पर उसका वह उपभोग नहीं करता, और वह दूसरोंकी ही तरह, दूसरोंके ही बीच, अंधकारपूर्ण और घने कुहासेके अंदर मिट्टीपर आसन जमाये बैठा है।

४ दिसंबर, १९१६

जब तूने अनुमति दी है, हे भगवान्, तब मैं फिरसे नित्य, कुछ थोड़े-से क्षणोंके लिये, एक कामसे अलग होकर तेरे पास आना आरंभ करूंगी — उस कामको यद्यपि मैं करती हूं फिर भी मैं यह जानती हूं कि वह पूर्ण रूपसे आपेक्षिक है। तूने मुझे कर्मके अंदर, और साधारण चेतनाके अंदर डुबा रखा था, और अब तू अपनी ओर मेरी उड़ानको नियमित रूपसे जारी रखने, निश्चल-नीरवता और शाश्वत चेतनाके अंदर थोड़ा विचरण करनेकी शक्ति प्रदान कर रहा है।

हे भगवान्! तेरी इच्छा थी कि आधार अधिक विशाल और अधिक महान् बने। वह फिरसे, कम-से-कम आंशिक और सामयिक रूपमें, अज्ञान और अंधकारमें पैठे बिना वैसा नहीं कर सका।

इसी अज्ञान और इसी अंधकारको वह अब तेरे चरणोंमें समर्पित करने आया है — यह तो उसके लिये अत्यंत सामान्य परीक्षा है। मैं तुझसे यह नहीं मांगती कि शांतिपूर्ण और विशुद्ध मिलनके उन क्षणोंमें तू जो दिव्य चेतना मुझे प्रदान करता है उसे तू मुझे एक सतत अनुभूतिके रूपमें प्रदान कर। मैं तो बस यह मांगूंगी कि तू उन क्षणोंको और भी

अधिक शांतिपूर्ण और पवित्र बना, नित्य-निरंतर चेतनाको और भी अधिक सुदृढ़ तथा प्रोज्ज्वल बनाता रह जिसमें कि वह चेतना प्रतिदिन एक नयी शक्ति और नया ज्ञान लेकर अपने कार्यपर वापस जा सके।

आनंदमय एकात्मताके इन थोड़े-से मुहूर्त्तोंके द्वारा तू मुझे याद दिलाता है कि तूने मुझे सचेतन रूपमें अपने साथ युक्त होनेकी सामर्थ्य प्रदान की है। और दिव्य तथा छंदोमय सुसंगति मेरी समूची सत्ताको अधिकृत कर रही है।

किंतु सब शब्द मस्तिष्कके अंदर, मानों परदेके पीछे, एक साथ मिलित हो रहे हैं और आज कोई भी बात मेरी कलमसे निकल नहीं रही है...।

५ दिसंबर, १९१६

तूने कृपा करके मुझे शांति प्रदान की है जिसमें सब व्यक्तिगत सीमाएं विलीन हो जाती हैं, जिसमें 'एक' सबमें होता है, तथा और भी अधिक स्पष्ट रूपमें कहें तो, सब 'एक'में होता है। परंतु मन इस दिव्यानंदमें डूब गया है और अब अपनी बातको शब्दोंमें व्यक्त करनेकी शक्ति उसे नहीं मिल सकती।

(अनुभूतिका स्थूल रूपमें वर्णन)

"पृथ्वीकी ओर मुड़ो।" अचल-अटल तादात्म्यकी नीरवतामें यह नित्यका आदेश सुनायी पड़ा। तब चेतना सबके अंदर विद्यमान 'एकमेव'की चेतना बन गयी। "सर्वत्र तथा उन सब लोगोंमें, जिनमें तू उस एकको देख सकती है, भगवान्‌के साथकी इस एकात्मताकी चेतना जाग उठेगी। ध्यान देकर देख...।" वह जापानकी एक सड़क थी जिसे सुस्पष्ट रंगोंसे सुन्दरता-पूर्वक सुसज्जित मनोरम लालटेनोंसे अत्यधिक आलोकित किया गया था और जैसे-जैसे मेरे अंदरकी सचेतन सत्ता सड़कपर आगे बढ़ती गयी वैसे-वैसे प्रत्येकके अंदर तथा सबके अंदर भगवान् उसे दिखायी देने लगे। एक छोटा-सा मकान पारदर्शक बन गया जिसके भीतर एक औरत दिखायी पड़ने लगी। वह उस घरमें एक "टाटामी" (गद्दी) के ऊपर बैठी थी और एक बहुमूल्य बैंगनी रंगका 'क्रिमोनो' पहने हुए थी जिसपर सोने तथा गहरे रंगोंका काम किया हुआ था। वह स्त्री सुन्दर थी और उसकी उम्र शायद पैंतीससे चालीस वर्षके बीचकी होगी। वह एक सुनहला "सामिसेन" बाजा बजा रही

थी। उसके पैरोंके पास एक नन्हा-सा बच्चा बैठा था। और उस स्त्रीके अंदर भी मुझे भगवान् दिखायी पड़े।

७ दिसंबर, १९१६

हे भगवान्! मैं एकदम ठीक अर्थमें यह कह सकती हूं कि न तो मेरी कोई साधना है न मुझमें कोई गुण है; कारण, तेरी सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको जो सब चीजें महिमान्वित करती हैं उन सबसे मैं पूर्ण रूपसे वंचित हूं। ऊपरसे देखनेमें मेरा जीवन यथासंभव अत्यंत साधारण, अत्यंत सामान्य है; और भीतर वह क्या है? एक प्रशांत सुस्थिरताके सिवा और कुछ नहीं और उसमें न तो कोई परिवर्तन है और न कोई अप्रत्याशित वस्तु; यह एक ऐसी चीजकी स्थिरता है जो सिद्ध हो चुकी है और जिसमें अब कोई खोजकी वृत्ति नहीं; जो जीवन और वस्तुओंसे अब कोई आशा नहीं रखती; जो किसी लाभकी भावना रखकर कार्य नहीं करती और यह पूरी तरह जानती है कि यह कार्य किसी भी दृष्टिसे, चाहे उसकी प्रेरणाकी दृष्टिसे हो या उसके परिणामकी दृष्टिसे, मेरा अपना नहीं है; जो ज्ञानपूर्वक यह चाहती है कि एकमात्र परात्पर इच्छा-शक्ति ही उसके अंदर इच्छा करे। यह एक ऐसी स्थिरता है जो कि संपूर्ण रूपसे एक निर्विवाद निश्चयतासे, एक विषयहीन ज्ञानसे, एक अकारण आनंदसे, चेतनाकी एक पूर्ण कालातीत स्वयंभू स्थितिसे गठित है। यह एक ऐसी अचंचलता है जो बाह्य जीवनके क्षेत्रमें चलती-फिरती तो है, पर वह उस क्षेत्रसे कोई संबंध नहीं रखती और न उससे अलग हट जानेकी ही चेष्टा करती है। मैं किसी चीजकी आशा नहीं करती, किसी चीजकी अपेक्षा नहीं करती; मैं किसी चीजकी कामना नहीं करती, किसी चीजकी अभीप्सा नहीं करती, और, सर्वोपरि बात तो यह है कि, मैं कुछ भी नहीं हूं। और फिर भी एक सुख, एक शांत और अविमिश्र सुख, एक ऐसा सुख जो अपने-आपको नहीं जानता और जिसे अपनी सत्ताकी ओर ताकनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, इस शरीर-रूपी गृहमें निवास करने आया है। यह सुख तो तू ही है, हे प्रभु, और यह स्थिरता भी तू ही है, हे नाथ! क्योंकि ये दोनों ही मानवीय वृत्तियां बिलकुल नहीं हैं और मनुष्योंकी इंद्रियां न तो इन्हें समझ सकती हैं और न इनका आस्वादन ही कर सकती हैं। इस तरह, हे परमेश्वर, एकमात्र तू ही इस शरीरमें वास कर रहा है और यही कारण

है कि यह देह-रूपी आवास एक ऐसे अद्भुत अधिवासीके लिये अपनेको इतना दीन और इतना मलिन अनुभव करता है।

८ दिसंबर, १९१६

आज सवेरे हम लोगोंकी बातचीत इस प्रकार हुई, हे भगवान्:

तूने प्रेरणा-रूपी अपनी जादूकी छड़ी घुमाकर प्राण-पुरुषको जगा दिया और उससे कहा: "जग, संकल्प-शक्तिके धनुषको चढ़ा, काम करनेका समय शीघ्र ही आयेगा।" सहसा जगकर प्राण-पुरुष उठ बैठा, उसने अंगड़ाई ली और सुदीर्घ तंद्राकी धूलिको झाड़ फेंका, अपने अंग-प्रत्यंगोंके लचीलेपनको देखकर वह समझ गया कि वह चिरदिन बलिष्ठ तथा कर्म करनेके लिये तत्पर था। और उसने एक ज्वलंत विश्वासके साथ तेरी महाशक्तिशाली पुकारका उत्तर दिया: "मैं यह रहा, हे भगवान्! तू मुझसे क्या आशा करता है?" किंतु कोई दूसरा शब्द उच्चारित होनेसे पहले ही मन अपनी बात कहनेके लिये बीचमें कूद पड़ा, और, अपने आनुगत्यके चिह्नके रूपमें वह परम प्रभुके सामने नतमस्तक होकर बोला: "हे नाथ! तू जानता ही है कि मैं तुझे सर्मापित हो चुका हूं और अपनी शक्तिभर तेरी परात्पर इच्छा-शक्तिका विश्वासपात्र और विशुद्ध यंत्र बननेकी चेष्टा करता हूं। परंतु मैं अपनी दृष्टि जब पृथ्वीकी ओर फेरता हूं तब देखता हूं कि मनुष्योंका कर्म-क्षेत्र, वे चाहे कितने महान् क्यों न हों, सर्वदा भयानक रूपसे संकीर्ण होता है। जो मनुष्य अपने मनमें और यहांतक कि अपनी प्राण-सत्तामें भी विश्वकी तरह, अथवा कम-से-कम पृथ्वीके समान विशाल होता है, वह जैसे ही काम करना आरंभ करता है वैसे ही स्थूल कर्मकी संकीर्ण सीमाओंके अंदर बंद हो जाता है, अपने क्षेत्र तथा अपने परिणामों-से बहुत अधिक जकड़ जाता है। चाहे कोई मनुष्य धर्म-संस्थापक हो या राजनीतिक सुधारक, कर्ममें प्रवृत्त होते ही वह एक सर्वसामान्य भवन-का एक क्षुद्र और नगण्य पत्थर बन जाता है, मानव-क्रियावली-रूपी विशाल बालुका-पर्वतके अंदर एक बालूका कणभर रह जाता है। अतएव मैं तो कोई ऐसा करणीय कर्म नहीं देख पाता जो इतना मूल्य रखता हो कि उस-पर समूची सत्ता एकाग्र हो जाय और उसे ही अपने जीवनका मूल कारण बना ले। प्राण-पुरुषको दुःसाहसिक कार्य करनेमें आनंद आता है; पर किसी शोचनीय दुःसाहसिक कार्यमें, जो कि तेरी उपस्थितिसे अवगत यंत्रके लिये

अनुपयुक्त हो, उसे अपने-आपको झोंक देनेकी इजाजत देनी चाहिये ?" उत्तर आया — "किसी बातका भय मत कर। प्राण-पुरुषको तबतक गतिशील नहीं होने दिया जायगा, तुझसे तबतक अपनी संगठनकारिणी क्षमताओंके समस्त प्रयासको प्रयुक्त करनेके लिये नहीं कहा जायगा जबतक कि प्रस्तावित कार्य इतने पर्याप्त रूपमें विस्तृत और बहुमुखी न हो जाय कि उसमें सत्ताकी सभी शक्तियोंको पूर्ण रूपसे तथा सफल रूपसे काममें लगाया जा सके। वह कार्य क्या होगा यह तू उस समय समझेगा जब वह तेरे सामने उपस्थित होगा। परंतु मैं तुझे अभीसे सावधान किये देता हूं जिसमें कि तू उसे अस्वीकार न करनेके लिये अपने-आपको तैयार कर सके। मैं साथ ही तुझे तथा प्राण-पुरुषको भी यह चेतावनी दे रहा हूं कि अब स्थिर, एक-रूप और शांतिपूर्ण तुच्छ जीवनका समय समाप्त हो जायगा। अब तो रहेगा प्रयास, संकट, अप्रत्याशित अवस्था, भय-शंका, पर साथ ही तीव्रताका समय। तू इसी कार्यके लिये उत्पन्न हुआ था। इतने लंबे वर्षोंतक तू इसे पूर्ण रूपसे भूल जानेके लिये सहमत हुआ था, क्योंकि अभी समय नहीं आया था और साथ ही तू तैयार भी नहीं हुआ था, किंतु अब यह चेतना लेकर तू जाग उठ कि यही सचमुचमें तेरा जीवन-व्रत है और बस इसीके लिये तू सृष्ट हुआ था।"

प्राण-पुरुष, सबसे पहले, वह चेतना लेकर जाग पड़ा और अपने स्वभाव-जनित उत्साहके साथ बोल उठा, "मैं तैयार हूं, हे भगवान् ! तू मेरे ऊपर निर्भर कर सकता है !" मन भी, जो थोड़ा दुर्बल और भयभीत पर अनुगत था, उसके बाद बोल उठा : "जो तू चाहता है वही मैं भी चाहता हूं। तू तो अच्छी तरह जानता है, हे भगवान्, कि मैं संपूर्ण रूपसे तेरा हूं। परंतु क्या अपने कर्तव्यके उपयुक्त मैं बन सकूंगा, क्या मुझमें उस बातको सुव्यवस्थित करनेकी शक्ति है जिसे संपन्न करनेकी योग्यता प्राण-पुरुषमें विद्यमान है ?" — "इसीके लिये तुझे तैयार करनेकी दृष्टिसे मैं इस समग्र कार्य कर रहा हूं; इसी कार्यके लिये तू नमनशीलता एवं समृद्धि प्राप्त करनेकी एक साधनामेंसे गुजर रहा है। किसी बातके लिये तू दुश्चिंता मत कर : आवश्यकता होनेपर शक्ति आती ही है। प्राण-पुरुषके साथ-साथ तूने अपनेको बहुत छोटे-छोटे कार्योंमें आबद्ध कर रखा था — क्योंकि उस समय वैसा करना लाभदायी था, जिन चीजोंको तैयार होना था उन्हें तैयार होनेके लिये समय देनेकी जरूरत थी। परंतु ठीक इसी कारण तू उन सब क्षुद्रताओंसे बाहर निकलकर अपनी सच्ची ऊंचाईसे मेल खानेवाले कर्मक्षेत्रके अंदर निवास करनेमें असमर्थ हो, ऐसी बात नहीं। अनंत कालसे मैंने तुझे पृथ्वीपर अपना विशिष्ट प्रतिनिधि बननेके लिये चुन रखा है — अदृश्य या गुप्त

रूपमें ही नहीं वरन् ऐसे रूपमें बननेके लिये चुना है जिसे सब मनुष्योंकी आंखें देख सकें। और जो कुछ बननेके लिये तू सृष्ट हुआ है वह तू अवश्य बनेगा।"

सदाकी भांति, हे प्रभु, जब गहराईमेंसे आनेवाली वाणी नीरव हो गयी तब तेरे सर्वोच्च और सर्वशक्तिशाली आशीर्वादने मुझे संपूर्ण रूपसे आवेष्टित कर लिया।

और एक मुहूर्त्तके लिये यंत्री और यंत्र बस एक हो गये: अद्वितीय, शाश्वत, अनंत।

९ दिसंबर, १९१६

ध्यानसे बाहर निकलनेके बहुत देर बाद मुझे यह स्पष्ट पता चला कि ठीक क्या चीज हुई थी।

फिर एक बार आज संध्या-समय मैं उसी स्थितिमें जा पहुंची जहां चेतना अपनेको विभिन्न उपादानोंकी, चेतनाके व्यष्टिगत और समष्टिगत केंद्रोंकी एक बहुत बड़ी संख्यामें, वहां कोई एक विशेष कार्य अथवा यों कहें कि उन उपादानोंसे जितने भी कार्य हो सकते हैं उन्हें संपन्न करनेके लिये, विच्छिन्न कर देती है।

बिजलीकी चमककी तरह कोई-न-कोई बिंदु अचानक सुस्पष्ट रूपमें प्रकट हो उठता है और फिर एक दूसरे बिंदुको स्थान देनेके लिये विलीन हो जाता है। कार्य करनेवाले चेतनाके प्रत्येक उपादानको अपने कार्यका स्पष्ट ज्ञान रहता है; परंतु एक साथ ही समग्रका ज्ञान बनाये रखना असंभव प्रतीत होता है, कारण, वैसा करनेसे वह चेतना अत्यंत जटिल हो जाती है और उस कर्मकी पूर्तिके लिये उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं होती।

१० दिसंबर, १९१६

कभी-कभी ऊपरसे दिखायी देनेवाली कुछ दुर्बलताएं, किसी अत्यंत सुस्पष्ट पूर्णताकी तुलनामें तेरे कार्यके लिये कहीं अधिक उपयोगी होती हैं, हे भगवान्! अभिव्यक्त परिपूर्णता केवल उसी व्यक्तिकी विशेष संपत्ति बननेके उपयुक्त प्रतीत होती है जो एक साथ ही संसार तथा संसारमें होनेवाले कार्यसे पृथक्

हो गया है। परंतु जिसे तूने पृथ्वीपर अपने एक कर्मीके रूपमें चुन लिया है, उसके लिये, मैं अच्छी तरह देख रही हूं कि, कुछ दुर्बलताएं, कुछ अपूर्णताएं (बशर्त्ते कि वे ऊपरसे दिखायी देनेवाली ही हों और सच्ची न हों) तेरी दृष्टिमें अधिक उपयोगी होती हैं, और, फलतः, स्वयं पूर्णतासे भी कहीं अधिक पूर्ण होती हैं। और परिपूर्णताके बाह्य रूपका परित्याग करना पृथक् अहंकारके, अज्ञानके समग्र त्यागका ही एक अंग है।

हे नाथ! क्या इसीलिये तू मुझे केवल विरले अवसरोंपर ही संपूर्ण तादात्म्य और परिपूर्ण चेतनाका परमानंद प्रदान करता है?

पहले तूने मेरी आदत बिगाड़ दी थी; तूने मुझे इतने सतत रूपमें अपनी उपस्थितिके अंदर निवास करने दिया था...। परंतु अब ऐसा मालूम होता है कि तू मुझे यह सिखाना चाहता है कि किस प्रकार अंधकारके बीच भी अपरिवर्तनशील आनंदको पाया जा सकता है और चेतना तथा अचेतनाके बीच कोई पसंदगी-नापसंदगी नहीं रखी जाती।

समस्त वासनासे रहित होकर वासनाके साथ जीवन बितानेवालोंकी स्थितिमें डूब जाना... कितनी अद्‌भुत बात है!

किंतु सबसे अद्‌भुत बात यह है कि वहां भी मैं पूर्णतः शांत, स्थिर और संतुष्ट हूं, और इस अंधकारमें भी एक महान् शक्तिका अनुभव करती हूं, तथा इस रात्रिके गर्भमें भी स्वर्गके अनुपम छंद सुनायी पड़ सकते हैं।

हे सर्वेश्वर! तेरे राज्यमें हमारा प्रत्येक नवीन पदक्षेप आश्चर्यका एक नया कारण होता है।

१२ दिसंबर, १९१६

मेरा मन इतनी छोटी-छोटी बातोंकी ओर निरंतर मुड़े रहनेके कारण, व्यावहारिक तथा तात्कालिक भावनाओंके इतने संकीर्ण वृत्तके अंदर चक्कर काटते रहनेके कारण घबड़ा उठा है।

उसने तुझे सबके अंदर देखना सीख लिया है, हे प्रभु, और वह अत्यंत क्षुद्र वस्तुके अंदर भी तुझे देखता एवं तेरे कारण ही आनंदित होता है। किंतु जब वह इस प्रकार एकदम तुझसे ही आनंद पाता है तथा अत्यंत तुच्छ और साथ ही अत्यंत अधिक विशाल एवं महान् वस्तुओं तथा क्रियाओं-के अंदर तुझे पहचान सकता है तब उसे इस बातपर आश्चर्य होता

है कि एक वस्तु दूसरीके ऊपर प्राधान्य कैसे पा जाती है। बहुत बार महीनों उसने इस प्रवृत्तिके विरुद्ध प्रतिक्रिया करनेका प्रयास किया है, पर सर्वदा ही उसका प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ है; तो क्या इसका कारण यह है कि तू चाहता है कि ऐसा ही हो, अथवा इसका कारण यह है कि मन दूसरे प्रकारका बननेमें असमर्थ है? उसने तुझसे यह प्रश्न पूछा, और, सदाकी भांति, तेरी मुस्कानने आकर उसे सांत्वना प्रदान की; परंतु सुस्पष्ट उत्तर बिलकुल ही सुनायी नहीं पड़ा।

अब इस मनके लिये सबसे छोटी वस्तु भी एक अतल रहस्य बन जाती है, और सब कुछ नित्य-नवीन आश्चर्यका कारण बन जाता है।

१४ दिसंबर, १९१६

हे परमेश्वर! मैं तुझे नमस्कार करती हूं और तेरे सम्मुख नतमस्तक हो रही हूं। पर मैं कुछ लिखूंगी नहीं, क्योंकि इस समयके ध्यानसे संबंध रखनेवाले एक प्रश्नका उत्तर देते हुए तूने अभी मुझसे कहा है: "हम लोगोंके बीच जो एक गुप्त वार्तालाप हुआ है उसे तेरे अपने भौतिक कानोंको भी नहीं सुनना चाहिये।"

२० दिसंबर, १९१६

दिन बीत गये, बाह्यतः वे तूफान और उथल-पुथलके दिन थे, पर अपने सत्य-स्वरूपमें प्रशांत और सबल थे, तेरे दिव्य संकल्पको प्रतिफलित करते थे; वे बीत गये और तेरी अथक दिव्य लीलाके समस्त अप्रत्याशित तथा वैचित्र्यमय वैभवको विस्तारित, प्रकाशित और परिपुष्ट करते गये। और कितना आश्चर्य होता है उससे जब हम यह देखते हैं कि तेरी शाश्वत संकल्प-शक्तिद्वारा उत्पन्न गतिधाराएं अनंत रूपसे एक-दूसरीमें ओत-प्रोत हो रही हैं; जब हम यह जानते हैं कि यह सब शाश्वत कालसे बना हुआ है और केवल हमारी अपूर्ण वृत्तियोंके लिये यह सब घटनाओंकी एक निरवच्छिन्न परंपरा प्रतीत होती है जिसके अंदर हम सदिच्छासंपन्न तथा अज्ञानी कर्मी हैं। हम ऊपरसे देखनेमें उन लोगोंकी अचेतनता

तथा अंधताके साथ कार्य करते हैं जो कुछ भी नहीं जानते, और फिर भी मैं जानती हूं, और जब मैं कार्य करती हूं तब मैं साक्षी भी हूं। परंतु अभी मैं इतने पर्याप्त रूपमें शुद्ध नहीं हो गयी हूं कि तू मेरी आंखोंके सामने संपूर्ण प्रभावों और परिणामोंको खोलकर रख दे; मैं केवल अंशतः और अपूर्णतः ही उन्हें कार्यसे पहले जानती हूं तथा कार्यके कारणको जानकर तथा तू मुझसे जो कुछ आशा करता है उसका पूरा ज्ञान प्राप्त कर कार्य करनेकी अनुमति मुझे दी गयी है। कब मुझे वह पवित्रता प्राप्त होगी, हे प्रभु? पर उसके लिये भी अब मैं अधीर नहीं हूं और न उसके लिये याचना ही करती हूं। मैं बस देख रही हूं कि किस हदतक तेरा वैभव इस तुच्छ तथा हीन यंत्रके अंदर तमसाच्छन्न और आच्छादित हो रहा है; पर, तू, तू तो जानता है कि यह सब ऐसा क्यों है; तथा तू अपने शाश्वत उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये इन सब अंधकारों एवं दुर्बलताओंका उपयोग भी करता है।

मेरी अंतरात्मा जितना-सा तेरे संबंधमें समझ सकती है और जान सकती है उसीके सम्मुख प्रार्थना कर रही तथा उसे प्रेमके साथ प्रणाम कर रही है। मेरी अंतरात्मा प्रार्थना कर रही है तथा एक ऐसे प्रबल आवेगके साथ तुझे अपने-आपको समर्पित कर रही है जिसकी परिणति एकात्मतामें होती है। मेरी अंतरात्मा प्रार्थना कर रही है... और मेरा शरीर भी; और मेरा मन एक नीरव परमानंदके अंदर मौन हो रहा है।

(ध्यानके बाद शामको साढ़े-पांच बजे यह वाणी सुनायी पड़ी :)

"चूंकि तू मेरी ओर एकाग्र होकर ताक रही है, इसलिये इस संध्या-समय तुझसे कुछ कहूंगा। मैं तेरे हृदयमें एक हीरा देख रहा हूं जो सुनहले प्रकाशसे घिरा हुआ है। वह एक साथ ही शुद्ध और उष्ण है ताकि वह नैर्व्यक्तिक प्रेमको व्यक्त कर सके। किंतु एक ऐसे रत्नको तूने बैंगनी रंगकी धारीवाले इस काले डिब्बेमें क्यों बंद कर रखा है? और उसका सबसे ऊपरका आवरण ज्योतिहीन घने नीले रंगका है, मानों सच्चे अंधकारसे बना हुआ वस्त्र हो। देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि तू अपनी ज्योति दिखलानेसे डरती है। ज्योति विकीर्ण करना सीख और तूफानसे भय मत कर; वायु हमें किनारेसे बहुत दूर तो ले जाती है पर हमें वह संसारका दिग्दर्शन भी करा देती है। क्या तू स्नेह-प्रेममें भी मितव्ययी होगी? परंतु प्रेमका मूल तो अनंत है। क्या तू यह भय करती है कि लोग तुझे गलत समझेंगे? पर कब तूने देखा है कि मनुष्य भगवान्को ठीक-

ठीक समझ सके हैं? और शाश्वत सत्य यदि तेरे अंदर कोई ऐसी चीज पाये जिसके द्वारा वह अभिव्यक्ति हो सके तो फिर बाकी चीजोंका तेरे लिये क्या महत्व है? तू उस तीर्थयात्रीकी जैसी है जो मंदिरसे बाहर निकला है और एक भीड़के सामने दरवाजेपर खड़ा होकर अपनी बहु-मूल्य गुप्त बातको, अपने परम आविष्कारके मर्मको प्रकट करनेसे पहले हिचकिचा रहा है। सुन, कुछ दिनोंतक मुझे भी हिचकिचाहट हुई थी, क्योंकि पहलेसे ही मैं इन दोनों चीजोंको, अपनी शिक्षा तथा उसके परि-णामोंको, अभिव्यंजनाकी अपूर्णता तथा उससे भी अधिक समझनेकी शक्ति-की अपूर्णताको स्पष्ट देखता था और फिर भी मैं पृथ्वी तथा मनुष्योंकी ओर मुड़ा और उनके पास अपना संदेश पहुंचाया। 'पृथ्वी और मनुष्यों-की ओर मुड़' — यह आदेश क्या तू सर्वदा अपने हृदयमें नहीं सुनती? — हृदयमें, क्योंकि हृदय ही वह चीज है जो भगवत्कृपाके लिये तृषित व्यक्तियोंके लिये एक ईश्वरीय संदेश वहन करके लाता है। अब कोई भी चीज इस हीरेपर आक्रमण नहीं कर सकती। इसकी गठन इतनी पूर्ण है कि यह आक्रमणकी संभावनासे रहित हो गया है और इससे जो मधुर प्रकाश छिटक रहा है वह मनुष्योंके हृदयके अंदर बहुत-सी चीजोंको परि-वर्तित कर सकता है। तुझे अपनी शक्तिपर संदेह हो रहा है और तू अपने अज्ञानसे डरती है? ठीक यही चीज है जो ताराहीन-रात्रि-रूपी इस काले आवरणसे तेरी शक्तिको ढके हुए है। तू मानों गुप्त रहस्यकी देहलीपर खड़ी होकर हिचकिचा और कांप रही है, क्योंकि अब तुझे अभिव्यक्तिका रहस्य शाश्वत मूल सत्ताके रहस्यसे भी कहीं अधिक भयंकर और अधिक अपरिमेय प्रतीत होता है। परंतु तुझे साहस करना होगा तथा गहराईसे उठनेवाली आज्ञाका पालन करना होगा। मैं स्वयं आकर तुमसे यह बात कह रहा हूं, क्योंकि मैं तुझे जानता और प्यार करता हूं जैसे कि तू पहले मुझे जानती और प्यार करती थी। मैं स्पष्ट रूपमें तेरी दृष्टिके सामने प्रकट हुआ हूं ताकि तू तनिक भी मेरी बातपर संदेह न करे। और साथ ही तेरी आंखोंको मैंने तेरा हृदय भी दिखा दिया है ताकि तू यह देख सके कि परम सत्यने क्या संकल्प किया है और उसके अंदर तू अपनी सत्ताके दिव्य विधानको खोज सके। बात अभी भी तुझे बहुत कठिन प्रतीत होती है: किंतु एक दिन आयेगा जब तू आश्चर्य करेगी कि भला इतने दिनोंतक यह सब कैसे अन्यथा प्रतीत होता रहा।"

(शाक्य मुनि)

२१ दिसंबर, १९१६

हे प्रभुवर! जो लोग सबसे उत्तम रूपमें तुझे जान चुके हैं उनमेंसे एक व्यक्तिके मुंहसे तूने मेरे साथ बातचीत की है, निश्चय ही इसलिये कि मैं तेरी शिक्षाको अधिक अच्छे रूपमें समझ सकूं (तो क्या मैं तेरे सीधे निर्देश-के लिये बहरी हो गयी थी?)। और फिर भी मैं अभी यह नहीं समझ पाती कि मुझे क्या करना चाहिये। तू जानता है कि कितनी मुझे प्रसन्नता होगी यदि तेरी कृपासे मैं संपूर्ण रूपसे दिव्य प्रेमके एक कुंडके रूपमें परिणत हो जाऊं — उस प्रेमके कुंडमें जो तेरे शाश्वत सत्यकी सर्वप्रथम और उच्चतम अभिव्यक्ति है, उस प्रेमके कुंडमें जो एक साथ ही इस जगत्‌में तेरे सत्यका पूर्णतम व्यक्त रूप है तथा पथभ्रष्ट मानवचेतनाको उस सत्यतक ले जानेवाला अत्यंत सीधा पथ है। उस समय, जब कि मैं अभीप्सा कर रही थी, कामना कर रही थी, याचना कर रही थी, क्या कितनी ही बार मैंने तुझसे यह कृपा करनेकी प्रार्थना नहीं की थी कि कर्म-संबंधी मेरे वर्तमान आदर्शके अनुकूल यह स्थिति मुझे प्राप्त हो? और उस समय मुझे ऐसा लगा था कि जिस दिन मैं समस्त अहंकारपूर्ण अभि-रुचिसे मुक्त हो जाऊंगी उस दिन तू इस पार्थिव व्यक्ति-सत्ताको पृथ्वीपर अपने प्रेमकी अभिव्यक्तिके यंत्रके रूपमें वरण करेगा। और अब जब कि तू मुझसे इस बातकी मांग करता है, पहलेसे कहीं अधिक मैं असमर्थताको अनुभव करती हूं। इतने दिनोंतक मैं समझती थी कि मैं जानती हूं कि प्रेम क्या है; और अब जब कि मैं कोई ऐसी चीज नहीं देखती जिसे प्रेम नामसे न पुकारा जा सके, मैं ऐसी कोई चीज भी अब नहीं देखती जिसे विशेष रूपसे प्रेम कहा जा सके। और फिर वह चीज कैसे होऊं जिसकी मैं अब कोई परिभाषा ही नहीं दे सकती, वह स्थिति कैसे पाऊं जिसे मैं अब पहचान ही नहीं सकती? और फिर भी तूने कल मुझे दिखा दिया कि मैंने एक काले आवरणके नीचे तेरी एक अत्यंत बहुमूल्य और अत्यंत शक्तिशाली देनको बंद कर रखा है...। हे नाथ! मेरी समूची सत्ता तेरी वाणीका अनुसरण करनेकी, तेरे विधानके अनुकूल बननेकी अभीप्सा करती है; परंतु अपनी बाहरी चेतनामें वह नहीं जानती, उसने नहीं समझा है कि तू उससे क्या चाहता है। वह अच्छी तरह अनुभव करती है कि अभी उसका प्रेम एक निष्क्रिय स्थिति है और तू उसे एक सक्रिय स्थितिमें नवजन्म देना चाहता है; परंतु एक स्थितिसे दूसरीमें कैसे पहुंचा जाय, यह बात उसकी समझसे परे रह जाती है। वह जानती है कि सक्रिय प्रेमकी यह स्थिति सतत और निर्वैयक्तिक होनी चाहिये, अर्थात् परिस्थितियों और व्यक्तियोंसे एकदम

स्वतंत्र होनी चाहिये, कारण किसी व्यक्ति या परिस्थितिपर विशेष रूपसे वह केंद्रित नहीं हो सकती और न उसे होना ही चाहिये; और इस बात-में वह वर्तमान निष्क्रिय प्रेमकी स्थितिसे मिलती-जुलती होगी जो शुद्ध, अपरिवर्तनशील और नैर्व्यक्तिक है। किंतु जो बात वह अभी भी नहीं समझती वह यह है कि शुद्धता, अपरिवर्तनशीलता तथा निर्वैयक्तिकताके जो गुण आधारमें अभी अंतर्निहित हैं उन्हें बनाये रखते हुए भी वह कैसे कर्ममें संलग्न हो सकती है।

इसी कारण आज शामको मैंने भगवान् मित्रकी प्रार्थना की है जो तेरे प्रेमके सत्यको इतने पूर्ण रूपमें व्यक्त करते हैं; मैंने उनसे अनुनय किया है कि वह मेरी सहायता करने आएं, मेरे अज्ञानांधकारको आलोकित कर दें, मेरे शंका-संदेहोंको विलीन कर दें, मेरी दुविधाओंको परास्त कर दें, तथा मेरी अंतिम बाधाओंको भंग कर इस स्थूल यंत्रपर अधिकार जमा लें ताकि तू इससे जो कुछ बननेकी आशा करता है वही यह बन सके।

परंतु मेरे शब्द कायरतासे भरे हैं और मेरी वाणी निपुणतासे खाली है तथा मैं नहीं जानती कि मित्रदेवने मेरी प्रार्थना सुनी है या नहीं।

२४ दिसंबर, १९१६

हे भगवान्! तूने मेरे मनको तो यह नहीं जानने दिया है कि क्या होने जा रहा है तथा कैसे वह होगा, फिर भी तूने मुझे आज संध्यासमय इस बातका पूर्वानुभव प्रदान किया है कि तू मुझसे क्या आशा करता है, केवल पूर्वानुभव, क्योंकि जो अद्भुत पथ तूने मेरे सामने आधा खोल रखा है उसपर यह एक सर्वप्रथम और अत्यंत भय-संकुल पदक्षेप ही है। यह ठीक एक बढ़ते हुए ज्वारके समान था जिससे नदी उमड़ पड़ती है, निरंतर तबतक उमड़ती रहती है जबतक कि वह अपने कल्याण-कारी जलके द्वारा प्रत्येक चीजको डुबा नहीं देती। और इस बार मेरा हृदय इस तरह उमड़ पड़ा है, जिस प्रेमको तूने इसके अंदर प्रवाहित किया है उसकी शक्तियोंके दबावके कारण उमड़ पड़ा है; और समूची सत्ताने ही प्यार करना आरंभ कर दिया है, उसने अधिकाधिक, बिना किसी सुनिश्चित उद्देश्यके, एक साथ ही, किसी भी वस्तुको नहीं और प्रत्येक वस्तुको ही, जिसे वह जानती है और जिसे वह नहीं जानती, जिसे वह देखती है और जिसे उसने कभी नहीं देखा है, उस सबको प्यार करना आरंभ कर दिया

है; धीरे-धीरे यह प्रसुप्त प्रेम व्यक्त प्रेम बन गया है, यह प्रत्येक चीजके ऊपर और सभी चीजोंके ऊपर अपनी कल्याणकारी लहरें फैलानेके लिये, अपनी क्रियाशील किरणें विकीर्ण करनेके लिये तैयार है ...। यह तो बस एक आरंभ है, बहुत दुर्बल आरंभ है। परंतु मैं जानती हूं, हे प्रभुवर, कि यही चीज तू मुझसे चाहता है। सर्वदा ही तेरी इच्छा-शक्ति वह अनंत कृपा-शक्ति होती है जो तेरे दिव्य आनंदसे आधारको परिप्लावित कर देती है तथा उसे सभी तुच्छ अनिश्चित वस्तुओंसे ऊपर तेरे स्वर्गीय लोकोंकी महाज्योतिकी ओर उठा ले जाती है। जो कुछ तू चाहता है वह बनना ही है दिव्य बन जाना !

२५ दिसंबर, १९१६

(मैंने कल शामको यह सब निश्चल-नीरवताके अंदर सुना था तथा लिख लिया था।)

"प्रत्येक वस्तुका, यहांतक कि अपने ज्ञान तथा अपनी चेतनातकका त्याग कर डालनेके कारण ही तू अपने हृदयको उस कार्यके लिये तैयार कर पायी है जो कि उसे सौंपा गया था। ऊपरसे देखनेमें वह अत्यंत यशहीन कार्य प्रतीत होता है; वह ठीक उस झरनेके कार्यके जैसा है जो निरंतर सबके लिये प्रचुर मात्रामें जल प्रदान करता रहता है, पर जिसकी ओर कोई भी धारा कभी प्रवाहित नहीं होती; वह गहराइयोंमेंसे अपनी अक्षय शक्ति आहरण करता है और बाहरसे किसी चीजको पानेकी आशा नहीं रखता। पर तू तो पहलेसे ही यह अनुभव कर रही है कि इस अनंततः विस्तारित प्रेमके साथ कितना महान् आनंद जुड़ा हुआ है; क्योंकि प्रेम तो अपने-आपमें पर्याप्त होता है और उसे किसी प्रकारके आदान-प्रदानकी आवश्यकता नहीं होती; यह बात व्यक्तिगत प्रेमके विषयमें भी सत्य है, तो फिर उस दिव्य प्रेमके विषयमें यह कितनी अधिक सत्य होगी जो इतने महान् रूपमें अनंतको प्रतिफलित करता है !

"बन जा यही प्रेम प्रत्येक वस्तुमें और सर्वत्र, निरंतर विशाल होते हुए, निरंतर तीव्र बनते हुए, और तब समग्र जगत् बन जायगा एक साथ ही तेरी सृष्टि तथा तेरी संपदा, तेरा कार्यक्षेत्र तथा तेरा विजय-गौरव। निरंतर संघर्ष कर, उन अंतिम सीमाओंको भंग कर देनेके लिये जो तेरी सत्ताके प्रसरणके लिये अब महज दुर्बल बाधाएं हैं, उस अंतिम अंधकारको

जीत लेनेके लिये जिसे ज्योतिदायिनी शक्ति पहलेसे ही आलोकित कर रही है। युद्ध कर जय प्राप्त करनेके लिये, महाविजय ले आनेके लिये; युद्ध कर उन सब चीजोंको अतिक्रम कर जानेके लिये जो आजतक विद्यमान रही हैं; युद्ध कर नवीन ज्योतिको प्रकट कर देनेके लिये, नूतन आदर्श स्थापित करनेके लिये जिसकी संसारको बड़ी आवश्यकता है। दृढ़ताके साथ बाहरी या भीतरी सभी विघ्न-बाधाओंके विरुद्ध युद्ध कर। यह एक अनमोल मोती है जिसे प्राप्त करनेका प्रस्ताव तेरे सामने रखा गया है।"

२६ दिसंबर, १९१६

जो वाणी तू मुझे नीरवताके अंदर सुनाता है वह सर्वदा ही उत्साह-वर्द्धक और मधुर होती है, हे परम प्रभु! परंतु मैं यह नहीं देख पाती कि जो कृपा तू इस यंत्रके ऊपर दिखाता है उसके योग्य यह किस कारण समझा जाता है और किस तरह यह वह कार्य संपन्न करनेमें समर्थ होगा जिसकी तू इससे आशा करता है। इतनी महान् भूमिकाका निर्वाह करनेकी शक्ति रखनेके लिये उसे जो कुछ बनना चाहिये उसके मुकाबले उसके अंदर सब कुछ कितना क्षुद्र, कितना दुर्बल, कितना अतिसामान्य दिखायी देता है, न है बल, न है वीर्य और न है प्रसारता। परंतु मैं जानती हूं कि मन जो कुछ सोचता-समझता है उसका कोई मूल्य नहीं है; वह स्वयं भी इस बातको जानता है और वह, निष्क्रिय रहते हुए, तेरे आदेशके कार्यान्वित होनेकी प्रतीक्षा करता है।

तू मुझे निरंतर युद्ध करते रहनेके लिये कहता है: मैं वह अदम्य उत्साह पाना चाहती हूं जो प्रत्येक कठिनाईको पार कर जाता है। परंतु तूने मेरे हृदयमें एक ऐसी हंसती हुई शांति भर दी है कि मुझे भय है कि मैं शायद अब यह भी नहीं समझती कि कैसे युद्ध किया जाता है...। चीजें (वृत्तियां और कार्य-कलाप) मेरे अंदर विकसित हो रही हैं जैसे फूल खिलते हैं, सहज-स्वाभाविक रूपमें और बिना प्रयासके, स्वयं होनेके आनंद तथा वर्द्धित होते रहनेके आनंदके साथ, तुझे अभिव्यक्त करने-के आनंदके साथ, भले ही तेरी अभिव्यक्तिकी धारा चाहे जो कुछ भी क्यों न हो। यदि कहीं संघर्ष है भी तो वह इतना आसान और इतना सीधा है कि उसे मुश्किलसे यह नाम दिया जा सकता है। किंतु इतने महान् प्रेमको धारण करनेके लिये यह हृदय कितना छोटा है! और

इसे वितरण करनेकी शक्ति रखनेके लिये यह प्राण और शरीर कितने दुर्बल हैं! इस प्रकार तूने मुझे उस अपरूप पथके किनारे ला रखा है, पर क्या उसपर मुझे आगे ले जानेकी शक्ति मेरे पैरोंमें होगी? ... तू मुझे उत्तर देता है कि मुझे उड़ना होगा और पैरोंसे चलनेकी इच्छा करना मेरे लिये भूल होगी...। हे परमेश्वर! कितनी अनंत है तेरी कृपा! फिर एक बार तूने अपनी सर्वशक्तिमान् भुजाओंमें मुझे उठा लिया है और अपने अगाध हृदयमें लेकर मुझे दुलार किया है, और उस हृदयने मुझसे कहा है: "जरा भी चिंता मत कर, शिशुकी नाईं निर्भरशील बन जा; क्या मेरे कार्यके लिये घनीभूत आकार लिये हुए तू स्वयं 'मैं' ही नहीं है? ...

२७ दिसंबर, १९१६

हे मेरे परम प्रिय परमेश्वर! यह हृदय तेरे सम्मुख नतमस्तक हो रहा है और ये बांहें तेरी ओर फैली हुई हैं; ये तुझसे प्रार्थना कर रही हैं कि तू कृपा करके इस सारी सत्ताको अपने महान् प्रेमसे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित कर दे ताकि वह प्रेम संसारभरमें विकीर्ण हो सके। मेरे वक्षस्थलके अंदर मेरा हृदय एकदम खुला हुआ है, वह खुला हुआ और तेरी ओर मुड़ा हुआ है, वह खुला हुआ और खाली है ताकि तू उसे अपने दिव्य प्रेमसे भर सके; वह तेरे सिवा बाकी सभी चीजोंसे खाली है और तेरी उपस्थिति उसके कोने-कोनेमें भरी हुई है और फिर भी उसे खाली रखे हुई है, क्योंकि व्यक्त विश्वके संपूर्ण अनंत वैचित्र्यको वह अपने अंदर धारण कर सकता है।

हे नाथ! ये बांहें तेरी ओर प्रसारित होकर विनती कर रही हैं और यह हृदय तेरे सामने संपूर्ण रूपसे खुला हुआ है ताकि तू इसे अपने असीम प्रेमका भंडार बना सके।

"सभी चीजोंमें, सर्वत्र तथा सभी जीवोंमें मुझे ही प्यार कर," बस यही था तेरा उत्तर।

तेरे चरणोंमें साष्टांग प्रणिपात करके मैं तुझसे याचना करती हूं कि तू मुझे उसकी शक्ति प्रदान कर ...।

२९ दिसंबर, १९१६

हे मेरे मधुर मालिक ! मुझे अपने प्रेमका यंत्र बनना सिखा।

३० दिसंबर १९१६

हे भगवान् ! क्यों मेरा हृदय इतना ठंडा और शुष्क प्रतीत होता है?

मैं अनुभव करती हूं कि मैं जिंदा हूं, मैं देखती हूं कि मेरे आधारके अंदर मेरी अंतरात्मा भी जिंदा है, और मेरी अंतरात्मा प्रत्येक चीजमें जो कुछ है उस सबके अंदर तुझे देखती, पहचानती और प्यार करती है; वह इन सब बातोंके विषयमें पूर्णतः सचेतन है, और, चूंकि बाह्य सत्ताने उसके प्रति समर्पण कर दिया है इसलिये वह भी सचेतन है; मन इसे जानता है और कभी भूलता नहीं; प्राण-पुरुष भी शुद्ध हो गया है और अब उसमें कोई आकर्षण और विकर्षण नहीं है, अब वह अधिकाधिक सबमें और सर्वदा तेरी उपस्थितिके आनंदका उपभोग करता है। परंतु हृदय अवसादकी नींदमें सोया हुआ प्रतीत होता है, और अंतरात्मा उसके अंदर इतनी पर्याप्त मात्रामें कर्मठता नहीं पाती कि वह अंतरात्मा-की प्रेरणाका प्रत्युत्तर पूर्ण रूपसे दे सके। क्यों? क्या हृदय इतना निर्बल था कि युद्धने उसे इतना थका दिया है, अथवा उसे इतनी गहरी चोट लग गयी है कि वह एकदम पंगु हो गया है? और फिर वह आंतर पुकारका उत्तर देना चाहता है; वह उत्तर देना चाहता है एक ऐसी निष्ठा और एक ऐसे उत्साहके साथ जो कभी विचलित नहीं होते; परंतु वह उस बूढ़ेके जैसा दीखता है जो युवकोंका खेल देखकर प्रेमपूर्वक हंसता तो है परंतु उसमें भाग नहीं ले सकता। और फिर भी वह प्रसन्नता और विश्वाससे भरा हुआ है; प्रकृतिने मुक्तहस्त होकर जो स्नेह-संपदा उसे प्रदान की है उस सबके लिये कृतज्ञतासे वह परिप्लावित हो रहा है; वह इन सब बहुमूल्य दानोंके बदले करुणाकी उस सुनहली रसधाराको अक्षय बाढ़के रूपमें फैला देना चाहता है जो संजीवित और शक्तिशाली बनाती है, जो प्रसन्नता और सांत्वना प्रदान करती है, जो मानव-प्राणियों-के लिये सच्ची संजीवनी सुधा है। वह चाहता है और प्रयास करता है ... परंतु जो कुछ करनेका स्वप्न देखता है उसकी तुलनामें जो कुछ वह करता है, वह कितना नगण्य है; जो कुछ वह आशा करता है,

क्योंकि वह सर्वदा ही आशा किया करता है, उसके सामने जो कुछ वह कर सकता है वह कितना तुच्छ है! वह जानता है कि तेरी पुकारका सुनायी पड़ना कभी व्यर्थ नहीं होता; और उसे इस बातमें कोई संदेह नहीं है कि जिस ऐश्वर्यका आभास तूने उसे दिया है उसे वह एक दिन अवश्य प्राप्त करेगा।

इस स्रोतके बंद दरवाजोंको भला कौन खोलेगा?

मेरा हृदय मानुषी ढंगसे प्यार करता है, और मानुषी ढंगसे ही, मुझे ऐसा लगता है कि, वह शक्ति, दृढ़ता और पवित्रताके साथ प्रेम करता है। परंतु तू चाहता है कि तेरी चरम शक्तिके असीम क्रमप्रसारणके अंदर वह दिव्य रूपमें प्रेम करे; और यह अभी भी उसके लिये अनधिगत है।

इस स्रोतके बन्द दरवाजोंको भला कौन खोलेगा? ...

४ जनवरी, १९१७

हे भगवान्! तू मुझे अपने सभी दानोंसे भर रहा है। अब, जब कि यह सत्ता जीवनसे कुछ भी आशा नहीं करती, कुछ भी कामना नहीं करती, जीवन अपनी अत्यंत बहुमूल्य संपदाएं इसके पास ले आ रहा है, उन संपदाओंको ला रहा है जिसके लिये सभी मनुष्य लालायित रहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिगत क्षेत्रमें — मानसिक, आंतरात्मिक और यहांतक कि जड़-भौतिक क्षेत्रतकमें — तू मुझपर अपने दानोंकी वर्षा कर रहा है। तूने मुझे प्रचुरताके अंदर ला रखा है, और यह प्रचुरता मुझे उतनी ही स्वाभाविक प्रतीत होती है जितनी कि दीनता, और यह मुझे कोई बहुत बड़ा आनन्द नहीं प्रदान करती, क्योंकि बहुत बार दीनताकी अवस्थामें ही मेरे लिये आध्यात्मिक जीवन अधिक तीव्र और अधिक सज्ञान बन गया था; परंतु मैं बहुत स्पष्ट रूपमें इस प्रचुरताको देख रही हूं, और मेरी व्यक्तिगत सत्ता, जिसे तू इस प्रकार दानोंसे भरपूर कर रहा है, तेरे चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर रही है और अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेमें असमर्थ हो रही है।

तेरी दया अनुपम और तेरी करुणा अनंत है।

५ जनवरी, १९१७

जो सूत्र तेरे दिव्य पुष्पगुच्छके सभी फूलोंको बांधता है और एक साथ पकड़े रखता है वह प्रेमके सिवा और कुछ नहीं है। यह एक ऐसा कार्य है जो आंखोंसे ओझल, अति साधारण होता है और जिसे कोई व्यक्ति मूल्य नहीं देता; यह एक ऐसा कार्य है जो मूलतः निर्वैयक्तिक है, और जो केवल इस निर्वैयक्तिकतामें ही अपनी पूर्ण सार्थकता प्राप्त कर सकता है।

चूंकि मैं क्रमशः यह सूत्र, एकत्वकी यह ग्रंथि बनती जा रही हूं जो तेरी चेतनाके बिखरे हुए टुकड़ोंको एकत्र करती और उन्हें इस प्रकार सजाती है कि तेरी जो चेतना युगपत् एक और बहु है उसे वे टुकड़े फिरसे अधि-काधिक सुन्दर रूपमें सुसंगठित कर सकें, इसीलिये मेरे लिये स्पष्ट रूपमें यह देखना संभव हो गया है कि विश्व-शक्तियोंकी लीलाके अंदर प्रेम क्या वस्तु है, उसका स्थान और उसका भगवत्प्रदत्त कार्य क्या है; वह स्वयं अपने-आपमें कोई लक्ष्य बिलकुल नहीं है, बल्कि वह तो तेरा एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। वह सक्रिय है, सर्वत्र और सबके अंदर है, सर्वत्र ही वह ठीक उसी चीजसे ढका हुआ है जिसे वह युक्त करता है और जो अपने ही प्रभावके वशवर्ती होकर कभी-कभी उसकी उपस्थितिकी बात भूल जाती है।

हे प्रभुवर! तेरा माधुर्य मेरी अंतरात्माके अंदर प्रवेश कर रहा है और तूने मेरी सारी सत्ताको आनंदसे भर दिया है।

और इस आनंदके अंदर मैं तुझसे एक प्रार्थना कर रही हूं ताकि वह तुझतक पहुंच जाय।

६ जनवरी, १९१७

तूने मेरी सत्ताको एक अनिर्वचनीय शांति और एक अतुलनीय विश्रांतिसे भर दिया है . . . कोई व्यक्तिगत विचार या इच्छा न रख मैंने अपने-आपको निष्क्रिय रूपसे तेरी अनंतताके झूलेपर झूलनेके लिये छोड़ दिया है।

८ जनवरी, १९१७

तूने मेरे हृदय और मेरे मस्तिष्कके अंदर नीरवता ला दी है; पर इस नीरवताकी अतल गहराईसे कोई भी शब्द ऊपर नहीं उठ रहा है। एकमात्र शांति ही राज्य कर रही है, मधुर और मंगलमय अतिथि बनकर विराज रही है।

१० जनवरी, १९१७

हे प्रभु! तू क्या मुझे यह शिक्षा देना चाहता है कि जिन सब प्रयासों-का लक्ष्य मेरी अपनी सत्ता होगी वे निरुपयोगी और व्यर्थ हो जायेंगे? जिस कर्मका उद्देश्य तेरी कृपाको विकीर्ण करना होता है बस वही सुगमता और सफलताके साथ पूरा होता है। जब मेरी संकल्प-शक्ति बहिर्मुखी कर्ममें संलग्न होती है तब वह शक्तिशाली और फलदायी बन जाती है; जब वह अंतर्मुखी कार्यमें प्रवृत्त होनेकी चेष्टा करती है तब वह बलहीन और प्रभाव-रहित हो जाती है।......इस तरह व्यक्तिगत उन्नतिके लिये किया गया प्रत्येक कार्य अधिकाधिक निष्फल होता जाता है और फलस्वरूप क्रमशः विरल भी होता जाता है। पर, इसके विपरीत, बाहरी कार्य उतना ही अधिक फलदायक होता हुआ प्रतीत होता है जितना अधिक आंतरिक कार्य विफल होता है। इस प्रकार, हे प्रभुवर, यह यंत्र जैसा है बस वैसा ही तू इसे ग्रहण करता है, और यदि इसे तीक्ष्ण होनेकी आवश्यकता होगी तो यह कार्य करते-करते ही तीक्ष्ण हो जायगा।

१४ जनवरी, १९१७

"दुःखी सुखी हो जायं, दुष्ट शिष्ट बन जायं, रोगी स्वस्थ हो जायं!" —बस, इसी रूपमें इस यंत्रके भीतर तेरे दिव्य प्रेमकी अभिव्यक्ति चाहने-वाली मेरी अभीप्सा प्रकट हुई। वह एक मांग थी, एक ऐसी मांग थी जिसे एक शिशु अपने पितासे इस विश्वासके साथ करता है कि वह पूरी की जायगी। क्योंकि जब मैंने मांगा तब मेरे अंदर यह विश्वास था: वह मांग मुझे बहुत सीधी और बहुत सहज मालूम हुई; मैंने बहुत स्पष्ट

रूपमें अपने अंदर यह अनुभव किया कि कैसे यह बात संभव है। एक अज्ञानपूर्ण तथा अनिच्छापूर्वक प्राप्त संघर्षके अंदर सर्वदा दुःख भोग करने तथा श्रम करनेकी अपेक्षा क्या आनंदसे आनंदमें, सौंदर्यसे सौंदर्यमें वर्द्धित होते रहना कहीं अधिक स्वाभाविक और अधिक फलदायी नहीं है? यदि अपने दिव्य प्रेमके स्पर्शसे तू हृदयको स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होने दे तो यह रूपांतर सहज हो जाता है तथा स्वयं अपने-आप होता है।

हे भगवान्! अपनी करुणाके चिह्नस्वरूप क्या तू ऐसा नहीं करेगा?

एक बालक जैसा विश्वास रखकर मेरा हृदय आज संध्या-समय तुझसे प्रार्थना कर रहा है।

१९ जनवरी, १९१७

और सब मुहूर्त्त झूठे सपनोंकी तरह विलीन हो रहे हैं.....।

२३ जनवरी, १९१७

तूने इतने पूर्ण और इतने तीव्र एक प्रेमसे, एक सौंदर्यसे और एक आनंदसे मेरी सत्ताको भर दिया कि मुझे यह असंभव प्रतीत हुआ कि वह अन्यत्र संचारित न हो, वह मानों एक ज्वलंत अग्निकुंड था जिसमेंसे चिंतनकी फूंक चिनगारियोंको बहुत दूरतक उड़ा ले गयी और वे मनुष्योंके हृदयोंकी गुप्त गहराइयोंमें जाकर एकदम अनुरूप अन्य अंगोंको, तेरे दिव्य प्रेमकी आगको, हे भगवान्, जलाने लगीं, उस प्रेमकी आगको जो मानव जीवोंको अदम्य भावसे तेरी ओर धकेलता और आकर्षित करता है। हे मेरे परम प्रिय प्रभु! ऐसी कृपा कर कि यह मेरी आनंदविभोर चेतनाका महज एक दर्शन ही न रह जाय, बल्कि यह एक ऐसा सत्य बन जाय जो जीवों और वस्तुओंका सच्चा रूपांतर साधित करे।

ऐसा वर दे कि जिस प्रेम, जिस सौंदर्य और जिस आनंदने मेरी सत्ताको इस तरह परिप्लावित कर दिया है कि उनके वेगको सहन करनेकी शक्ति भी पर्याप्त मात्रामें उसमें नहीं है, वे ठीक उसी तरह उन सब लोगोंकी चेतनाको भी परिप्लावित कर दें जिन्हें मैंने देखा है, जिनके विषयमें मैंने सोचा है, और जिनके विषयमें न तो मैंने सोचा है तथा न जिन्हें मैंने

देखा ही है...। ऐसा कर दे कि सब लोग जाग उठें तथा तेरे असीम आनंदके विषयमें सचेतन हो जायं!

हे मेरे मधुर मालिक! उनके हृदयोंको आनंद, प्रेम और सौंदर्यसे भर दे।

२५ जनवरी, १९१७

हे ज्योतिर्मय प्रेम! तू मेरी समूची सत्तामें भर गया है और उसे आनंदित कर रहा है। क्या तुझे ग्रहण किया गया है, क्या तुझे दान कर दिया गया है? कौन कह सकता है? कारण, तू स्वयं अपनेको ग्रहण करता और तू ही स्वयं अपने-आपको दे देता है; तू ही प्रत्येक वस्तुमें; प्रत्येक सत्तामें युगपत् सर्वश्रेष्ठ दाता और ग्रहीता है।

२९ जनवरी, १९१७

आकारोंके जगत्में सौंदर्यका अभाव होना उतना ही बड़ा दोष है जितना बड़ा विचारोंके जगत्में सत्यका अभाव होना। क्योंकि सौंदर्य प्रकृति माताकी पूजा है जिसे वह विश्वके परम प्रभुके चरणोंमें निवेदित करती है; सौंदर्य वह दिव्य भाषा है जो आकारके अंदर विद्यमान रहती है। और भगवान्की जो चेतना बाह्य रूपमें ज्ञान तथा सौंदर्यकी अभिव्यक्तिके रूपमें प्रकट नहीं होती वह एक अपूर्ण चेतना ही रह जाती है।

परंतु सच्चे सौंदर्यको ढूंढ़ निकालना, समझ पाना, तथा, सबसे अधिक, जीवनमें उतारना उतना ही कठिन होता है जितनी कि भगवान्की अन्य कोई भी दूसरी अभिव्यक्ति होती है; यह आविष्कार और यह अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक निर्वैयक्तिकता और अहंकारके त्यागकी मांग करती है जितनी कि सत्य या आनंदका आविष्कार और अभिव्यक्ति मांग करती हैं। विशुद्ध सौंदर्य विश्वगत वस्तु है और उसे देखने तथा पहचाननेके लिये विश्वमय बन जानेकी आवश्यकता होती है।

हे सौंदर्यके स्वामी! तेरे निकट मैंने कितनी भूलें की हैं; कितनी भूलें मैं अभी भी कर रही हूं...। मुझे अपने विधानका पूर्ण ज्ञान प्रदान कर जिसमें कि मैं उसे पूरा करनेमें पीछे न रह जाऊं। प्रेम तेरे बिना अपूर्ण

रह जायगा, तू तो उसका एक अत्यंत पूर्ण अलंकार है, तू तो उसका एक अत्यंत सुसमंजस हास्य है। कभी-कभी मैंने तेरे वास्तविक कार्यको समझने-में भूल की है, पर अपने हृदयकी गहराईमें सर्वदा ही मैंने तुझे प्यार किया है; और अत्यंत कठोर, अत्यंत चरम सिद्धांत भी इस पूजाकी अग्निको बुझानेमें समर्थ नहीं हुए हैं जिसे मैंने अपने बचपनमें ही तुझे अर्पित किया था।

तू वैसा बिलकुल नहीं है जैसा कि अभिमानी लोग तेरे विषयमें सोचते हैं, तू पूर्णतः जीवनके किसी विशेष रूपके साथ आसक्त नहीं है: तुझे प्रत्येक रूपके अंदर जागृत करना, जगमगा देना संभव है; परंतु इसके लिये आव-श्यक है कि पहले तेरे रहस्यका आविष्कार कर लिया जाय...।

हे सौंदर्यके मालिक! मुझे अपने दिव्य विधानका पूर्ण बोध प्रदान कर, जिसमें कि उसे पूरा करनेमें पीछे न रह जाऊं, जिसमें कि तू मेरे अंदर प्रेमके प्रभुका सर्वांगसुन्दर मुकुट बन सके।

२७ मार्च, १९१७

(ध्यानके समय वार्तालापके रूपमें प्राप्त संदेश)

"देख, तू एक जीवंत आकारको तथा तीन निर्जीव प्रतिमाओंको देख रही है। सजीव आकार नील वस्त्रसे आच्छादित है; दूसरी तीन प्रतिमाएं मिट्टीसे बनी हैं पर वे श्वेत और विशुद्ध हैं। एकमात्र नीरवताकी शांतिमें ही सजीव आकार अन्य तीनोंके अंदर प्रवेश कर उन्हें एक साथ युक्त कर सकता तथा एक जीवंत और सक्रिय रूपमें रूपांतरित कर सकता है।"

*

हे भगवान्! तू जानता है कि मैंने तुझे समर्पण कर दिया है, और तू मेरी सत्ताको जो कुछ प्रदान करता है उससे वह शांत और गभीर आनंदके साथ चिपकी रहती है!

*

"मैं तेरी निष्ठाको जानता हूं, परंतु मैं तेरी चेतनाको बढ़ाना चाहता हूं; और उसके लिये जो कुछ तेरे अंदर अभीतक सोया है उसे जगा। ज्योतिकी ओर अपनी आंखें खोल, और मनके स्वच्छ दर्पणमें वह सब प्रतिफलित हो उठेगा जिसे तुझे जाननेकी जरूरत है।"

★

हे नाथ! मेरी सत्ताके अंदर सब कुछ नीरव है और प्रतीक्षा करता है...।

★

"चेतनाके दरवाजेपर धक्का लगा और तेरे लिये दरवाजा खुल जायगा।"

★

निर्मल और शुभ्र नदी प्रवाहित हो रही है; उसकी अबाध धारा आकाश-से पृथ्वीकी ओर उतर रही है। पर तू मुझसे क्या कहना चाहता है जिसे मुझे अवश्य जानना चाहिये?

★

"तेरी नीरवता अभी भी पर्याप्त गहरी नहीं है: कोई चीज तेरे मनमें घूम रही है....।

"अंतरात्माकी अग्निको अभिव्यक्तिके परदेके भीतरसे देखना होगा; परंतु वे परदे स्पष्ट और सुनिश्चित होने चाहियें जैसे कि किसी उज्ज्वल पटपर लिखे हुए शब्द होते हैं। और यह सब तेरे हृदयकी पवित्रताके अंदर सुरक्षित रहना चाहिये जैसे कि बोया हुआ खेत बर्फके नीचे ढका हुआ और सुरक्षित होता है।

"अब चूंकि तूने खेतमें बीज बो दिये हैं, तूने पटके ऊपर चिह्न अंकित कर दिये हैं, इसलिये तू अपनी स्थिर नीरवतामें वापस जा सकती है, तू एक गभीरतर तथा सत्यतर चेतनासे अपनेको अभिषिक्त करनेके लिये अपने प्रशांत आश्रयस्थलमें वापस लौट सकती है। तू अपने व्यक्तित्वको भूल सकती तथा सार्वभौमकी सुषमाको फिरसे प्राप्त कर सकती है।

"विश्रामके इन क्षणोंमें तेरे ऊपर शांति छा जाय; परंतु जगानेवाले घंटेको न भूल जा जो शीघ्र ही बजनेवाला है।

"तू फिर अपने भाग्यपर, जो तुझसे बात कर रहा है, हंसेगी।

"जो शक्ति आ रही है उसका उपयोग तेरा हृदय करेगा।

"तू लकड़हारा बनेगी जो जलानेकी लकड़ियोंका बोझ बांधता है।

"तू फैले हुए पंखोंवाला विराट् हंस बनेगी जो मोती-जैसी अपनी सफेदीसे आंखोंको पवित्र बनाता तथा अपने सफेद रोओंसे हृदयको गर्म करता है।

"तू उन सबको उनकी चरम भवितव्यताकी ओर ले जायगी।

"तूने अग्निकुंडको देखा है और तूने शिशुको भी देखा है। एक दूसरेको आकृष्ट करता था: दोनों ही संतुष्ट थे; एक इसलिये कि वह जलता था, दूसरा इसलिये कि वह गर्म हो रहा था।

"तू अपने हृदयमें इस सर्वविजयी अग्निकुंडको देख रही है; एकमात्र तू ही इसे धारण कर सकती और इसे संहार करनेसे रोक सकती है। यदि दूसरे इसको छू दें तो वे भस्म हो जायेंगे। अतएव उन्हें इसके बहुत नजदीक मत आने दे। बच्चेको जानना चाहिये कि जो ज्वलंत शिखा उसे इतना अधिक आकृष्ट करती है उसका स्पर्श उसे नहीं करना चाहिये। दूरसे तो वह शिखा उसे गर्मी प्रदान करती तथा उसके हृदयको आलोकित करती है; परंतु बहुत समीप आनेपर वही शिखा उसे जलाकर राख कर देगी।

"केवल एक ही इस हृदयमें निर्भय वास कर सकता है; क्योंकि वही वह किरण है जिसने उसे (हृदय) को प्रज्ज्वलित किया है। वही है आगमें जीनेवाला वह प्राणी जो आगमें ही फिरसे जन्म ग्रहण करता है।

"एक दूसरा सबसे ऊपर है जो जलनेसे जरा भी नहीं डरता; वह है वही निष्कलंक फिनिक्स-पक्षी जो स्वर्गसे आया है और जो यह जानता है कि कैसे फिर वहां वापस जाया जा सकता है।

"एक है सिद्धिकी शक्ति।

"दूसरा है दिव्य ज्योति।

"और तीसरा है सर्वोच्च चैतन्य।"

★

हे भगवान्! मैं तेरी बात सुनती हूं और तेरे चरणोंपर साष्टांग प्रणिपात करती हूं: तूने मेरे लिये दरवाजा खोल दिया है; तूने मेरी आंखें खोल दी हैं, और रात्रिका कुछ अंश आलोकित हो गया है.....।

३० मार्च, १९१७

अपने विषयमें जरा भी व्यस्त न होनेमें एक उच्च राजोचित गुण निहित है। आवश्यकताओंको अनुभव करना अपनी दुर्बलताको प्रस्थापित करना है; किसी वस्तुकी आकांक्षा करना यह सिद्ध करता है कि हमारे पास उस वस्तुका अभाव है। कामना करनेका अर्थ है असमर्थ होना, अपनी सीमाओंको स्वीकार करना, उन्हें अतिक्रम करनेकी अपनी अक्षमता-को मान लेना।

और किसी दृष्टिसे न सही, यदि समुचित आत्म-सम्मानकी ही दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्यको अपनी कुलीनताके लिये ही समस्त कामनाका त्याग करना चाहिये। स्वयं अपने लिये जीवनसे या उसे संजीवित करनेवाली परा चेतनासे किसी चीजकी याचना करनेमें कितना अपमान है! कितना अपमान है हमारे लिये, कितना अपमानजनक अज्ञान है उस परात्पर चेतनाके लिये! कारण, सब कुछ तो हमारी पहुंचके अंदर है और केवल हमारी अहंजन्य सीमाएं ठीक उतने ही पूर्ण और जाग्रत रूपमें समस्त विश्वका उपभोग करनेसे हमें रोकती हैं जितने पूर्ण और जाग्रत रूपमें वे हमारे निजी शरीरों तथा उनके एकदम समीपस्थ परिवेशको उपभोग करनेसे रोकती हैं।

और कर्मके उपायके संबंधमें भी हमारा मनोभाव बस ऐसा ही होना चाहिये।

हे प्रभु! तू मेरे हृदयमें वास करता है और अपनी परम संकल्प-शक्तिके द्वारा सब कुछ परिचालित करता है; तूने एक वर्ष हुए, मुझसे कहा था कि तू सभी सेतुओंको काटकर अज्ञातके अंदर सिरके बल कूद पड़, जैसे कि सीज़रने उस समय किया था जब कि उसने 'रुबिकन'-नदी पार की थी और उसका मंत्र था — चाहे 'कैपिटोल'के शिखरपर पहुंचेंगे अथवा 'तारपियन' पहाड़के तले चले जायंगे।

तूने मेरी आंखोंसे कर्मका फल छिपा दिया। अभी भी तूने उसे गुप्त रखा है; और फिर भी तू जानता है कि ऐश्वर्य हो या दैन्य, दोनोंके सम्मुख मेरी अंतरात्माकी समता एक-सी बनी रहती है।

तूने इच्छा की कि मेरे लिये भविष्य अनिश्चित हो, और मैं दृढ़ विश्वासके साथ, बिना जाने ही अग्रसर होऊं कि पथ कहां ले जायगा।

तूने इच्छा की कि मैं अपनी भवितव्यताकी चिंताका भार संपूर्ण रूपसे तेरे ऊपर छोड़ दूं तथा समस्त व्यक्तिगत व्यस्तताका एकदम त्याग कर दूं।

इसमें संदेह नहीं कि स्वयं मेरे मनके लिये भी मेरा पथ होना चाहिये एकदम अज्ञात और अछूता।

३१ मार्च, १९१७

प्रत्येक बार जब कोई हृदय तेरे दिव्य श्वासके स्पर्शसे आंदोलित होता है तब ऐसा मालूम होता है मानों पृथ्वीपर थोड़ा-सा और सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है, हवा एक मधुर सुगंधसे सुवासित हो गयी है, सब लोग अधिक स्नेहशील बन गये हैं।

कैसी महान् शक्ति है तेरी, हे सर्वलोकमहेश्वर, कि तेरे आनंदका एक कण भी इतना अधिक अंधकार और इतना अधिक शोक-संताप मिटा देनेके लिये पर्याप्त होता है, तेरी महिमाकी एक किरण भी इस प्रकार अत्यंत संज्ञाहीन पत्थरको, अत्यंत काली चेतनाको भी उद्भासित कर सकती है!

तूने अपने अनुग्रहोंसे मुझे लाद दिया है, तूने बहुत-से रहस्योंको मेरे सामने खोल दिया है, तूने अनेक प्रकारके अप्रत्याशित, अनपेक्षित आनंदका मुझे आस्वादन कराया है, परंतु तेरी कोई कृपा उस कृपाकी बराबरी नहीं कर सकती जिसे तू मुझे उस समय प्रदान करता है जब कि कोई हृदय तेरे दिव्य श्वासके स्पर्शसे आंदोलित हो उठता है...।

इन सब पुण्य घड़ियोंमें समूची धरणी आनंद-गान गाती है, घास-पात हर्षसे सिहर उठते हैं, वायुमंडल ज्योति-तरंगसे स्पंदित हो उठता है, वृक्ष अपनी अत्यंत तीव्र प्रार्थनाको आकाशकी ओर प्रसारित कर देते हैं, पक्षियोंका गान भजन-कीर्तन बन जाता है, समुद्रकी लहरें प्रेमसे उमड़ने लगती हैं; बालकोंकी हंसी आनंदकी वार्ता सुनाती है, मनुष्योंकी अंतरात्मा उनकी आंखोंमें दिखायी देने लगती है।

बता मुझे, हे भगवान्, क्या तू मुझे वह अद्भुत शक्ति प्रदान करेगा जिसमें मैं उत्सुक हृदयोंमें इस उषाकालको उत्पन्न कर सकूं, मनुष्योंकी चेतनाको तेरी महान् उपस्थितिके विषयमें जाग्रत कर सकूं तथा इतने संतप्त और विपर्यस्त इस जगत्में तेरे सच्चे स्वर्गका कुछ अंश उद्भूत कर सकूं? पार्थिव कौन-सा सुख, कौन-सी संपदा, कौन-सी शक्ति इस परम दानकी समानता कर सकती है?...

हे परमेश्वर! मैंने कभी व्यर्थमें तेरी प्रार्थना नहीं की है, क्योंकि मेरे अंदर तो स्वयं तू ही है जो स्वयं अपने-आपसे बातें करता है...।

तू उर्वर बनानेवाली वृष्टिके रूपमें एक-एक बूंद करके अपने सर्वसमर्थ प्रेमकी जीवंत तथा उद्धारकारिणी आग बरसा रहा है। जब शाश्वत ज्योतिकी ये बूंदें अज्ञानांधकारके हमारे इस जगत्के ऊपर धीरे-धीरे पड़ती हैं तब हमें ऐसा लगता है कि मेघाच्छन्न आकाशके सुनहले तारे एक-एक करके पृथ्वीपर बरस रहे हैं।

और इस चिरनवीन चमत्कारके सामने सब लोग मौन भक्तिभावके साथ सीस नवा रहे हैं।

१ अप्रैल, १९१७

तूने मेरी मौन और सतर्क अंतरात्माको परी-लोकके दृश्योंकी समस्त चमक-दमक दिखा दी है: उत्सव-मग्न वृक्षोंको तथा सूने मार्गोंको, जो आकाशकी ओर ऊपर उठते हुए प्रतीत होते हैं, दिखला दिया है।

परंतु मेरे भविष्यके विषयमें तूने मुझे कुछ नहीं बताया है— क्या वह इस हदतक मुझसे छिपा रहेगा?...

फिरसे और सर्वत्र मैं 'चेरी' वृक्षोंको देख रही हूं; तूने इन फूलोंमें एक जादूका गुण भर दिया है: ऐसा मालूम होता है मानों वे तेरी अद्वितीय उपस्थितिकी बात कह रहे हों; वे अपने साथ भगवान्‌की मुस्कान ले आते हैं।

मेरा शरीर विश्राम ले रहा है और मेरी अंतरात्मा खिल रही है: इन फूलोंसे भरे वृक्षोंमें तूने कैसी मोहिनी शक्ति भर दी है?

ऐ जापान! सदिच्छा-रूपी तेरा कीमती पहनावा ही उत्सव मना रहा है, यही तेरी पूजाकी सबसे पवित्र सामग्री है, यह तेरी ऐकांतिक अनु-रक्तिका चिह्न है; यही तेरे यह कहनेका तरीका है कि तू स्वर्गको प्रतिफलित कर रहा है।

और अब वह देखो अद्‌भुत प्रदेश जिसके ऊंचे-ऊंचे पर्वत देवदारू वृक्षोंसे ढके हुए हैं और जिसकी घाटियां खेतीसे हरी-भरी हैं। और गुलाबी रंगके जिन छोटे-छोटे गुलाबोंको यह चीनी मनुष्य ला रहा है, क्या वे निकट भविष्यके लिये कोई आशा दिलाते हैं?

८ अप्रैल, १९१७

एक गभीर एकाग्रताने मुझे आक्रांत कर लिया है और मैंने देखा कि मैं एक 'चेरी'के फूलके साथ अपनेको एकात्म कर रही हूं, फिर उसके द्वारा सभी 'चेरी' फूलोंके साथ एकात्म हो रही हूं; उसके बाद जैसे ही मैं नीली शक्तिकी एक धाराका अनुसरण करती हुई अपनी चेतनाकी अधिक गहराईमें उतरी वैसे ही मैं अकस्मात् स्वयं वह 'चेरी' वृक्ष ही बन

गयी जो पूजाके फूलोंसे लदी हुई अपनी असंख्य शाखाओंको उतनी ही बांहोंकी तरह आकाशकी ओर उठाये था। फिर मैंने स्पष्ट रूपमें यह वाक्य सुना :

"इस प्रकार तू 'चेरी' वृक्षोंकी अंतरात्माके साथ संयुक्त हो गयी है और इस प्रकार यह सिद्ध करनेमें समर्थ हुई है कि स्वयं भगवान् ही स्वर्गके प्रति यह पुष्पमय प्रार्थना निवेदन करते हैं।"

जिस समय मैंने यह लिखा था उस समय सब कुछ विलीन हो गया; परंतु अब 'चेरी' वृक्षका रक्त मेरी धमनियोंमें प्रवाहित हो रहा है, और उसके साथ-साथ प्रवाहित हो रही है एक अतुलनीय शांति तथा शक्ति। भला मनुष्यके शरीर और एक वृक्षके शरीरमें क्या अंतर है? सच पूछा जाय तो कोई अंतर नहीं है, और जो चेतना उन दोनोंको संजीवित करती है वह तो एकदम अभिन्न एक ही चीज है।

फिर 'चेरी' वृक्षने मेरे कानमें धीमे स्वरमें कहा :

"सच पूछो तो वसंतकी बीमारियोंकी दवा 'चेरी' पुष्पके अंदर निहित है।"

९ अप्रैल, १९१७

एक बार जब मनुष्य तेरी सर्वज्ञताके राज्यकी देहलीको पार कर जाता है तब, जब-जब वह मानसिक जगत्में वापस आता है तब-तब जो कोई विचार उसके मनमें उठते हैं उनमेंसे प्रत्येक विचार एक ऐसी अपूर्व और अगम समस्या प्रतीत होता है जिसका स्वप्न भी उसे पहले कभी नहीं आया होता।

ऊर्ध्वमें कोई प्रश्न नहीं उठता; उस शांत नीरवताके अंदर सब कुछ शाश्वत कालसे ही ज्ञात होता है। निम्न स्तरमें सब कुछ नया, अज्ञात, अनपेक्षित होता है।

और जब ये दोनों एक अखंड चेतनाके अंदर युक्त हो जाते हैं तब ये एक ऐसा आश्चर्यजनक विश्वास प्रदान करते हैं जिससे उद्भूत होती है शांति, ज्योति और आनंद।

१० अप्रैल, १९१७

मेरा हृदय सोया हुआ है सत्ताकी एकदम तहतकमें . . . ।

समूची पृथ्वी चंचल हो रही है और अविरत परिवर्तन होते रहनेके कारण आंदोलित हो रही है; सब जीव आनंद करते और दु:ख भोगते हैं, प्रयास करते, युद्ध करते, जीतते, नष्ट होते और फिरसे सृष्ट होते हैं।

मेरा हृदय सोया हुआ है सत्ताकी एकदम तहतकमें . . . ।

इन सभी अगणित तथा बहुविध आधारोंमें मैं ही वह संकल्प-शक्ति हूं जो संचालित करती है, चिंतन-शक्ति हूं जो कार्य करती है, शक्ति-सामर्थ्य हूं जो संसिद्ध करती है तथा जड़-तत्त्व हूं जो संचालित होता है।

मेरा हृदय सोया हुआ है सत्ताकी एकदम तहतकमें . . . ।

अब कोई व्यक्तिगत सीमा नहीं है, अब कोई व्यक्तिगत कार्य नहीं है, अब संघर्ष उत्पन्न करनेवाली कोई पृथकात्मक एकाग्रता नहीं है, एकमात्र अनंत एकत्वके सिवा और कुछ नहीं है।

मेरा हृदय सोया हुआ है सत्ताकी एकदम तहतकमें . . . ।

२८ अप्रैल, १९१७

हे मेरे भगवान्! आज रातको तू मेरे सम्मुख अपनी जाज्वल्यमान छटाके साथ प्रकट हुआ। तू एक क्षणमें इस सत्ताको पूर्ण रूपसे शुद्ध, ज्योतिपूर्ण, स्वच्छ और सचेतन बना सकता है, तू इसे इसके अंतिम काले धब्बोंसे मुक्त कर सकता है, तू इसे इसकी अंतिम अभिरुचियोंसे छुटकारा दिला सकता है — तू यह सब कर सकता है . . . पर क्या तूने आज रातको यह सब नहीं कर दिया जब कि तूने अपनी दिव्य धाराओं तथा अकथनीय प्रकाशके साथ इसमें प्रवेश किया? संभव है . . . क्योंकि मेरे अंदर एक ऐसी अतिमानवीय शक्ति विद्यमान है जो संपूर्ण रूपसे अचंचलता और विशालतासे बनी हुई है। ऐसी कृपा कर, हे प्रभु, कि इस शिखरसे मैं जरा भी नीचे न गिरूं और शांति इस सत्ताके अंदर इसके अधिपतिके रूपमें सर्वदा राज्य करे; केवल इसकी गहराइयोंमें ही नहीं, जहां कि वह बहुत दीर्घकालसे ही उसकी स्वामिनी है, बल्कि मेरी छोटी-से-छोटी बाह्य क्रियाओंमें, मेरे हृदय और मेरे कर्मके छोटे-से-छोटे कोनेतकमें वह राज्य करे।

मैं तुझे नमस्कार करती हूं, हे भगवान्, हे सब जीवोंके उद्धारक!

"आहा! ये रहे पुष्प और आशीर्वचन; यह है भागवत प्रेमकी मुस्कान; इस प्रेममें न तो है कोई पक्षपात और न कोई विकर्षण...। यह एक उदार प्रवाहके रूपमें सबकी ओर प्रवाहित होता है और अपने अपूर्व दानों-को कभी वापस नहीं लेता।"

और अपनी बांहोंको परमानंदकी मुद्रामें प्रसारित कर शाश्वत जननी संसारके ऊपर अपने शुद्धतम प्रेमके ओसकणोंको निरंतर बरसा रही हैं...।

आकाकूरा, १३ जुलाई, १९१७

एक दिन मैंने लिखा:

"मेरा हृदय सोया हुआ है सत्ताकी एकदम तहतकमें...।" महज सोया हुआ है? मैं विश्वास नहीं कर सकती। मैं समझती हूं कि वह शांत हो गया है, शायद सर्वदाके लिये। नींदसे तो मनुष्य जग जाता है, शांतिमेंसे मनुष्य नीचे नहीं गिरता। और उस दिनसे तो मैंने कभी प्रत्यावर्तन होते हुए नहीं देखा है। पहले घने रूपमें केंद्रीभूत एक ऐसी चीज मेरी सत्तामें थी जो बहुत दिनोंतक रह-रहकर विक्षुब्ध हो उठती थी, पर अब उसके बदले इतनी अधिक विस्तृत और प्रशांत, तथा उथल-पुथलसे रहित एक विशालताने आकर मेरी सत्ताको भर दिया है, अथवा यों कहें कि सत्ता ही उसमें जाकर घुल-मिल गयी है; क्योंकि जो चीज असीम है वह भला कैसे एक आकारके अंदर धारण की जा सकती है?

और प्रशांत रेखासे युक्त ये जो विराट् पर्वत बड़ी शानके साथ क्षितिज-तक फैले हुए हैं और जिन्हें मैं अपनी खिड़कीसे देखती हूं, ये अनंत शांतिसे भरी हुई इस सत्ताके ताल-स्वरके साथ पूर्णतः समस्वर हो गये हैं। हे स्वामिन! क्या तूने अपने राज्यपर अधिकार जमा लिया है? अथवा यों कहें कि अपने राज्यके इस भागपर अधिकार कर लिया है, क्योंकि शरीर अभी भी तमसाच्छन्न और अज्ञ है, प्रत्युत्तर देनेमें सुस्त और नमनशीलतासे रहित है। क्या यह एक दिन अन्य अंगोंकी तरह ही शुद्ध हो जायगा? और तब क्या तेरी विजय पूर्ण हो जायगी? पर इससे क्या आता-जाता है? यह यंत्र जैसा तू चाहता है वैसा ही है और इसका आनंद विशुद्ध, मिलावटसे शून्य है।

टोकियो, २४ सितंबर, १९१७

तूने मुझे एक कठोर अनुशासनके अधीन रखा; एक-एक स्तर पार करते हुए मैं उस सीढ़ीपर चढ़ी जो तेरे पास पहुंचाती है; और इस आरोहणके शिखरपर तूने मुझे परम तादात्म्यके पूर्ण आनंदका आस्वादन कराया, फिर तेरी आज्ञा मानकर मैं एक-एक स्तर बाहरी क्रियाओंकी ओर तथा चेतनाकी बाहरी अवस्थाओंकी ओर नीचे उतरी तथा इन जगतोंके संस्पर्शमें फिर आयी जिन्हें मैंने तुझे खोजनेके लिये छोड़ दिया था। और अब जब कि मैं सीढ़ीसे एकदम निचले भागमें उतर आयी हूं, मेरे अंदर और मेरे चारों ओर सब कुछ इतना जड़, इतना तुच्छ और इतना अस्पष्ट है कि मैं कुछ नहीं समझती . . .।

तब भला तू मुझसे क्या आशा रखता है; और क्या लाभ है इस धीमी और लंबी तैयारीसे, यदि इस सबका परिणाम अंतमें वही होता हो जिसे अधिकांश मनुष्य किसी साधनाका अनुसरण किये बिना ही प्राप्त करते हैं ?

भला यह कैसे संभव है कि जो कुछ मैंने देखा है उस सबको देखने तथा जो कुछ मैंने अनुभव किया है उस सबका अनुभव करनेके बाद भी, यहांतक कि अपने ज्ञान तथा अपने एकत्वके अत्यंत पवित्र मंदिरतक मुझे ले जानेके बाद भी तूने मुझे इतनी सामान्य परिस्थितियोंके अंदर इतना पूर्णतः सामान्य एक यंत्र बनाया है? सचमुच, हे भगवान्, तेरे उद्देश्य अपरिमेय हैं तथा मेरी बुद्धिसे परे हैं . . .।

जब तूने मेरे हृदयमें अपने सर्वांगपूर्ण आनंदका यह शुद्ध हीरा रख दिया है तब फिर क्यों तू इसकी बाहरी सतहको यह सब अंधकार प्रतिफलित करने देता है जो बाहरसे आता है, और इस प्रकार अपनी दी हुई शांतिकी संपदाको अननुमेय, और ऐसा लगता है कि, निष्फल बने रहने देता है। वास्तवमें यह सब बड़ा रहस्यपूर्ण है और मेरी बुद्धिको चकरा देता है।

जब तूने यह महान् आंतरिक नीरवता प्रदान की है तब भला क्यों तू जिह्वाको इतना अधिक सक्रिय और मन-बुद्धिको इतनी निरर्थक चीजोंमें संलग्न होने देता है? क्यों . . . ? मैं तो अनंत कालतक प्रश्न करती रह सकती हूं, और संभवतः वह सर्वदा व्यर्थ ही हो सकता है।

मुझे केवल तेरे निश्चयके सामने मस्तक झुकाना चाहिये और एक शब्द भी बोले बिना अपनी स्थितिको स्वीकार करना चाहिये।

मैं तो अब एक दर्शकके सिवा और कुछ नहीं हूं जो विश्व-रूपी नागको उसके अनंत कुंडल खोलता हुआ देखता है।

(कुछ दिनों बाद)

हे भगवान्! कितनी बार, तेरी आज्ञाके सम्मुख दुर्बलता दिखाते हुए मैंने तुझसे प्रार्थना की है: "पार्थिव-चेतना-रूपी इस फांसीके तख्तेसे मेरी रक्षा कर! मुझे अपनी परम एकताके अंदर डूब जाने दे।" परंतु मेरी प्रार्थना कायरतापूर्ण है, मैं यह जानती हूं, क्योंकि वह निष्फल रह जाती है।

१५ अक्तूबर, १९१७

मैंने अपनी निराशाकी स्थितिमें तुझे पुकारा है, हे भगवान्, और तूने मेरी पुकारका उत्तर दिया है।

अपने जीवनकी परिस्थितियोंके लिये शिकायत करना मेरे लिये अनुचित है, क्या जो कुछ मैं हूं उसके एकदम अनुकूल ही वे नहीं हैं?

चूंकि तू मुझे अपने वैभवके द्वारतक ले गया तथा तूने मुझे अपने स्वर-माधुर्यका आस्वादन कराया, इसलिये मैंने समझा कि मैं अपने लक्ष्यको पा गयी हूं; परंतु सच बात कही जाय तो तूने अपनी ज्योतिके पूर्ण प्रकाशमें इस यंत्रका निरीक्षण किया है और इस जगत्की घरियामें फिर फेंक दिया है ताकि यह नये सिरेसे गल जाय और शुद्ध हो जाय।

अंतिम तथा वेदनापूर्ण अभीप्साकी इन घड़ियोंमें मैं अनुभव करती हूं, मैं देखती हूं कि तू मुझे रूपांतरके पथपर सिर चकरानेवाली तेजीके साथ खींचे लिये जा रहा है और मेरी समूची सत्ता अनंत सत्ताके साथ सज्ञान संस्पर्श प्राप्त कर कंपायमान हो रही है।

इसी तरह तू मुझे इस नवीन अग्नि-परीक्षाको पार करनेके लिये धैर्य और बल प्रदान कर रहा है।

२५ नवंबर, १९१७

हे जगदीश्वर! दारुण दुर्दशाकी एक घड़ीमें सच्चे विश्वासके साथ मैंने कहा था: "तेरी इच्छा पूर्ण हो," और इसलिये तू अपनी महामहिमासे सु-सज्जित होकर आया। तेरे चरणोंपर मैं साष्टांग लोट गयी और फिर तेरे वक्षस्थलपर मैंने आश्रय लिया। तूने अपने दिव्य आलोकसे मेरे आधारको भर दिया तथा उसे अपने आनंदसे सराबोर कर दिया। तूने फिरसे अपना

संबंध मेरे साथ स्थापित किया और अपनी सतत उपस्थितिके बारेमें आश्वासन प्रदान किया। तू वह विश्वस्त मित्र है जो कभी साथ नहीं छोड़ता, तू ही शक्ति, सहारा और पथ-प्रदर्शक है। तू वह प्रकाश है जो अंधकारको छिन्न-भिन्न कर देता है और वह विजयी है जो विजयका निश्चय प्रदान करता है। चूंकि तू उपस्थित है इसलिये सब कुछ स्पष्ट हो गया है; मेरे बलवान् हृदयमें अग्नि पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी है; और उसका तेज विकीर्ण होकर वायुमंडलको दीप्त और पवित्र बना रहा है...।

तेरे लिये मेरा प्रेम, जो इतने दिनोंतक दबा पड़ा था, नये सिरेसे उमड़ पड़ा है, शक्तिशाली, अदम्य और सर्वोपरि हो रहा है, अग्नि-परीक्षाओंमेंसे गुजरकर दसगुना बढ़ गया है। उसने अपनी निर्जनतामें शक्ति प्राप्त कर ली है, सत्ताकी बाहरी सतहपर निकल आनेकी, समूची चेतनापर उसके अधीश्वरके रूपमें अधिकार जमानेकी, अपने उमड़ते हुए प्रवाहमें प्रत्येक चीजको बहा ले जानेकी शक्ति पा ली है....।

तूने मुझसे कहा है: "मैं वापस आ गया हूं और अब तुझे छोड़कर नहीं जाऊंगा।"

और अपना मस्तक मिट्टीसे लगाकर तेरी प्रतिज्ञाको मैंने ग्रहण किया है।

१२ जुलाई, १९१८

एकाएक, तेरे सम्मुख, मेरा सारा अभिमान झड़ गया। मैं समझ गयी कि तेरे सामने अपने-आपको अतिक्रम करनेकी इच्छा करना कितना निरर्थक था....और मैं रो पड़ी, मैं बहुत अधिक रोयी और अपनेको रोक न सकी, वे मेरे जीवनके अत्यंत मधुर आंसू थे...। हां, वे आंसू कितना आराम देनेवाले, शांति देनेवाले और मधुर लगनेवाले थे, वे आंसू जो मैंने बिना किसी लज्जा या संयमके तेरे समक्ष बहाये थे! यह एक बच्चेके जैसा था जो अपने पिताकी गोदमें होता है? परंतु कैसा पिता? कैसी उच्चता, कैसी महानता, समझकी कैसी विशालता! और कैसी शक्ति, विश्राममें कैसी पूर्णता! हां, वे आंसू पवित्र ओसकणके जैसे थे। क्या यह सब ऐसा इसलिये था कि मैं अपने निजी दुःखके लिये जरा भी नहीं रोयी थी! आह! कितने मीठे, कितने सुखदायी वे आंसू थे जिन्होंने मेरे हृदयको बिना किसी रुकावटके तेरे सम्मुख खोल दिया था, जिन्होंने सभी

बची-खुची बाधाओंको, जो तुझसे मुझे पृथक् कर सकती थीं, एक अद्भुत क्षणमें विलीन कर दिया !

कुछ दिन पूर्व मुझे मालूम हुआ था, मैंने सुना था : "यदि तू मेरे सामने बिना किसी अवरोध और कपटके रोये तो बहुत-सी चीजें बदल जायंगी, एक महान् विजय प्राप्त हो जायगी। और इसी कारण जब आंसू मेरे हृदयसे उठकर मेरी आंखोंमें आये तो मैं तेरे सामने आकर बैठ गयी ताकि वे एक पूजाके रूपमें, पवित्र भावसे प्रवाहित हों। और कितनी मधुर और आरामदायक थी वह पूजा !

और अब भी, यद्यपि मैं अब रोती नहीं हूं, मैं तुझे इतना निकट अनुभव करती हूं, इतना निकट कि मेरी पूरी सत्ता आनंदसे कांप रही है।

मुझे तुतली भाषामें अपना आदर-भाव प्रकट करने दे।

मैंने अपनी शिशु-जैसी प्रसन्नताके साथ तुझे पुकारा है :

हे परात्पर ! हे एकमात्र विश्वासपात्र सहचर ! हम जो कुछ तुझसे कहना चाहते हैं उसे तू पहलेसे ही जानता है, क्योंकि तू ही उस सबका रचयिता है।

हे परम प्रभु ! हे अद्वितीय मित्र ! तू ही हमें स्वीकार करता एवं हमें प्यार करता है तथा हम जैसे हैं वैसा समझ लेता है, क्योंकि वास्तवमें तूने ही हमें वैसा बनाया है।

हे परमेश्वर ! हे अनुपम गुरु ! तू कभी हमारी उच्चतर इच्छाका प्रतिवाद नहीं करता, क्योंकि सचमुचमें स्वयं तू ही तो उसके द्वारा इच्छा करता है; यदि हम तुझे छोड़कर अन्यत्र किसी ऐसे व्यक्तिको खोजने जायं जो हमारी बात सुने, समझे, हमें प्यार करे और पथ दिखाये तो यह हमारी भूल होगी, क्योंकि तू तो सर्वदा ही यह सब करनेके लिये यहां विद्यमान है और तू कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगा।

तूने मुझे पूर्ण निर्भरताके, पूर्ण संरक्षणके, बिना कुछ बचाये और बिना कोई रंग चढ़ाये, बिना किसी प्रयास या अवरोधके सर्वांगीण रूपसे समर्पण करनेके सर्वोपरि आनन्दका, महान् आनंदका बोध प्रदान किया है।

और बालवत् प्रसन्नताके साथ, हे मेरे परम प्रिय, मैं तेरे सम्मुख एक साथ ही हंसी और रोयी . . .।

१० अक्तूबर, १९१८

हे मेरे परम प्रिय राजा ! इस विचारमें कितनी मिठास है कि मैं तेरे लिये और केवल तेरे लिये ही कार्य करती हूं ! मैं बस तेरी सेवाके लिये ही हूं; बस तू ही निश्चय करता, व्यवस्था करता और गति प्रदान करता है, कर्मको परिचालित करता तथा संसिद्ध करता है। इसके बोध, इसके अनुभवसे कितनी शांति, कितनी स्थिरता, कितना महान् आनंद प्राप्त होता है ? कारण, यह पर्याप्त है कि हम अनुगत, नमनशील, समर्पित, सतर्क बने रहें और इस प्रकार तुझे मुक्त भावसे कार्य करने दें; तब फिर कोई भूल-भ्रांति, दोष, अभाव, न्यूनता नहीं रह सकती, क्योंकि जो कुछ तूने इच्छा की है उसे ही तू करता है और जैसे तूने उसकी इच्छा की है वैसे ही तू उसे करता है....।

मेरी कृतज्ञता तथा मेरी हर्षपूर्ण एवं पूर्णतः निर्भरशील निष्ठाके जलते हुए दीपको स्वीकार कर।

मेरे पिता मेरी ओर मुस्कराये हैं और उन्होंने मुझे अपनी बलशाली भुजाओंमें उठा लिया है। अब मुझे किस बातका भय हो सकता है ? मैं तो उनके अंदर गल गयी हूं, और सच पूछा जाय तो वही इस शरीरमें निवास करते और कार्य करते हैं जिसे कि स्वयं उन्हींने अपनेको अभिव्यक्त करनेके लिये निर्मित किया है।

उईवेके, ३ सितंबर, १९१९

चूंकि मनुष्यने वह भोजन नहीं पसंद किया जिसे मैंने इतने प्रेम और सावधानीके साथ तैयार किया था, इसलिये उसे ग्रहण करनेके लिये मैंने भगवान्‌को पुकारा।

और, हे मेरे भगवान् ! तूने मेरा निमंत्रण स्वीकार किया और तू मेरी मेजपर बैठकर खानेके लिये आ गया है; और मेरी हीन और तुच्छ पूजाके बदलेमें तूने मुझे अंतिम मुक्ति प्रदान की है ! मेरा हृदय आज सवेरेतक कष्ट और दुश्चिंतासे इतना भारी था, मेरा मस्तक जिम्मेदारियोंसे लदा था, पर अब वे अपने बोझसे मुक्त हो गये हैं। अब वे हलके और प्रसन्न हैं, जैसी हलकी और प्रसन्न मेरी आंतर सत्ता बहुत दीर्घ-कालसे है। और मेरा शरीर तेरी ओर आनंदके साथ हंस रहा है

15

जैसे कि पहले मेरी अंतरात्मा तेरी ओर देखकर हंसी थी!...

और, निस्संदेह, हे मेरे भगवान्, अब तू इस आनंदको कभी मुझसे अलग नहीं हटायेगा; क्योंकि इस समय, मैं समझती हूं, काफी शिक्षा मिली है और पुनर्जीवन प्राप्त करनेके लिये मैं क्रमागत भ्रम-भ्रांतियोंकी शूलीवाली पहाड़ीपर काफी ऊंचाईतक चढ़ती रही हूं! भूतकालकी अब कोई चीज नहीं रह गयी है, रह गया है वह बलशाली प्रेम जो मुझे बालकका शुद्ध हृदय तथा देवताका हलका और मुक्त मन प्रदान कर रहा है।

पांडिचेरी, २२ जून, १९२०

सब प्रकारके वर्णनसे परेका आनंद मुझे देनेके बाद, हे मेरे परम प्रिय भगवान्, तूने मेरे लिये अग्नि-परीक्षा भेजी है, संघर्ष भेजा है, और इसकी ओर भी मैं तेरा एक प्रिय दूत मानकर ही हंसी हूं। पहले मैं संघर्षसे डरती थी, क्योंकि उससे मेरे अंदर शांति और सामंजस्यके प्रति विद्यमान प्रेमको ठेस पहुंचती थी। परंतु अब, हे मेरे देवता, मैं हर्षके साथ उसका स्वागत करती हूं: वह तो तेरे कार्यके अनेक रूपोंमेंसे एक रूप है, कर्मके जिन तत्त्वोंको अन्यथा भुला दिया जाता, उन्हें फिरसे ज्योतिमें ला रखनेके सबसे उत्तम उपायोंमेंसे एक उपाय है; वह अपने साथ विस्तृति, बहुविधता तथा शक्तिमत्ताका एक बोध वहन करता है। और, जिस तरह मैंने तुझे ज्योति विकीर्ण करते हुए, संघर्षका सूत्रपात करते हुए देखा है ठीक उसी तरह तुझे ही मैं घटनाओं तथा विरोधी प्रवृत्तियोंकी उलझनोंको सुलझाते हुए एवं अंतमें उन सब चीजोंपर विजय प्राप्त करते हुए भी देखती हूं जो तेरी ज्योति और शक्तिको आवृत करनेकी चेष्टा करती हैं; कारण, उस सबके भीतरसे निश्चित रूपमें स्वयं तेरी ही पूर्णतम सिद्धि उद्भूत होगी।

६ मई, १९२७

हमें अवश्यमेव यह जानना चाहिये कि हम अपना जीवन और अपनी मृत्यु भी, अपना सुख और अपना दुःख भी, कैसे अर्पित कर दें,

प्रत्येक चीजके लिये और प्रत्येक बातमें सिद्धिकी अपनी समस्त संभावनाओंके नियामक उन भगवान्के ऊपर ही कैसे निर्भर करें जो अकेले ही यह निश्चय कर सकते हैं और करेंगे कि आया हम सुखी हों या न हों, हम जीवन धारण करें या न करें, हम सिद्धिमें भाग पायें या न पायें।

इसी सर्वांगपूर्ण और अखंड प्रेम तथा इसी समर्पणके अंदर हमें उस पूर्ण शांतिकी अनिवार्य स्थिति प्राप्त होती है जो एक निरवच्छिन्न परमानंदका आवश्यक आधार है।

२८ दिसंबर, १९२८

एक ऐसी शक्ति है जिसपर किसी सरकारका अधिकार नहीं हो सकता, एक ऐसी प्रसन्नता है जिसे कोई पार्थिव सफलता नहीं प्रदान कर सकती, एक ऐसी ज्योति है जो किसी विज्ञताके अंदर नहीं पायी जा सकती, एक ऐसा ज्ञान है जिसे कोई दर्शनशास्त्र, कोई विज्ञान आयत्त नहीं कर सकता, एक ऐसा आनंद है जिसका रसास्वादन किसी कामनाकी तृप्ति नहीं करा सकती, एक ऐसी प्रेम-पिपासा है जिसे कोई मानवीय संबंध तृप्त नहीं कर सकता, एक ऐसी शांति है जो कहीं नहीं, यहांतक कि मृत्युमें भी नहीं मिल सकती।

यह शक्ति, प्रसन्नता, ज्योति, ज्ञान, आनंद, प्रेम और शांति वे चीजें हैं जो भगवान्की कृपा होनेपर मिलती हैं।

२४ नवंबर, १९३१

हे मेरे प्रभु! हे मेरे परम प्रिय राजा! तेरा कार्य पूरा करनेके लिये मैं जड़-तत्त्वकी अतल गहराइयोंमें डूब गयी, मैंने अपनी अंगुलियोंसे निश्चेतना और मिथ्यात्वकी विभीषिकाका स्पर्श किया — विस्मृति तथा चरम अंधकारके स्थानका स्पर्श किया! परंतु मेरे हृदयमें स्मरण बना हुआ था, और फिर मेरे हृदयसे निकल पड़ी यह पुकार जो तुझतक पहुंच गयी: "हे भगवान्! हे परम प्रभु! तेरे शत्रु सर्वत्र विजयी हो रहे

हैं; मिथ्यात्व ही विश्वका सम्राट् है; तेरे बिना जीवन मृत्युमें परिणत हो गया है, शाश्वत नरक बन गया है; आशाका स्थान संदेहने और समर्पणका स्थान विद्रोहने ले लिया है; श्रद्धा-विश्वासका अंत हो गया है, कृतज्ञता उत्पन्न ही नहीं हुई है; अंध आवेगों और संहारकारी सहजवृत्तियों तथा पातकी दुर्बलताने प्रेमके तेरे प्रिय विधानको ढक दिया है, नष्ट कर दिया है। हे नाथ! क्या तू अपने शत्रुओंको, मिथ्यात्व, वीभत्सता, दुःख-संतापको विजयी होने देगा? हे जगदीश्वर! जीत लेनेका आदेश दे और जीत हो जायगी। मैं जानती हूं कि हम अयोग्य हैं, मैं जानती हूं कि जगत् अभी तैयार नहीं है। परंतु मैं तेरी करुणापर पूर्ण विश्वास रखकर तुझे पुकारती हूं और मैं जानती हूं कि तेरी कृपा-शक्ति हमारी रक्षा करेगी।"

इस तरह मेरी प्रार्थना तीव्र गतिसे तेरी ओर उठी और खंदककी गहराईमेंसे मैंने तेरी जाज्वल्यमान ज्योतिके अंदर तुझे देखा; तू प्रकट हुआ और तूने मुझसे कहा: "साहस मत खो, डटी रह और विश्वास बनाये रख — मैं आ रहा हूं।"

२३ अक्तूबर, १९३८

(जो लोग भगवान्की सेवा करना चाहते हैं उनके लिये एक प्रार्थना)

तेरी जय हो, हे भगवान्, हे सर्वविघ्नविनाशक!

ऐसा वर दे कि हमारे अंदरकी कोई भी चीज तेरे कार्यमें बाधक न हो।

ऐसा वर दे कि कोई भी चीज तेरी अभिव्यक्तिमें रुकावट न डाले।

ऐसा वर दे कि सभी बातोंमें तथा प्रत्येक क्षण तेरी ही इच्छा पूर्ण हो।

हम यहां तेरे सम्मुख उपस्थित हैं ताकि हमारे अंदर, हमारी सत्ताके अंग-प्रत्यंगमें, उसके प्रत्येक कार्यमें, उसकी सर्वोच्च ऊंचाइयोंसे लेकर शरीरके क्षुद्रतम कोषोंतकमें तेरी ही इच्छा कार्यान्वित हो।

ऐसी कृपा कर कि हम तेरे प्रति संपूर्ण रूपसे तथा सदाके लिये विश्वास-पात्र बन सकें।

हम अन्य प्रत्येक प्रभावसे अलग रहते हुए एकदम तेरे प्रभावके अधीन हो जाना चाहते हैं।

ऐसा वर दे कि हम तेरे प्रति एक गभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

ऐसी कृपा कर कि प्रत्येक क्षण जो सब अद्भुत वस्तुएं तेरी देनके रूपमें हमें मिलती हैं, उनमेंसे किसीका भी हम कभी अपव्यय न करें।

ऐसा वर दे कि हमारे अंदरकी प्रत्येक चीज तेरे कार्यमें सहयोग दे और सब कुछ तेरी सिद्धिके लिये तैयार हो जाय।

तेरी जय हो, हे परमेश्वर! हे समस्त सिद्धियोंके अधीश्वर!

अपनी विजयमें हमें प्रदान कर एक सक्रिय और ज्वलंत, अखंड और अचल-अटल विश्वास।

'प्रार्थना और ध्यान'के बारेमें कुछ प्रश्न और श्रीअरविंदके उत्तर

'दिव्य प्रभु' को संबोधित माताजीकी कुछ प्रार्थनाओंमें मैंने ये शब्द देखे हैं: "हमारी भगवती माताके साथ (Avec notre Divine Mère)"। भला माताजी और 'दिव्य प्रभु' (Divin Maître) की भी एक 'भगवती माता' (Divine Mère) कैसे हो सकती हैं? यह तो ऐसा हुआ मानों माताजी 'भगवती माता' (Divine Mère) न हों और कोई दूसरी माताजी भी हों तथा 'दिव्य प्रभु' (Divin Maître) परात्पर न हों और उनकी भी एक 'भगवती माता' (Divine Mère) हों! अथवा क्या यह बात है कि ये सब प्रार्थनाएं किसी निर्वैयक्तिक सत्ताको संबोधित की गयी हैं?

अधिकांशमें ये प्रार्थनाएं पार्थिव चेतनाके साथ एक होकर लिखी गयी हैं। यहां निचली प्रकृतिमें रहनेवाली मां उच्चतर प्रकृतिमें विद्यमान मांको संबोधित कर रही हैं, रूपांतरके लिये पार्थिव चेतनाकी साधना करती हुई माताजी ही ऊपर विद्यमान स्वयं अपनी ही उस सत्तासे प्रार्थना कर रही हैं जिससे रूपांतरकी शक्तियां आती हैं। यह तबतक जारी रहता है जबतक कि पार्थिव चेतना और उच्चतर चेतनाका तादात्म्य सिद्ध नहीं हो जाता। 'हमारी' (notre) शब्द, मेरी समझमें साधारण रूपमें प्रयुक्त हुआ है और वह पार्थिव चेतनामें उत्पन्न सभी जीवोंको सूचित करता है — उसका अर्थ 'दिव्य प्रभु' (Divin Maître) और स्वयं 'मेरी माताजी' नहीं है। वहां सर्वदा भगवान्‌को ही दिव्य प्रभु और स्वामिन् (Divin Maître et Seigneur) के रूपमें संबोधित किया गया है। एक माताजी हैं जो साधना कर रही हैं और दूसरी भगवती माता हैं, दोनों एक होनेपर भी विभिन्न स्थितियां हैं, और दोनों सर्वेश्वर या दिव्य प्रभु (Seigneur or Divine Master) की ओर मुड़ती हैं। इस प्रकारकी भगवान्‌की भगवान्‌से की हुई प्रार्थना तुम्हें रामायण और महाभारतमें भी मिलेगी।

(२१-८-१९३६)

ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनका मत है कि श्रीमां मनुष्य थीं पर अब उन्होंने भगवती माताको अपने अंदर मूर्तिमान् किया है और उनका विश्वास है कि श्रीमांकी प्रार्थनाएं[1] इस मतको पुष्ट करती हैं। पर, मेरे मनकी धारणा, मेरी अंतरात्माका अनुभव यह है कि वे स्वयं भगवती माता ही हैं जिन्होंने अंधकार, दुःख-कष्ट और अज्ञानका जामा पहनना इसलिये स्वीकार किया है कि वे सफलतापूर्वक हम मनुष्योंको ज्ञान, सुख और आनन्दकी ओर, तथा परम प्रभुकी ओर ले जा सकें।

भगवान् स्वयं मार्गपर चलकर मनुष्योंको राह दिखानेके लिये मनुष्यका रूप धारण करते हैं और बाहरी मानव-प्रकृतिको स्वीकार करते हैं। पर इससे उनका 'भगवान्' होना खतम नहीं हो जाता। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने-आपको प्रकट करती है। यह मनुष्यका भगवान्में बदल जाना नहीं है। श्रीमां अपने आंतर स्वरूपमें बचपनमें भी मानवत्वसे ऊपर थीं। इसलिये 'बहुत-से लोगों' का जो उपर्युक्त मत है वह भ्रमात्मक है।

(१७-८-१९३८)

माताजीकी सन् १९१४ की कुछ ऐसी प्रार्थनाएं हैं जिनमें वे रूपांतर और अभिव्यक्तिकी बात करती हैं। वे उस समय यहां नहीं थीं, तो क्या इससे यह मतलब नहीं निकलता कि यहां आनेसे बहुत पहले ही उनके अंदर ये विचार थे?

माताजी अपनी युवावस्थासे, यहांतक कि बाल्यावस्थासे ही बराबर आध्यात्मिक रूपसे सचेतन थीं और भारत आनेसे बहुत पहले ही वे साधना करके यह ज्ञान विकसित कर चुकी थीं।

(२३-१२-१९३३)

---

[1]श्रीमांद्वारा लिखित "प्रार्थनाएं और ध्यान" नामक पुस्तक।

मैंने कहा है कि भगवान् पहले जगत्के लिये साधना करते हैं और फिर जो कुछ नीचे उतारा हो उसे औरोंको देते हैं। उपलब्धियों और अनुभूतियोंके बिना कोई साधना नहीं हो सकती। ये प्रार्थनाएं माताजीकी अनुभूतियोंका अभिलेख हैं।

(४-१--१९३५)

माताजी अपनी 'प्रार्थनाओं'की पुस्तकमें कहती हैं कि अनुभव भगवान्की इच्छा व संकल्पसे उपलब्ध होता है। तो क्या मुझे यह मानना चाहिये कि किसी प्रस्तुत दृष्टांतमें अनुभवोंकी न्यूनता या बहुलताके पीछे भगवान्की इच्छा होती है?

जबतक तुम सभी चीजोंको भगवान्से आती न अनुभव करो तबतक ऐसा कहनेका कोई मूल्य नहीं। जिस प्रकार भीषण कष्टों और कठिनाइयोंके बीच भी माताजीने अनुभव किया था कि ये भगवान्से आये हैं और, उन्हें उनके कार्यके लिये तैयार कर रहे हैं, उस प्रकारका अनुभव जिसे प्राप्त हुआ हो वही ऐसी मनोवृत्तिका आध्यात्मिक उपयोग कर सकता है। दूसरे तो इससे अशुद्ध परिणामकी ओर जा सकते हैं।

(१०-५-१९३४)

१७ मई, १९१४ की प्रार्थनामें माताजी कहती हैं: "ये थे वे दो वाक्य जो मैंने कल एक प्रकारकी अनिवार्य आवश्यकताके वश लिखे थे। पहला, मानों प्रार्थनाकी शक्ति केवल तभी परिपूर्ण होगी जब वह कागजपर लिपिबद्ध कर ली जायगी।"...

क्या यह सच है कि जब प्रार्थनाको वाणी या लेखनीके द्वारा व्यक्त नहीं किया जाता तो वह पर्याप्त शक्तिशाली नहीं होती, और कि उसे पूर्ण रूपसे शक्तिशाली बनानेके लिये इस प्रकार व्यक्त करना आवश्यक है?

वह कथन सामान्य नियमके रूपमें अभिप्रेत नहीं था — वह तो केवल उस विशेष प्रार्थना और उस अनुभूतिके संबंधमें महसूस की गयी एक

आवश्यकता थी। यह सब तो निर्भर करता है व्यक्ति और उसकी अवस्थापर, किसी क्षण-विशेषकी अथवा चेतनाकी उस भूमिकाकी या उस पक्षकी आवश्यकतापर। आध्यात्मिक अनुभवमें ये चीजें सदा ही नमनीय और परिवर्तनशील होती हैं। किन्हीं अवस्थाओंमें या किसी एक पक्षमें या किसी क्षण प्रार्थनाकी कार्यसाधक शक्तिको या अनुभवके स्थायित्वको प्रकट करनेके लिये प्रार्थनाकी अभिव्यक्तिकी आवश्यकता हो सकती है; किसी अन्य अवस्था या पक्षमें या किसी और क्षण इससे ठीक उल्टी बात हो सकती है, या यूं कहें कि तब अभिव्यक्ति शक्तिको बिखेर देगी या स्थिरताको भंग कर देगी।

(२१-६-१९३६)

जैसा कि माताजीने अपनी १६ जून, १९१४ की प्रार्थनामें कहा है, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ नहीं कि "तेरा ज्योतिर्वैभव प्रकट होना चाहता है।" अपने लिये पूर्णता-प्राप्तिके या यंत्र होनेके समस्त विचार, चेतनाकी विशाल वैश्व गतिके दृष्टिकोणसे विचार करनेपर, निःसार और नीरस प्रतीत होते हैं।

यह ठीक है। अपने लिये पूर्णता सच्चा आदर्श नहीं है। साधना और यंत्र-भाव "प्राकटच" के साधनके रूपमें ही उपयोगी हैं।

(३०-४-१९३६)

माताजी अपनी ४ अगस्त, १९१४ की प्रार्थनामें कहती हैं: "शक्तियोंके संघर्षसे प्रेरित होकर मनुष्य महान् आत्म-बलिदान कर रहे हैं।" ... प्रत्यक्ष ही, उनका संकेत महायुद्धकी ओर है; परंतु, क्या उस युद्धके परिणामस्वरूप किसी "शुद्ध ज्योति"ने लोगोंके हृदयोंको भरा है या "भागवत शक्ति" पृथ्वीपर फैली है अथवा क्या उस अस्तव्यस्ततामेंसे कोई लाभदायक वस्तु प्रकट हुई है, जैसा कि उन्होंने उल्लेख किया है? क्योंकि राष्ट्र एक बार फिर युद्धकी तैयारी कर रहे हैं और आपसमें सतत संघर्षकी अवस्थामें हैं, अतः मनुष्योंकी आंतरिक अवस्थामें किसी

परिवर्तनका कोई चिह्न नहीं दिखायी देता। संसारमें सर्वत्र लोग, यहांतक कि भारतीय भी, एक और युद्ध चाहते प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है कि शायद ही कोई 'शान्ति', 'प्रकाश' या 'प्रेम'की चाहना करता हो।

परिवर्तन अधिक बुरेके लिये हुआ है — मानव जगत्में प्राणिक लोक उतर आया है। दूसरी ओर, यह भी है कि बुरी शक्तियोंसे "अधिकृत" राष्ट्रोंको छोड़कर और सभीमें शांतिके लिये कहीं अधिक चाह है और है यह भावना कि ऐसी चीजें नहीं होनी चाहियें। भारतको तो युद्धका कोई वास्तविक स्पर्श मिला ही नहीं। तथापि माताजी जो कुछ सोच रही थीं वह था आध्यात्मिक सत्यकी ओर खुलना। कम-से-कम उस उन्मीलनने प्रकट होनेका यत्न किया है। पुरानी जड़वादीय सभ्यतासे व्यापक असंतोष देखनेमें आ रहा है, और साथ ही किसी अधिक गहरे प्रकाश एवं सत्यके लिये खोज भी — दुर्भाग्यकी बात इतनी ही है कि पुराने धर्म इससे लाभ उठा रहे हैं और केवल बहुत थोड़ी संख्यामें ही लोग नये 'प्रकाश' की सचेतन रूपसे खोज कर रहे हैं।

(९-६-१९३६)

अपनी ८ अक्तूबर, १९१४ की प्रार्थनामें माताजी कहती हैं: "कार्यमें जो आनन्द निहित है उसे कार्यसे निवृत्तिका महत्तर आनन्द अतिक्रांत कर जाता है।" इससे यह अर्थ निकलता है कि कार्यसे निवृत्ति कार्यकी अपेक्षा अधिक वरणीय है।

क्या तुम समझते हो कि माताजीका मन तुम लोगोंकी तरह कठोर है और वे सब समयके लिये तथा सभी लोगों और सभी अवस्थाओंके लिये बंधा-बंधाया नियम बना रही थीं? वह तो एक विशेष अवस्थासे संबंध रखता है जिसमें चेतना कभी तो कार्यरत होती है और जब कार्यरत नहीं होती तो अपने अंदर पीछेकी ओर हटी रहती है। उसके बाद एक ऐसी अवस्था आती है जब सच्चिदानंद-स्थिति कार्यमें भी बनी रहती है। उससे आगेकी भी एक अवस्था है जिसमें ये दोनों मानों एक हो जाती हैं, पर वह है अतिमानसिक भूमिका। दो भूमिकाएं हैं नीरव (शांत) ब्रह्म और सक्रिय ब्रह्म और वे बारी-बारीसे आ सकती हैं (पहली

अवस्था), एक साथ रहती हैं (दूसरी अवस्था), घुल-मिलकर एक हो सकती हैं (तीसरी अवस्था)। यदि तुम पहली अवस्थातक भी पहुंच जाओ तो तुम माताजीकी उक्तिका प्रयोग करनेकी सोच सकते हो, पर अभीसे उसका गलत प्रयोग क्यों करते हो?

क्या कर्ममें सच्चिदानंदका उच्चतम साक्षात्कार प्राप्त करना संभव है?

अवश्य ही वह कर्ममें प्राप्त हो सकता है। हे भगवान्! यदि वह प्राप्त न हो सके तो पूर्ण योगका अस्तित्व ही कैसे रह सकता है?

माताजीकी १२ दिसंबर, १९१४ की प्रार्थना यों शुरू होती है: "सब कुछ पानेके लिये हमें हर क्षण सीखना होगा सब कुछ खोना . . . "

ईश उपनिषद् भी कहती है: "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" (उसे त्यागकर उसका भोग करो)। क्या ये दोनों कथन एक ही सत्यकी ओर संकेत नहीं करते?

हां, निश्चय ही। यह तत्वतः एक ही सत्य है जिसे भिन्न-भिन्न ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। इसे निषेधात्मक रूपमें भी रखा जा सकता है— "यदि हम वस्तुओंके उसी रूपसे चिपके रहें जो अज्ञानावस्थामें उनका अपूर्ण रूप है तो हम उन्हें भागवत प्रकाश, सामंजस्य और आनन्दमें, उनके सत्य और सर्वांगपूर्ण स्वरूपमें नहीं प्राप्त कर सकते।

(१६-८-१९३५)

'प्रार्थना और ध्यान' के बारेमें कुछ प्रश्न और श्रीमाताजीके उत्तर

"दिनमें कितनी बार, अब भी, मैं अपने कामोंको तेरे प्रति सर्मापित किये बिना कार्य करती हूं",

(२-११-१९१२)

क्या भगवान्के साथ सायुज्यके बाद भी व्यक्ति अपनी क्रियाओं-को सर्मापित किये बिना कार्य कर सकता है?

निश्चय ही, सायुज्य और समर्पण बिलकुल अलग-अलग चीजें हैं।
(८-११-१९३४)

लेकिन क्या समर्पणके बिना सायुज्य हो सकता है?

सत्ताका वह भाग जिसे सायुज्य प्राप्त होता है, वही नहीं होता जिसमें समर्पण हो।

(९-११-१९३४)

इस प्रार्थनामें आपने लिखा है: "मैं अभीतक तादात्म्यसे दूर, निस्संदेह बहुत दूर हूं" और साथ ही लिखा है: "मैंने पृथक्ता-का भाव खो दिया है।"

(१९-११-१९१२)

पृथक्ताका भाव खोनेमें और तादात्म्यमें क्या भेद है?

पृथक्ताका भाव खोना तादात्म्यसे पहलेका अन्तिम चरण है। और तादात्म्यमें भी अनेक स्तर होते हैं।

(२४-९-१९३४)

यहां आप कहती हैं: "जिस परिमाणमें मेरी अभिवृत्ति तुझे मेरे अंदर और मुझपर क्रिया करने देती है, तेरी सर्वशक्तिमत्ताकी कोई सीमा नहीं।"

(३-१२-१९१२)

२६-११-१९१२ की प्रार्थनामें आप कहती हैं: "मैं और मेरा-की स्थूल भ्रान्तिको लगभग पूरी तरह खो चुकी हूँ", क्या इस तादात्म्यके बाद भी अभिवृत्ति भगवान्को पूरी तरह अपनी इच्छाके अनुसार काम नहीं करने देती?

हर चीजमें सोपान होते हैं। एक दिनकी पूर्णता दूसरे दिन पूर्णता नहीं मालूम होती।

(७-११-१९३४)

"जब किसी बातको जाननेकी जरूरत होती है तो व्यक्ति उसे जान लेता है। मन तेरी ज्योतिकी ओर जितना अधिक निश्चेष्ट होता है उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट और समुचित होती है।"

(३-१२-१९१२)

मां, यह स्थिति कब संभव होती है? मैं इस तरह जान सकूं तो अद्भुत बात होगी।

यह अवस्था तभी आ सकती है जब तुम व्यक्तिगत पसन्दको पूरी तरह छोड़ दो।

(२६-९-१९३४)

"जो कहा गया था उसे मैं अब दुहरा न सकूंगी।"

(३-१२-१९१२)

ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि स्मृति मनकी चीज है और जो बोला था वह मन नहीं था, मनसे परेकी चेतना थी।

(२८-९-१९३४)

"हां, हमें तेरी खोजमें बहुत अधिक तीव्रता न लानी चाहिये, तुझे खोजनेके लिये बहुत अधिक कोशिश न करनी चाहिये . . . हमें तुझे देखनेकी इच्छा न करनी चाहिये"

(५-१२-१९१२)

क्या यह बात सबके लिये है?

हरगिज नहीं।

और फिर सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि मेरी अनुभूतियोंको दुहरानेकी कोशिश न करो। मैंने लिखना तब शुरू किया था **जब मैं भगवान्‌के साथ सायुज्य प्राप्त कर चुकी थी,** और यह ऐसी अवस्था है जिससे तुम अभी बहुत दूर हो।

(अक्तूबर १९३४)

"मैं जानती हूं कि परदा छोटी-छोटी अपूर्णताओंके ढेर और अनगिनत आसक्तियोंसे बना है।"

(१२-१२-१९१२)

मेरा ख्याल है कि आप जिस परदेकी बात कह रही हैं वह परम प्रभु और अंधेरे भौतिक जगत्‌के बीच है। आपके साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

अपना काम करनेके लिये मैं भौतिक जगत् और उसकी अपूर्णताओंके साथ तादात्म्य स्थापित करनेके लिये बाध्य हूं।

(६-११-१९३४)

"परदेके पीछेसे आनन्दकी निःशब्द स्वर-संगति सुनायी देती है जो तेरी भव्य उपस्थितिको प्रकट करती है।"

(११-१२-१९१२)

इसका मतलब क्या है?

बाहरी रूपोंके पीछे शक्तियों और गतियोंका एक सामंजस्य है जो विभिन्न प्रकारके वाद्य यंत्रोंकी पूर्ण स्वर-संगतिसे मिलता-जुलता है।

(३०-७-१९३४)

"सब अमोघ रूपसे तुझे मेरी ओर लाते हैं, जो अनन्त शान्ति, छायारहित प्रकाश, पूर्ण सामंजस्य, निश्चितता, विश्राम और परम धन्यता है।"

(५-२-१९१३)

निश्चितताका आध्यात्मिक अर्थ क्या है?

जिसमें श्रद्धा है उसकी आध्यात्मिक अनुभूतिके द्वारा पुष्ट की गयी श्रद्धा।

(३१-७-१९३४)

"जो लोग तुझे उत्साहके साथ खोज रहे हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि जब कभी तेरा होना जरूरी हो तो तू मौजूद होता है और अगर उनके अन्दर यह परम श्रद्धा हो और वे तुझे खोजना छोड़कर, तेरे लिये प्रतीक्षा करें, हर क्षण अपने-आपको पूरी तरह तेरी सेवामें लगायं... जब कभी तेरी जरूरत होगी तब तू कहां उपस्थित होगा।"

(१०-२-१९१३)

यह मेरे लिये नहीं है क्या?

यह उन सबके लिये है — तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी — जो संपूर्ण सचाईके साथ अपना सकते हैं। लेकिन मुझे कहना चाहिये कि यह प्रयास करनेसे बहुत ज्यादा कठिन है।

(१४-११-१९३४)

"इस सरलतामें बड़ी-से-बड़ी शक्ति है, ऐसी शक्ति जो कम-से-कम मिश्रित है और हानिकर प्रतिक्रियाओंको कम-से-कम जगाती है।"

(१२-२-१९१३)

तो यह सरलता अच्छी नहीं है क्योंकि उसमें कुछ मिलावट है।

मूर्ख! आजकी जगत्‌की स्थितिमें मिलावटके बिना कौन-सी चीज हो सकती है? कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं!

(अगस्त १९३४)

"प्राणकी शक्तिपर कभी विश्वास न करना चाहिये क्योंकि वह तुम्हें तुरत परिणामोंका रसास्वादन करा देती है।"

(१२-२-१९१३)

क्यों?

चूंकि हम तात्कालिक और दृश्य परिणाम चाहते हैं इसलिये प्राणके धोखेमें आ जाते हैं।

(अगस्त १९३४)

"जैसे ही मेरे ऊपर भौतिक जिम्मेदारियां नहीं रहतीं, इन सब

चीजोंके विचार मुझसे दूर भाग जाते हैं और मैं पूरी तरहसे केवल तुझमें और तेरी सेवामें लगी रहती हूं।"

(११-५-१९१३)

जब आप कहती हैं कि भौतिक जिम्मेदारियां नहीं रहीं तो फिर यह "तेरी सेवा" क्या है?

मैंने यह लिखा था क्योंकि कुछ समयके लिये मैं अपने मकानमें नहीं बल्कि अपनी मांके मकानमें रहती थी और मेरे ऊपर गृहस्वामिनीकी जिम्मेदारियां नहीं थीं जिसे भौतिक रूपसे सब चीजोंकी व्यवस्था ठीक रखनी पड़ती है।

(अगस्त १९३४)

"तेरी इच्छाके बारेमें सचेतन होकर और अपनी इच्छाको उसके साथ एक करके ही सच्ची स्वाधीनता और सर्वशक्तिमत्ताका रहस्य, शक्तियोंके पुनरुज्जीवन और रूपान्तरका रहस्य पाया जा सकता है।"

(११-५-१९१३)

"शक्तियोंके पुनरुज्जीवनका रहस्य"से क्या मतलब है?

प्राणिक और भौतिक शक्तियां विकृत हैं, उनका पुनरुज्जीवन होना चाहिये ताकि वे भगवान्‌की इच्छाको अभिव्यक्त कर सकें।

(अगस्त १९३४)

"तू मेरी सत्ताको भरता, तू उसमें जीवन संचार करता है और तू ही उसके छिपे हुए झरनोंको गति देता है।"

(११-५-१९१३)

ये "छिपे हुए झरने" क्या हैं?

"झरनों"से मतलब है वे क्रियात्मक शक्तियां जो गतिकी प्रेरणा देती हैं। (अगस्त १९३४)

"...और मैं (अधिकाधिक) तेरे कार्य और अपने जीवनमें, अपनी व्यक्तिगत सत्ता और समस्त पृथ्वीमें भेद करनेमें असमर्थ होती जाती हूं।"

(१७-६-१९१३)

क्या इसका यह मतलब है कि आपका सारा जीवन परम प्रभुका काम हो गया था और आप समस्त पृथ्वीके साथ एक हो गयी थीं?

हां।
(अगस्त १९३४)

"तेरी आवाज इतनी विनीत, समदर्शी, धैर्य और दयामें उदात्त है कि वह अपने-आपको किसी अधिकारसे या तेरी इच्छाके दबावसे नहीं सुनाती बल्कि सुनाती है शीतल, मधुर, शुद्ध समीर-की स्वच्छ सरसराहटकी न्याईं जो बेसुरे सहगानमें समस्वरता लाती है।"

(२७-६-१९१३)

मेरी समझमें नहीं आता कि यह "आवाज" क्या है?

यह भगवान्‌की आवाज है।
(२-२-१९३५)

उस आवाजको कैसे सुना जाय?

मौन होकर।

(२-२-१९३५)

क्या यह वही आवाज है जो हृदयकी गहराइयोंसे आती है और लोगोंका नेतृत्व करती है, सच्चा रास्ता दिखाती है और भटकनेसे बचाती है?

आवाज जब हृदयसे आती है तो उसका वही दिव्य मूल हो सकता है पर वह आती है चैत्य पुरुषके द्वारा।

(३-२-१९३५)

तो क्या भगवान्‌की आवाज सीधी मन, प्राण और शरीरके पास भी आती है?

कुछ विशेष परिस्थितियोंमें यह हो सकता है।

(४-२-१९३५)

"वास्तवमें मधुरतम, अधिक-से-अधिक शान्त, और अधिक-से-अधिक दयार्द्र मुस्कानकी उपस्थितिमें जो भाव पैदा होता है वह तेरे इस भांति दर्शनसे पैदा होनेवाले भावसे हीन सादृश्य रखता है।"

(८-८-१९१३)

यह कौन-सी "मुस्कान" है? मेरा ख्याल है कि भगवान्‌की मुस्कान ही ऐसी हो सकती है।

नहीं, भगवान्‌की नहीं बल्कि उनकी जिन्हें भागवत चेतना प्राप्त है।

(७-५-१९३५)

"हमारी वास्तविकतामें तू ही हमारा अपना स्व है।"

(१५-८-१९१३)

यहां मैं "हमारी वास्तविकता"का मतलब नहीं समझ पाया, मेरा ख्याल है कि वास्तविकता एक ही है।

यहां मैंने "वास्तविकता" शब्दका प्रयोग 'सत्ताके सत्य' के अर्थमें किया है।
(२५-२-१९३५)

"निस्संदेह, व्यक्तिको अपनी अवचेतनाको उसी तरह वशमें करना सीखना चाहिये जैसे वह अपने सचेतन विचारोंको वशमें करता है ... लेकिन निश्चय ही एक और तरीका भी है जो अधिक प्रभावशाली है।"

(२५-११-१९१३)

अवचेतनाको जीतनेका क्या उपाय है?

अतिमानसका अवतरण।
(२८-४-१९३४)

"चेतनाकी कितनी विभिन्न श्रेणियां हैं! यह शब्द तो उस स्थितिके लिये आरक्षित रहना चाहिये जो तेरी उपस्थितिसे आलोकित हो, जो तेरे साथ एक हो चुकी हो और तेरी परम चेतनामें भाग लेती हो ..."

(१३-३-१९१४)

क्या इसका यह अर्थ है कि जब हम तेरी उपस्थितिसे आलोकित हो जाएं और तेरे साथ एक हो जाएं तो फिर हमारे लिये चेतनाकी श्रेणियां न रहेंगी?

मेरा मतलब यह है कि "चेतना" शब्द सिर्फ उसीके लिये आरक्षित रहना चाहिये जो भागवत उपस्थितिके बारेमें सचेतन हो।

(१९-४-१९३५)

"इस अवस्थाके बाहर चेतनाकी अनंत श्रेणियां हैं जो पूर्ण अंधकारतक उतर जाती हैं, जो वास्तविक निश्चेतना है, शायद वह ऐसा क्षेत्र हो जिसे तेरे प्रेमके प्रकाशने अभीतक छुआ भी नहीं है (लेकिन यह भौतिक द्रव्यमें असंभाव्य लगता है) या शायद अविद्याके किसी-न-किसी कारणसे जो हमारे व्यक्तिगत बोधके बाहर है।"

(१३-३-१९१४)

यह "वास्तविक निश्चेतना" क्या है जिसके बारेमें आपने कहा है ?

अवचेतनाकी भी अवचेतना।

(२१-४-१९३५)

"जो समग्र रूपसे तेरे सेवक हैं, जिन्होंने तेरी उपस्थितिकी संपूर्ण चेतना प्राप्त कर ली है, उनके सामने मुझे लगता है कि मैं कितनी दूर हूं, कितनी अधिक दूर....

(३०-३-१९१४)

क्या धरतीपर ऐसे बहुत-से लोग हैं जो तेरे सेवक हों?

मैंने यह श्रीअरविन्दसे पहली बार मिलनेके बाद लिखा था।

(१८-७-१९३५)

"सब नियम गायब हो गये हैं, अनुशासनकी नियमितता चली

गयी है, सब प्रयास बंद हो गये हैं — मेरी अपनी इच्छासे नहीं और न ही, मुझे लगता है, लापरवाहीके कारण ही — बल्कि परिस्थितियां मिलकर ऐसा होनेके लिये काम कर रही हैं।"

(२३-४-१९१४)

यह कैसे होता है? क्या इसलिये कि भगवान्‌ने व्यक्तिकी सारी प्रकृतिपर अधिकार कर लिया है और अब कोई प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं?

हां।

(११-६-१९३५)

"वर दे कि मेरी चेतना तेरी चेतनाके साथ एक हो जाय ताकि इस भंगुर और अस्थायी यंत्रके द्वारा तेरी ही इच्छा-शक्ति काम करे।"

(९-५-१९१४)

आप इस यंत्रको "भंगुर और अस्थायी" क्यों कहती हैं?

यहां जिस यंत्रकी बात कही गयी है वह धरती है जिसका जीवन शाश्वत चेतनाकी तुलनामें अस्थायी है।

(१-६-१९३५)

"और अब मैं धरतीपर आनंदमग्न बालक हूं जो खेलता है"

(१७-५-१९१४)

माताजी, मैं समझता हूं यहां "मैं" से मतलब आप खुद हैं, तो फिर आपने स्त्रीलिंगका उपयोग क्यों नहीं किया?

तुम्हें यह मालूम होना चाहिये कि हिन्दू परिपाटीके अनुसार संसार एक

दिव्य बालकके खेलका परिणाम है। मैं इस बालकके साथ एकात्म हो गयी थी।
(५-११-१९३४)

"सब व्यक्तिगत क्षमताएं सोती हैं और चेतना अभीतक परात्पर अवस्थामें जागी नहीं है। उनमें वह बीच-बीचमें जागती है और बीचमें सो जाती है।"

(१९-५-१९१४)

क्या इसका यह अर्थ है कि परात्पर स्थितिमें जागनेसे पहले एक ऐसा समय होता है जब वह चेतना सोती है?

जगाये जानेसे पहले चेतना सभीमें सोयी रहती है।
(१०-४-१९३५)

इस तरह चेतना कबतक सोती है?

एक सेकेण्डके लिये या अनन्त कालके लिये।
(१०-४-१९३५)

मेरा ख्याल है कि आपका यह मतलब न था। आपकी चेतना १९१४ में सोयी हुई कैसे रह सकती थी?

स्पष्ट रूपसे, नहीं।
(१३-४-१९३५)

तब फिर इसका ठीक-ठीक मतलब क्या है?

ये वैश्व अनुभूतियां हैं और केवल उन्हींके सामने प्रकट की जा सकती हैं जिन्हें ये हुई हों।

(१३-४-१९३४)

"तूने वचन दिया है। तूने इन जगतोंमें ऐसे लोगों और ऐसी चीजोंको भेजा है जो इस वचनको पूरा कर सकते हैं।"

(१४-६-१९१४)

ऐसी चीजोंसे आपका क्या मतलब है?

शक्ति, बल, चेतना, ज्ञान, प्रेम आदि-आदि।

(७-४-१९३६)

इसका क्या अर्थ है, "इसके जैसा या उसके जैसा होना चाहनेमें कौन-सी बुद्धिमत्ता है?"

(२५-६-१९१४)

बुद्धिमत्ता अपने लिये अपने-आप निश्चय करनेमें नहीं बल्कि यह जाननेमें है कि भगवान् क्या चाहते हैं।

(१३-१२-१९३३)

"हे दिव्य शक्ति, परम आलोककारी, हमारी प्रार्थना सुन, हमसे दूर न जा, अपने-आपको खींच न ले, हमें युद्ध करनेमें सहायता दे"....

(८-७-१९१४)

क्या भगवान् अपने-आपको हमसे खींच लेते हैं?

नहीं, हम उनसे खिंचा करते हैं।

(११-७-१९३५)

और फिर "हमसे दूर न जा, अपने-आपको खींच न ले" से आपका क्या मतलब है?

मैं स्वयं भगवान्‌से नहीं बल्कि एक शक्तिसे बात कर रही थी जो धरती-पर एक विशेष कार्य करनेके लिये आयी थी और अगर वह देखती वह जो काम करनेके लिये आयी है वह असंभव है तो वह अपने-आपको खींच लेती।

(१३-७-१९३५)

"पार्थिव सिद्धियां बड़ी आसानीसे हमारी नजरोंमें बहुत महत्वपूर्ण बन जाती हैं।"

(१७-७-१९१४)

"पार्थिव सिद्धियों"का मतलब क्या है?

हम धरतीपर जो काम करते हैं।

(३०-१-१९३६)

"जगत् प्रभुत्व पानेके लिये संघर्ष करनेवाली दो विरोधी शक्तियों-के बीच बंटा हुआ है और दोनों ही समान रूपसे तेरे विधान-से उलटी हैं।"

(९-९-१९१४)

ये कौन-सी शक्तियां हैं?

अगर तुमने 'ध्यान'को सावधानीसे पढ़ा होता तो यह प्रश्न करनेकी

जरूरत न होती। ये दो बनाये रखने और नष्ट करनेकी शक्तियां हैं।
(२२-५-१९३५)

"वसंतके उत्पातोंका इलाज चेरीके फूलोंमें है।"
(७-४-१९१७)

इसका मतलब क्या है?

कुछ उत्पात विशेष रूपसे वसंत ऋतुमें आते हैं जैसे रक्त-विकार, फोड़ा-फुंसी वगैरह। जापानी लोग चेरीके फूलोंका काढ़ा-सा पिलाकर इसे ठीक कर लेते हैं। लेकिन इस अनुभूतिके समय मुझे यह बात मालूम न थी।
(११-२-१९३६)

"कुछ ही दिन पहले मैंने जाना, मैंने सुना, अगर तू मेरे सामने खुलकर, निष्कपट भावसे रो सके तो बहुत-सी चीजें बदल जायेंगी। एक बड़ी विजय प्राप्त होगी।"
(१२-७-१९१८)

इसे समझना असंभव है कि रोनेसे "एक बड़ी विजय प्राप्त होगी।"

फिर भी मेरा ख्याल है कि रोनेका मतलब साधारण रोना नहीं है। है क्या?

स्पष्टतया, नहीं।
(मई, १९३५)

"हे मेरे प्रिय स्वामी, तूने मेरे लिये संघर्ष भेजा है.... मैं खुशी-

से उसका स्वागत करती हूं। यह कार्यके कुछ ऐसे तत्त्वोंको प्रकाशमें लानेका अच्छे-से-अच्छा उपाय है जो अन्यथा याद ही न आते।

(२२-६-१९२०)

ये कामके कौन-से तत्व हैं?

यह व्यक्तिगत चीजोंकी बात नहीं है, वैश्व गतियोंकी बात है।

(२-५-१९३५)

पहली पंक्तियोंकी तालिका

अ

आ

इ

उ

ऊ

ए

ओ

औ

क

च

ज

ठ

त

द

ध

न

प

म

ल

व

श

स

ह

हे प्रभुवर! हार्दिक कृतज्ञताके साथ मैं तेरे पास आ रही हूं।... (२४-८-१९१४) १३६